महाकवि स्वयम्भूदेव विरचित

पउमचरिउ

(पद्मचरित)

भाग 5

महाकवि स्वयम्भूदेव विरचित

पउमचरिउ

(पद्मचरित)

भाग 5

मूल-सम्पादन
डॉ. एच.सी. भायाणी

अनुवाद
डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन

भारतीय ज्ञानपीठ

पहला संस्करण : 1970

ISBN 81 - 263 - 0607 - 6

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला : अपभ्रंश ग्रन्थांक 9

प्रकाशक :
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड
नयी दिल्ली-110 003

मुद्रक :
नागरी प्रिंटर्स
दिल्ली-110 032

दूसरा संस्करण : 2001
मूल्य : 50 रु.

PAUMA-CARIU
of Svayambhudeva

Edited by H.C. Bhayani and
translated by Dr. Devendra Kumar Jain

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road
New Delhi-110 003

Second Edition : 2001
Price : Rs. 50

GENERAL EDITORIAL

(First Edition : 1970)

The *Paümacariü* (in Apabhraṁśa) of Svayambhū with the Hindi translation of Shri Devendrakumar Jain was taken up for publication in the Jnanpith Moortidevi Jain Granthamala nearly 15 years back. Vol. I, *Vidyādhara Kāṇḍa*, consisting of 20 Saṃdhis, was issued in 1957; Vol. II, *Ayodhyā Kāṇḍa*, Sandhis 21 to 42, and Vol. III, *Sundara Kāṇḍa*, Sandhis 43 to 56, were issued in 1958. And now (1969-70) are issued Vol. IV, Sandhis 57 to 74, and Vol. V, Sandhis 75 to 90, *Yuddha Kāṇḍa* (57-77) *Uttara Kāṇḍa* (78-90) in the same format.

This great poem was begun by Svaymbhū and completed by his son, Tribhuvana. The critical text of it, constituted with the help of three mss., was ably edited by Dr. H.C. Bhayani along with various readings and *Ṭippaṇas* in the Singhi Jaina Series, Nos. 34-36, Bombay 1952-62. The first part of this edition is equipped with an introduction dealing with the date and personal account of Svayambhū, his works and achievements, and an all-sided study of the *Paümacariü* : its sources, grammatical pecularities, metres and contents. There is also an Index

Verborum. Analysis of the contents and of metres go with each part. In the Introduction to part III, Dr. Bhayani has studied the metres from the *Riṭṭha-ṇemicariü*, another work of Svayambhū. He has given there some more light in his Miscellanea on Svayambhū's works and date. Those who want to pursue the studies about Svayambhū and his works are requested to study the learned introduction of Dr. Bhayani. (For some additional references, see also H.L. Jain : *Svayambhū and His Two Poems in Apabhraṁśa*, Nagpur University Journal, Vol. I, Nagpur 1935; H.D. Velankar : *Svayambhūchandas* by Svayambhū, Journal of the Bombay Branch Royal Asiatic Society, N.S. Vol. II, pp. 18 ff., Bombay 1935; N. Premi : *Mahākavi Svayambhū aura Tribhuvana Svayambhū* in his *Jaina Sāhitya aura Itihāsa*, pp. 370 ff., Bombay 1942; H. Kochhad : *Apabhraṁśa Sāhitya*, pp. 51 ff., Delhi 1956).

Svayambhū was the son of Māruyadeva or Mārutadeva and Padminī. The family had traditions of learning associated with it. He had two wives, Amṛtāmbā and Ādityāmbā who helped him in his literary pursuits and for whom he has all compliments. Perhaps he had a third wife too. From his works we can see what a prodigy of learning he was. He gives us a sketch of his physical appearance. He was slim in his frame; he had a flat nose; his teeth were sparse, and his limbs elongated. He had more than one son; but it was only Tribhuvana among them who inherited the parental poetic faculty and carried on the great literary traditions of the family. He refers to some of his patrons like Dhanañjaya and Dhavalaiya. From the forms of the personal names mentioned by him, it appears that he lived in the Telugu-Kannada area. He belonged possibly to the Yāpanīya Saṅgha as found mentioned in a gloss on Puṣpadanta's *Mahāpurāṇa*. He had

studied various branches of learning; and he possessed a broad outlook. He flourished between 677 and 960 A.D., more probably between 840 and 920 A.D. These dates are inferrable from the fact that Svayambhū mentions Raviṣeṇa and Jinasena, and is himself mentioned by Puṣpadanta.

Svayambhū's works are *Paümacariü*, *Riṭṭhaṇemicariü*, *Svayambhūchandas* and also a *Stotra*. Of the *Paümacariü*, Sandhis 82 were composed by Svayambhū and the rest supplemented by his son Tribhuvana who describes his father in honorific terms. The multiple authorship of both the great epics of Svayambhū is an interesting topic for closer study.

As to the sources of the *Paümacariü*, mention must be made of the *Padmapurāṇa* (Sanskrit) of Raviṣeṇa and some Apabhraṃśa work of Caturmukha : the latter, however, has not come to light as yet.

Svayambhū's works are masterpieces of Apabhraṁśa literature. Subsequent great authors like Puṣpadanta have mentioned him with respect. We are greatly indebted to Dr. H.C. Bhayani who has given us a critical text of the entire *Paümacariü* and an exhaustive study of the author. Further, it is very kind of him and of his publishers to have allowed us to give his text in this edition.

Dr. Devendra Kumar Jain has laboured hard in preparing the Hindi translation which will attract a wider class of readers towards Svayambhū-Tribhuvana. The Hindi scholars will not fail to realize the importance of the study of Apabhraṁśa in understanding the growth of the Hindi and other modern Indo-Aryan languages, as well as their various poetic trends. Our thanks are due to Dr. Devendra Kumar Jain.

The General Editors record their sense of gratitude towards Shriman Sahu Shanti Prasadji, the founder of the Bharatiya Jnanpith and his enlightened wife, Smt. Rama Jain, the President, for their generous patronage extended to these publications which bring to light many neglected aspects of Indian literature and cultural heritage.

H.L. Jain
A.N. Upadhye

Editor : Moortidevi Granthamala

प्रधान सम्पादकीय

(प्रथम संस्करण : 1970)

स्वयम्भूकृत अपभ्रंश *पउमचरिउ* श्री देवेन्द्रकुमार जैन के हिन्दी अनुवाद के साथ ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशन के लिए लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व लिया गया था।

प्रथम भाग *विद्याधर-काण्ड* (20 सन्धि) 1957 में प्रकाशित हुआ; द्वितीय भाग *अयोध्याकाण्ड* 21 से 42 सन्धि तक तथा तृतीय भाग *सुन्दरकाण्ड* (43 से 56 सन्धि) 1958 में। और अब 1969-70 में चतुर्थ भाग (57 से 74 सन्धि) तथा पंचम भाग (75 से 90 सन्धि) अर्थात् *युद्धकाण्ड* (75 से 77) तथा *उत्तरकाण्ड* (78 से 90) उसी प्रकार प्रकाशित हो रहे हैं।

यह महाकाव्य स्वयम्भू द्वारा आरम्भ हुआ तथा उनके पुत्र त्रिभुवन द्वारा पूर्ण हुआ। इसके समालोचनात्मक संस्करण का तीन पाण्डुलिपियों की सहायता से डॉ. एच.सी. भायाणी ने विभिन्न पाठभेदों तथा टिप्पणों के साथ सिंघी जैन सीरीज, संख्या 34-36, बम्बई 1952-62 में विद्वत्तापूर्वक सम्पादन किया है। इस संस्करण के प्रथम भाग में प्रस्तावना दी गयी है, जिसके अन्तर्गत स्वयम्भू का समय तथा व्यक्तिगत परिचय, उनकी कृतियाँ

तथा उपलब्धियों एवं *पउमचरिउ* का एक सर्वांगीण अध्ययन—इसके स्रोत, व्याकरण सम्बन्धी विशेषताएँ, छन्द तथा विषयसूची प्रस्तुत की गयी है। सम्पूर्ण शब्दावली भी दी गयी है। विषयसूची तथा छन्दों की व्याख्या प्रत्येक भाग के साथ ही है। तीसरे भाग की प्रस्तावना में डॉ. भायाणी ने छन्दों का अध्ययन स्वयम्भू की दूसरी कृति *रिट्ठणेमिचरिउ* से किया है। उसमें उन्होंने स्वयम्भू के समय तथा कृतियों विषयक अपनी पूर्व सामग्री पर और अधिक प्रकाश डाला है। जो भी स्वयम्भू और उनकी कृतियों का अध्ययन करना चाहे, उनसे अनुरोध है कि वे डॉ. भायाणी की विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना अवश्य पढ़ें। कुछ अन्य अतिरिक्त संदर्भों के लिए देखें—डॉ. एच.एल. जैन—*स्वयम्भू एण्ड हिज़ टू पोइम्स इन अपभ्रंश,* नागपुर युनिवर्सिटी जरनल, वॉल्यूम-I, नागपुर 1935; एच्.डी. वेलणकर—*स्वयम्भूछन्दाज़ बाई स्वयम्भू,* जरनल ऑव द बाम्बे ब्रांच रॉयल *एशियाटिक सोसाइटी, एन.एस. वॉल्यूम*-II, पेज 88 एफ-एफ, बम्बई 1935; एन. प्रेमी—*महाकवि स्वयम्भू और त्रिभुवन स्वयम्भू : जैन साहित्य और इतिहास,* पृष्ठ 370, बम्बई 1942, एच. कोछड़—*अपभ्रंश साहित्य* पृष्ठ 51, दिल्ली 1956।

स्वयम्भू मारुयदेव या मारुतदेव तथा पद्मिनी के पुत्र थे। इस परिवार में अध्ययन की परम्परा थी। उनकी दो पत्नियाँ थीं—अमृताम्बा और आदित्याम्बा, जिन्होंने उनकी साहित्यिक प्रवृत्तियों में उनका सहयोग किया, जिनके लिए उनके मन में पूर्ण अभ्यर्थना है। सम्भवतया उनकी तीसरी पत्नी भी थी। उनके कृतित्व से हमें ज्ञात होता है कि वे एक विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। उन्होंने अपनी शारीरिक स्थिति का एक चित्रण दिया है। उनका शरीर दुबला, नाक चिपटी, दाँत बिखरे हुए तथा ओंठ लम्बे थे। उनके कई पुत्र थे, किन्तु उनमें से केवल त्रिभुवन ने ही पैत्रिक काव्यप्रतिभा को पाया तथा अपने परिवार की परम्परागत उच्च बौद्धिकता को आगे बढ़ाया। उन्होंने अपने कतिपय संरक्षकों—धनंजय तथा धवलैय्या का उल्लेख किया है। उनके द्वारा निर्दिष्ट व्यक्तिगत नामों से प्रतीत होता है कि वे तेलुगु-कन्नड़ क्षेत्र में रहे थे। सम्भवतया वे यापनीय

संघ के थे, जैसा कि पुष्पदन्त के *महापुराण* की टिप्पणी में उल्लेख मिलता है। उन्होंने ज्ञान की विविध शाखाओं का अध्ययन किया था और उनका दृष्टिकोण विशाल था। वे 677 और 960 ईसवी, प्रत्युत अधिक सम्भव है कि 840 और 920 ईसवी के मध्य हुए। यह तिथि इससे अनुमित होती है कि उन्होंने रविषेण तथा जिनसेन का उल्लेख किया है। तथा स्वयं उनका उल्लेख पुष्पदन्त ने किया है।

स्वयम्भू की कृतियाँ हैं—*पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ, स्वयम्भूछन्द* तथा एक स्तोत्र। *पउमचरिउ* की 84 सन्धियाँ स्वयम्भू ने लिखीं तथा शेष उनके पुत्र त्रिभुवन ने पूर्ण कीं, जिसने अपने पिता का सम्माननीय शब्दों में विवरण दिया है। स्वयम्भू के दोनों महाकाव्यों की बहुलेखकता सूक्ष्म अध्ययन का एक रुचिकर विषय है।

पउमचरिउ के स्रोतों के सन्दर्भ में रविषेण के संस्कृत *पद्मपुराण* तथा चतुर्मुख की कतिपय अपभ्रंश कृतियों का, जो अभी तक प्रकाश में नहीं आयीं, उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिए।

स्वयम्भू की कृतियाँ अपभ्रंश साहित्य की श्रेष्ठतम कृतियाँ हैं : समकालीन पुष्पदन्त जैसे उच्चकोटि के ग्रन्थकार ने उनका आदर के साथ उल्लेख किया है। हम डॉ. एच.सी. भायाणी के अत्यधिक ऋणी हैं कि उन्होंने सम्पूर्ण मूल *पउमचरिउ* का समालोचनात्मक संस्करण तथा लेखक का विस्तृत अध्ययन हमें दिया। और यह भी उनकी तथा उनके प्रकाशक की कृपा है कि उन्होंने हमें अपने मूल को इस संस्करण में देने की अनुमति दी।

डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन ने इसके हिन्दी अनुवाद करने में कठिन परिश्रम किया है, जो अनुवाद स्वयम्भू-त्रिभुवन के अध्ययन की ओर और अधिक पाठकों का ध्यान आकर्षित करेगा। हिन्दी के विद्वान्, हिन्दी तथा अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं तथा उनकी विविध काव्यविधाओं को समझने के लिए अपभ्रंश के अध्ययन का महत्त्व अनुभव करने में नहीं भूलेंगे। हम डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन के आभारी हैं।

ग्रन्थमाला सम्पादक. भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक श्रीमान् साहू शान्तिप्रसाद जैन तथा उनकी विदुषी पत्नी श्रीमती रमा जैन, अध्यक्ष, के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिनके द्वारा इन प्रकाशनों, जो भारतीय साहित्य की अनेक उपेक्षित शाखाओं तथा सांस्कृतिक विरासत को प्रकाशन में लाते हैं, के लिए उदारतापूर्वक संरक्षकता दी गयी है।

हीरालाल जैन
आ.ने. उपाध्ये
सम्पादक : मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला

अनुक्रम

सतहत्तरवीं सन्धि ५०–५९

रावणकी मृत्युपर विभीषणका वियोग, आहत और मृत शरीरका वर्णन, राम द्वारा विभीषणको सम्बोधन, रावणकी आलोचना, उसके महान् व्यक्तित्वकी प्रशंसा, विभीषणके उद्‌गार, रावणके लिए विभीषणका पश्चात्ताप, रावणकी शवयात्रा, लकड़ियोंका वर्णन, चिताका वर्णन, रावणके परिजनोंका शोक, अन्तःपुरका मूर्छित होना, उस दुःखका वर्णन, आगकी लपटोंका वर्णन, प्रत्येक अंगकी दाह-क्रियाका चित्रण, रावणके अंतपर जनताकी प्रतिक्रिया, राम द्वारा रावणके परिजनोंको समझानेका प्रस्ताव, मन्त्रिवृद्धों द्वारा विरोध, कुम्भकर्णसे आशंका, कुछका विभीषण के प्रति सन्देह, राम द्वारा उन्हें समझाया जाना, लोकाचारसे रावणको जलदान और तर्पण क्रिया, युवतियों द्वारा सरोवरमें स्नान, शुद्धिक्रिया, मन्दोदरी द्वारा संन्यास ग्रहण करनेका संकल्प।

अठहत्तरवीं सन्धि ८०–१०३

रावणकी मृत्युकी प्रतिक्रिया, प्रभातका होना, अप्रमेय बल नामक महामुनिका नगरमें आगमन, दोनों ओरको लोगोंका महामुनिके दर्शनके निमित्त जाना। मुनि द्वारा धर्मका उपदेश, कालचक्रका वर्णन, नागसे उसके रूपकका चित्रण, मेघनाद और इन्द्रजीत द्वारा दीक्षा ग्रहण, रामके बिना सीतादेवीका जानेसे इन्कार, नारीके प्रति लोकमानसकी धारणाका वर्णन, राम और लक्ष्मणका सीतादेवीके पास जाना, सपत्नीक लक्ष्मणका सीता देवीको प्रणाम, सीता सहित राम-लक्ष्मणके प्रवेशसे समूचा नगर प्रसन्नतासे खिल उठा। नागरिकोंकी प्रतिक्रियाएँ, राम द्वारा रावणके भवनमें प्रवेश। रावणके भवनका चित्रण, शान्तिनाथके जिनालयमें जाकर राम द्वारा जिनेन्द्र भगवान्‌की स्तुति,

कहना, लक्ष्मणकी मृत्यु, अन्तःपुरमें विलाप, रामका भाईकी मृत्यु होनेपर विलाप, मूर्छित होना, घर-घर भटकना, विभीषण-का उन्हें समझाना। रामका मोहमें पड़े रहना।

●

[५]

पउमचरिउ

•

कइराय-सयम्भूएव-किउ

पउमचरिउ

[७५. पंचहत्तरिमो संधि]

जम-धणय-पुरन्दर-डामरहों स-उरग-जग-जगडावणहों ।
जिह उत्तर-गउ दाहिण-गयहों भिडिउ रामु रणें रावणहों ॥

[१]

॥ दुवई ॥ तुङ्ग-तुरङ्ग-तिक्ख-णक्खुक्खय-रय-कय-अलण-आलए ।
दुद्दम-दन्ति-दन्त-णिहसुट्ठिय-सिहि-सिह-विज्जुमालए ॥१॥

दप्पुब्भड-भड-थड-संकडिल्लें । हय-फेण-तरङ्गिणि-दुत्तरिल्लें ॥२॥
गय-मय-णइ-कद्दम-मग्ग-भग्गें । करि-कण्ण-पवण-पेल्लिय-धयग्गें ॥३॥
चामीयर-चामर-दिण्ण-सोहें । छत्तोह-पिहिय-दिणयर-करोहें ॥४॥
धय-दण्ड-खण्ड-मण्डिय-दियन्तें । णर-रुण्ड-खण्ड खाइय-कियन्तें ॥५॥
हय-हिंसिय-भेसिय-रवि-तुरङ्गें । रह-चक्क-चार-चूरिय-भुअङ्गें ॥६॥
रहवुद्ध-खन्ध णच्चिय-कवन्धें । कङ्काल-माल-किय-सेउ-बन्धें ॥७॥
सर-णियर-दिण्ण-भुवणन्तरालें । पडु-पडह-सङ्ख-झल्लरि-वमालें ॥८॥
सुर-वहु-विमाणें छइयन्तरिक्खें । दुव्विसमें दु-संचरें दुण्णिरिक्खें ॥९॥

घत्ता

तहिं तेहएँ दारुणें आहयणें गन्धवहुद्धुअ-धवल-धय ।
गज्जन्त-मत्त-मायङ्ग जिह भिडिय परोप्परु हणुव-मय ॥१०॥

पद्मचरित

पचहत्तरवीं सन्धि

यम, धनद और इन्द्रके लिए भयंकर, नागलोक सहित संसारमें झगड़ा मचानेवाले रावणसे रामकी उसी प्रकार भिड़न्त हो गयी जिस प्रकार उत्तरायणसे दक्षिणायन की।

[१] वह युद्ध अत्यन्त भयानक था। ऊँचे-ऊंचे अश्वोंके तीखे खुरोंके आघातसे उठी हुई धूलसे ज्वालामाला छूट रही थी। जो युद्ध दुर्दमनीय हाथियोंके दाँतोंके और अग्निशिखाके समान विद्युत्प्रभासे भास्वर था। जो युद्ध दर्पसे उद्धत योद्धाओंसे संकुल एवं अश्वोंके फेनकी नदीसे अत्यन्त दुर्गम था। हाथियोंके मदजलकी कीचड़से रास्ते लथपथ हो रहे थे। हाथियोंके कानरूपी चामरोंसे ध्वजोंके अग्रभाग उड़ रहे थे। स्वर्ण चामरोंकी अनूठी शोभा हो रही थी। छत्रसमूहने सूर्यकी किरणोंको ढक दिया था। ध्वजदण्डोंके समूहने दिशाओंको ढक दिया था। कृतान्त मनुष्योंके धड़ोंके टुकड़ोंको खा रहा था। हींसते हुए अश्वोंसे सूर्यके अश्व डर रहे थे। रथके पहियोंसे सर्प चूर-चूर हो रहे थे। वेगसे भरे ऊँचे-ऊंचे कन्धोंपर धड़ नाच रहे थे। हड्डियोंकी मालाका सेतुबन्ध तैयार किया जा रहा था। तीरोंके जालसे धरतीका अन्तराल पट चुका था। पट पटह, झल्लरि और शंखादि वाद्योंका कोलाहल हो रहा था। सुरवधुओंके विमान आकाशमें छाये हुए थे। इस प्रकार वह युद्ध विषम दुर्गम और दुर्दर्शनीय हो उठा। उस भयंकर युद्धमें पवनसे धवल ध्वज फहरा रहे थे। गरजते हुए मैगल हाथियोंके समान, मय और हनुमान् आपसमें भिड़ गये॥ १-१०॥

[२]

॥ दुवई ॥ दुद्दम-देह दो वि दूरुज्झिय-धणुहर पवर-विक्कमा ।
जणिय-जणाणुराय जस-लालस स-रहस सुर-परक्कमा ॥१॥

पहरन्ति परोप्परु पहरणेहिं । दणु-इन्द-विन्द-दप्पहरणेहिं ॥२॥
जल-थल-णह-बल-पच्छायणेहिं । तडि-तामस-तवणुप्पायणेहिं ॥३॥
गिरि-गारुड-पाहण-वायवेहिं । वारुण-अग्गेयहिँ वायवेहिं ॥४॥
तो अहिमुह-दहिमुह-माउलेण । उब्भिय-धुय-धयमालाउलेण ॥५॥
कञ्चणगिरि-सरिस-महारहेण । सुर-चाव-किणङ्किय-विग्गहेण ॥६॥
पज्जालिय-कोव-हुआसणेण । आवड्ढिय-ससर-सरासणेण ॥७॥
इन्दइ-कुमार-मायामहेण । हणुवन्त-महद्धउ छिण्णु तेण ॥८॥
तो रावण-उववण-मद्दणेण । चल-गमणहों पवणहों णन्दणेण ॥९॥

घत्ता

स-तुरङ्गु स-सारहि स-धउ रहु हणेँवि सरेँहिँ सय-खण्डु कउ ।
णह-लङ्घण-करणेंहिँ उप्पएँवि अण्णहिँ सन्दणेँ चडिउ मउ ॥१०॥

[३]

॥दुवई॥ रण-भर-धवल-धूलि-धूसरिय-धयवडाडोय-डम्बरो ।
पब्बल-चक्क-णेमि-णिग्घोस-णिरन्तर-बहिरियम्बरो ॥१॥

सो वि पवण-पुत्तेण सन्दणो । जणिय-बन्दि-बन्दाहिणन्दणो ॥२॥
महिहरो व्व तडि-चडण-ताडिओ । दारुणद्धचन्देण पाडिओ ॥३॥
तो तहिं णिएऊण णिय-मउ । भग्ग-रहवरं छिण्ण-धयवडं ॥४॥
दहमुहेण माया-विणिम्मिओ । करि विमुक्क-सिक्कार-विब्भिओ ॥५॥

[२] दोनों ही दुर्दम शरीरवाले थे। दोनोंने धनुष दूर छोड़ दिये थे। दोनों महापराक्रमी थे। अस्त्रोंसे एक दूसरेपर प्रहार कर रहे थे। उन अस्त्रोंसे जो दानव और इन्द्रका घमण्ड चूर-चूर करनेवाले थे। जो जल, थल और नभको ढक सकते थे, बिजली अन्धकार और सूर्यको अस्तित्व विहीन कर सकते थे। उन्होंने पहाड़, गरुड़, पत्थर,पादप, वारुण, आग्नेय और वायव्य अस्त्रों-से एक दूसरेपर आक्रमण किया। तब अभिमुख और दधिमुख-के मामा मय दोनोंकी काँपती हुई ध्वजमालासे व्याकुल हो रहा था। उसका रथ स्वर्णपर्वतकी तरह था, देवताओंके आघातोंके घाव उसके शरीरपर अंकित थे। उसकी कोप-ज्वाला वेगसे जल रही थी, उसने वीरों के साथ अपना धनुष उठा लिया था। इन्द्रकुमारके नाना मयने हनुमान्‌के ध्वजके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। यह देखकर रावणके नन्दनवनको उजाड़ देनेवाले उसने तीरोंसे आघात पहुँचा कर, अश्व, सारथि और ध्वजसहित उसके रथके सौ टुकड़े कर दिये। तब मयने आकाशगामिनी विद्यासे दूसरा रथ उत्पन्न कर लिया और उसपर चढ़ गया॥ १-१०॥

[३] हनुमान्‌ने बन्दीजनोंसे अभिनन्दनीय उस रथको तोड़ दिया। युद्धभारकी धवलधूलसे धूसरित वह रथ, ध्वजपटके आटोपसे विशाल दिखाई दे रहा था। मजबूत चाकोंके आरोंकी आवाजसे समूचा आसमान जैसे बधिर हो उठा। पवनसुतने उस रथको इस प्रकार तोड़ दिया जैसे बिजली गिरनेसे पहाड़ टूट जाता है, या जिस प्रकार अन्धड़ पेड़को उखाड़ देता है। रावणने जब देखा कि उसके सैनिक आहत हो चुके हैं, रथवर नष्ट हो चुके हैं, ध्वजपट फट चुके हैं, तो उसने अपना मायासे बना विशाल रथ भेजा जो हाथियोंके सीत्कार (जल मिश्रित

संचरन्त-चामियर-चामरो । साहिलास-परिओसियामरो ॥६॥
अच्छर-च्छत्रि-च्छोह-फसलिओ । टणटणन्त-घण्टालि-मुहलिओ ॥७॥
कणय-किङ्किणी-जाल-भूसिओ । रहवरो तुरङ्गेण पेसिओ ॥८॥
तो तहिं वलग्गो णिसायरो । तोण-बाण-धणु-गुण-कियायरो ॥९॥

घत्ता

मन्दोयरि-बप्पें कुद्धएँण तिक्ख-खुरुप्पेंहिं खण्डियउ ।
हणुवन्तें विहलीहूअएँण रहु कुपुणु इव छण्डियउ ॥१०॥

[४]

॥ दुवई ॥ जं णिसियर-खुरुप्प-पहराहिहउ हणुवन्त-सन्दणो ।
तं कोवग्गि-जाल-मालाव(?)पलीविउ जणय-णन्दणो ॥१॥
भामण्डलु मण्डल-धम्मपालु । अक्खोहणि-दस-सय-सामिसालु ॥२॥
सोलह-आहरण-विहूसियङ्गु । णं माणुस-वेसें थिउ अणङ्गु ॥३॥
सिय-चामरु धरिय-सियायवत्तु । वाहेंवि रहु कोवाहद्धु पत्तु ॥४॥
'रयणीयर-लञ्छण थाहि थाहि । वलु वलु उरि रहवरु वाहि वाहि ॥५॥
पइँ मुएँवि महायलें मणुसु कवणु । दहसीस-ससुर सुर-मन्ति-दमणु' ॥६॥
तो एवँ भणेंवि भामण्डलेण । रिउ छाइउ सहुँ रवि-मण्डलेण ॥७॥
सर-जालें जलहर-सण्णिहेण । विण्णाण-जाण-णाणाविहेण ॥८॥
तो मएँण वि रोस-वसंगएण । वइदेहि-समाहउ सर-सएण ॥९॥

घत्ता

सण्णाहु छत्तु धयवर-तुरय सारहि रहु रणें जज्जरिउ ।
भामण्डलु अ-विणयवन्तु जिह पर एक्केल्लउ उव्वरिउ ॥१०॥

फूत्कार) से गीला था। जिसपर सोनेके चामर हिल-डुल रहे थे, देवता जिसकी स्वेच्छासे सेवा कर रहे थे, जो अप्सराओं-की सौन्दर्यशोभासे सुन्दर था, टन-टन करती हुई घण्टियोंसे मुखरित हो रहा था, जो स्वर्णिम किंकणियोंके जालसे अलंकृत था। तरकस, बाण, धनुष और डोरोंका संग्रह कर रावण उस रथमें बैठ गया। इसी बीच मन्दोदरीके पिताने क्रुद्ध होकर, अपने तीखे खुरपेसे हनुमान्‌के रथके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, तब हनुमान्‌ने खोटे पुत्रकी भाँति उस रथको छोड़ दिया ॥१-१०॥

[४] निशाचरके खुरपेसे हनुमान्‌का रथ इस प्रकार खण्डित होनेपर जनकपुत्र भामण्डल क्रोधकी ज्वालासे भड़क उठा। मण्डल धर्मपाल भामण्डल भी क्रोधसे अभिभूत होकर रथ बढ़ाकर शत्रुके पास पहुँचा। उसके पास दस हजार अक्षौहिणी सेना थी। उसका शरीर सोलह प्रकारके अलंकारोंसे शोभित था। वह ऐसा लगता था, मानो मनुष्यके रूपमें कामदेव हो। वह श्वेतचमर और श्वेत आतपत्र धारण किये था। निकट पहुँचकर उसने कहा, "हे निशाचर कलंक, तुम रुको-रुको, मुड़ो-मुड़ो और मेरे ऊपर अपना रथ चढ़ाओ। तुम्हें छोड़कर, धरतीपर दूसरा मनस्वी कौन है ? तुम रावणके ससुर हो, देवताओंके मन्त्री (बृहस्पति) का दमन तुमने किया है"। यह कहकर भामण्डलने सूर्यमण्डलके समान शत्रुको घेर लिया। जब मेघोंके समान अपने तीर, जाल और नाना प्रकारके विज्ञान-ज्ञानसे निशाचर मयको घेर लिया, तो उसने भी क्रुद्ध होकर सैकड़ों तीरोंसे भामण्डलको आहत कर दिया। कवच, छत्र, श्रेष्ठध्वज, सारथि और रथ, सब कुछ युद्धमें ध्वस्त हो गया, अविनीतकी भाँति एक अकेला भामण्डल ही बच सका ? ॥ १-१० ॥

[५]

॥दुवई॥ ताव सुतार-तार-तारावइ तारावइ-समप्पहो ।
सुरवर-पवर-करि-करायार-कराहय-हय-महारहो ॥ १ ॥

सो अणय-तणय-मय-कय-वमालें । सुग्गीउ परिट्ठिउ अन्तरालें ॥२॥
विञ्झु व जिह दाहिण-उत्तराहँ । अब्भिट्टु परोप्परु समरु ताहँ ॥३॥
रयणीयर-वागर-लञ्छणाहँ । धवलिय-णिय-कुलहँ अ-लञ्छणाहँ॥४
विज्जाहर-पुर-परमेसराहँ । एक्केक्कम-छिण्ण-महारहाहँ ॥५॥
सर-वरुण-वियारिय-साहणाहँ । जयसिरि-अय-दिण्ण-पसाहणाहँ ॥६॥
संचरइ कइद्धउ जहिँ जि जहिँ । रिवु सरहिँ णिरुम्भइ तहिँ जेँ तहिँ ।७
जहिँ जहिँ रहवरेँ आरुहइ गम्पि । इन्दइ-मायामहु हणइ तं पि ॥८॥
जं जं धणुहरु सुग्गीवु लेइ । तं तं रयणीयरु खयहों णेइ ॥९॥

घत्ता

किं एक्कहों किक्किन्धाहिवहों हियइच्छियउ ण संपडइ ।
धणु सव्वहों लक्खण-विरहियहों लइउ लइउ हत्थहों पडइ ॥१०॥

[६]

॥दुवई॥ ताव विहीसणेण धूवन्त-धयवडालिद्ध-णहयलो ।
सूल-महाउहेण रहु वाहिउ बहुलुच्छलिय-कलयलो ॥१॥

'वलु वलु मय माम मणोहिराम । सुर-समर-सहास-पयास-णाम ॥२॥
मइँ मुएँवि विहीसणु छड-छडक्क । को सहइ तुहारी णर-चडक्क' ॥३॥
तं णिसुणेंवि मन्दोयरि-जणेरु । णिक्कम्पु परिट्ठिउ णाइँ मेरु ॥४॥
'ओसरु ओसरु मं पुरउ थाहि । छल-विरहिउ रणु परिहरेंवि जाहि ॥५

[५] सुलक्षणा ताराके पति सुग्रीवने जो चन्द्रमाके समान कान्तिवाला था, ऐरावतकी सूँड़के समान अपनी प्रबल भुजाओंसे महारथको हाँक दिया। वह भामण्डल और मय के संघर्षके बीचमें आकर खड़ा हो गया। वह इनके बीचमें उसी प्रकार स्थित हो गया, जिस प्रकार उत्तर भारत और दक्षिण भारतके बीच विंध्याचल स्थित है। अब उन दोनों में युद्ध छिड़ गया। दोनों क्रमशः निशाचरों और वानरों के चिह्नोंसे युक्त थे। दोनों अकलंक थे और दोनोंने अपने कुल का नाम बढ़ाया था। विद्याधर लोकके उन स्वामियोंने एक दूसरेका रथ खण्डित कर दिया। तीरोंकी बौछारसे सेना ध्वस्त कर दी। दोनों विजयलक्ष्मी और 'जय' को प्रसार दे रहे थे। कपिध्वजी जैसे-जैसे आगे बढ़ता वैसे-वैसे शत्रु तीरोंसे उसे रोकनेका प्रयास करता। जहाँ कहीं भी वह रथ पर चढ़ता, मय उसपर आघात करता। सुग्रीव जिस धनुषको उठाता, शत्रु उसे नष्ट कर देता। क्या एक अकेले किष्किन्धानरेशके मनकी बात नहीं होगी, लक्खण (लक्षण और लक्ष्मण) से रहित सभीके हाथसे धनुष गिर गिर पड़ता है ॥१-१०॥

[६] यह देखकर शूल महायुध लिये हुए विभीषणने अपना रथ आगे बढ़ाया। उसमें बहुत कोलाहल हो रहा था। उस रथकी उड़ती हुई पताकाएँ आकाशतलको छू रही थीं। उसने ललकारते हुए कहा, "देवताओंके शत शत युद्धोंमें अपना नाम प्रकाशित करनेवाले हे मय, तुम ठहरो-ठहरो, मुझ विभीषणको छोड़कर भला तुम्हारी यह प्रबल चपेट कौन सहेगा।" यह सुनते ही, मन्दोदरीका पिता मय, सुमेर पर्वतकी भाँति अचल हो गया। उसने कहा "हटो हटो, सामने मत रहो, छल छोड़-कर सीधे युद्धसे भाग जाओ, माना कि रावणमें एक भी गुण

पारकएँ थक्कएँ हंस-दीवें ।　　गुणु अज्ज वि णाहि वीसइ-गीवें ॥६॥
तहिँ अवसरेँ किं तउ मुएँवि जुत्तु ।　अइ सबल रयणासवहों पुत्तु' ॥७॥
तो एवँ भणेंवि ववगय-भएण ।　रहु कवउ कत्तु छिज्जइ मएण ॥८॥
किउ कलयलु णिसियर-साहणेण ।　बोल्लिज्जइ सुर-कामिणि-जणेण ॥९॥

घत्ता

'मारहु मामण्डलु पमयवइ　स-विहीसण विच्छाइयएँ ।
गय-पाएं बुड्ढीहूयएँण　मएँण जि कह व ण मारियइँ' ॥१०॥

[७]

॥दुवई॥ तो खर-णहर-पहर-धुव-केसर-केसरि-जुत्त-सन्दणो ।
धवल-महद्धओ समुद्धाइउ दसरह-जेट्ठ-णन्दणो ॥१॥
जस-धवल-धूलि-धूसरिय-अङ्गु ।　धवलम्बरु धवलावर-तुरङ्गु ॥२॥
धवलाणणु धवल-पलम्ब-बाहु ।　धवलामल-कोमल-कमलणाहु ॥३॥
धवलउ जेँ सहावें धवल-वंसु ।　धवलच्छि-मरालिहेँ रायहंसु ॥४॥
धवलाहँ धवलु धवलायवत्त ।　रहुणन्दणु दणु पहरन्तु पत्तु ॥५॥
हेलएँ जेँ विणासिउ मय-मरट्टु ।　रहु खञ्चेँवि पच्छामुहु पयट्टु ॥६॥
तहिँ अवसरेँ सुर-संतावणेण ।　रहु अन्तरेँ दिज्जइ रावणेण ॥७॥
बहुरूविणि-रूव-णिरूवियङ्गु ।　गय-दस-सय-संचालिय-रहङ्गु ॥८॥
दस सहस परिट्ठिय गत्त-रक्ख ।　सारच्छ कराविय अग्गलक्ख ॥९॥

घत्ता

णं भअण-महिहर-तुहिण-गिरि　बहु-कालहों एक्कहिँ वडिय ।
कोवारुणें दारुणें आहवणें　रामण-राम वे वि भिडिय ॥१०॥

नहीं है, परन्तु जब हंसद्वीपमें शत्रुसेना प्रवेश कर चुकी थी, तब रत्नाश्रवके सच्चे बेटे होते हुए भी, तुम्हें इस प्रकार छोड़कर पलायन करना क्या उचित था ?" यह कहकर, निडर होकर मयने उसके रथ कवच और छत्रके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। निशाचर-सेना में कोलाहल होने लगा। देववनिताएँ आपसमें बातें करने लगीं। विभीषण सहित हनुमान्, भामण्डल और सुग्रीव अपना तेज खो चुके हैं। गतपाप मयने वृद्ध होनेके कारण किसी तरह उनके प्राण भर नहीं लिये ॥१-१०॥

[७] तब दशरथके बड़े बेटे रामने सिंहोंसे जुते हुए अपने रथको आगे बढ़ाया। जुते हुए सिंहोंके नख एकदम पैने थे और उनकी अयाल चंचल थी। रथ पर सफेद महाध्वज लगे हुए थे। यशकी धवल धूलसे उनके अंग धवल थे। धवल और स्वच्छ कमलकी तरह उनकी नाभि थी। उनका वंश धवल था और वह स्वभावसे भी धवल थे। पुरुष लक्ष्मीके लिए राजहंसके समान थे। वह सफेदोंमें सफेद थे। उनका आतपत्र भी सफेद था। इस प्रकार निशाचरोंपर प्रहार करते हुए राम वहाँ पहुँचे। खेल खेलमें, उन्होंने मयका घमण्ड चूर-चूर कर दिया, रथ रोक कर, उसे वापस कर दिया। ठीक इसी समय, देवताओंको सतानेवाले रावणने अपना रथ बीचमें लाकर खड़ा कर दिया। बहुरूपिणी विद्याके सहारे, वह तरह-तरहके रूपोंका प्रदर्शन कर रहा था। दस हजार हाथी उसके रथको खींच रहे थे। उसके शरीरके दस हजार अंगरक्षक थे। सारथि उसे अग्रिम लक्ष्यका संकेत दे रहा था। राम और रावण ऐसे लगते थे मानो हिमगिरि और अञ्जनगिरिको बहुत समयके बाद एकमें गढ़ दिया गया हो। उस भयंकर युद्धमें क्रोधाभिभूत राम और रावण आपसमें भिड़ गये ॥१-१०॥

[८]

॥ दुवई ॥ आणइ-जलण-जाल-मालावलीविया वे वि दारुणा ।
कुद्ध-मयन्ध-गन्ध-सिन्धुर व वलुद्धुर राम-रामणा ॥१॥

तो रण-भर-धवल-धुरन्धरेण । अप्फालिउ धणु दस-कन्धरेण ॥२॥
णं गज्जिउ पलय-महाघणेण । णं घोरिउ घोरु जमाणणेण ॥३॥
अप्पाणु घित्तु णं णहयलेण । णं विरसिउ विरसु रसायलेण ॥४॥
णं महियलें णिवडिउ वज्ज-घाउ । वलें रामहों कम्पु महन्तु जाउ ॥५॥
मय विगलिय मत्त-महागयाहँ । रह फुट्ट तुट्ट पग्गह हयाहँ ॥६॥
झल्लोहलिहूअ णरिन्द सव्व । णिप्फन्द णिराउह गलिय-गव्व ॥७॥
धय-छत्तेंहिं कडयड-सद्दु घुट्ठु । कायर वाणर थरहरिय सुट्ठु ॥८॥
बोल्लन्ति परोप्परु 'णट्ठु कज्जु । संघार-कालु लएँ ढुक्कु अज्जु ॥९॥

घत्ता

एत्तहें रयणायरु दुप्पगमु एत्तहें दारुणु दहवयणु ।
एवहिं जीवेवउ कहि तणउ दिट्ठु ण परियणु घरु सयणु' ॥१०॥

[९]

॥ दुवई ॥ तो णग्गोह-रोह-पारोह-पईहर-बाहु-दण्डेंणं ।
विउसुग्गीव-जोव हरणेण रणे मत्तण्ड-चण्डेंणं ॥१॥

अप्फालिउ वज्जावत्तु चाउ । तहों सद्दें कहों ण वि गयउ णाउ ॥२॥
तहों सद्दें वहिरिउ णहु असेसु । थिउ अणु जॅ णाइँ सरणावसेसु ॥३॥
तहों सद्दें णं णायउलु तुट्टु । कह कह वि ण कुम्म-कडाहु फुट्टु ॥४॥
रसरसिय सुसाविय सायरा वि । कम्पाविय चन्द-दिवायरा वि ॥५॥
डोल्लाविय कुलगिरि दिग्गया वि । अप्पंपरिहूअ सुरिन्दया वि ॥६॥

[८] वे दोनों ही आनकी रूपी आगकी ज्वालमालासे जल रहे थे। राम और रावण दोनों ही क्रुद्ध और मदान्ध गजकी भाँति बलसे उद्धत थे। तब युद्धभार उठानेमें अत्यन्त निपुण रावणने अपना धनुष चढ़ाया। वह ऐसा लगा, मानो प्रलय-महामेघ गरजा हो, या मानो यममुखने घोर गर्जना की हो, या आकाशतल स्वयं आ गिरा हो, या रसातलने विरूप शब्द किया हो, मानो महीतलपर वज्र गिर पड़ा हो। उससे रामकी सेनामें हड़कम्प मच गया। मतवाले महागजोंका मद गलित हो गया, रथ टूट गये और अश्वोंकी लगामें टूट गयीं। सब राजाओंमें हलचल मच गयी। सबके सब निस्पन्द; अस्त्र-विहीन और गलितमान हो उठे। ध्वज और छत्रोंसे कड़कड़ ध्वनि सुनाई देने लगी। कायर वानर भयके मारे थर्रा उठे। आपसमें वे कह रहे थे कि अब काम बिगड़ गया, लो अब तो विनाशका समय आ पहुँचा। एक ओर दुर्गम समुद्र था, और दूसरी ओर दारुण रावण था, अब किसके लिए कैसे जीवित रहें, परिजन घर और स्वजन कोई भी दिखाई नहीं दे रहे हैं ॥१-१०॥

[९] तब, वटवृक्षके प्ररोहोंके समान दीर्घ बाहुदण्डवाले और मायावी-सुग्रीवके प्राणोंका हरण करने वाले सूर्यके समान प्रचण्ड रामने अपना वज्रावर्त धनुष चढ़ाया। उसके शब्दसे ऐसा कौन था, जिसका गर्व न गया हो। उस शब्दने समूचे आकाशको बहरा बना दिया, संसार ऐसा लगा मानो मरणाव-शेष बचा हो, उस शब्दसे नागकुल पीडित हो उठा। किसी प्रकार कछुएकी पीठ नहीं फूटी। समुद्र तक रिसकर चूने लगा। सूर्य और चन्द्रमा तक काँप गये। कुलपर्वत और दिग्गज डोल

दसकन्धर-रह-करि-णियरु रडिउ। कहइँ पायारु दडत्ति पडिउ ॥७॥
सुह-धवलइँ णयणाणन्दिराइँ। पडियाइँ असेसइँ मन्दिराइँ ॥८॥
कों वि पाणेंहिँ मुक्कु अणाहयो वि। णरु कायरु काइ मि कहइ को वि ॥९॥
'लइ णासहुँ लइँति मयरहरु एत्थ वसन्तहुँ णाहि धर।
धणुहर-टङ्कारु जेँ पाणहरु जइ पइँ आइय राम-सर' ॥१०॥

[१०]

ताव दसाणणेण अपमाणेंहिँ बाणेंहिँ छाइयं णहं।
दसरह-णन्दणेण ते छिण णाइँ खिय पडिय पडिवहं ॥१॥
तो हसिउ रामेण। रामाहिरामेण ॥२॥
उच्छलिय-णामेण। लद्धारिथामेण ॥३॥
'धणुवेय-परिहीण। ओसरु पराहीण ॥४॥
जज्जाहि आवासु। अण्णमउ गुरु-पासु ॥५॥
धणु-लक्खणं बुज्झु। दिवसेहिँ पुणु जुज्झु ॥६॥
एण जि पयावेण। दुण्णय-सहावेण ॥७॥
संताविया देव। काराविया सेव ॥८॥
अहवइ असाराइँ। रणेँ चोर-जाराइँ ॥९॥
वियलन्ति सत्ताइँ। ण वहन्ति गत्ताइँ' ॥१०॥
सो णिसियरिन्देण। णिज्जिय-सुरिन्देण ॥११॥
जम-धणय-झम्पेण। कइलास-कम्पेण ॥१२॥
सहसयर-धरणेण। वर-वरुण-धरणेण ॥१३॥
सुर-भवण-भीसेण। वीसद्ध-सीसेण ॥१४॥
कोवग्गि-दित्तेण। बहुणेक्क-चित्तेण ॥१५॥
सम-भुअ-देहेण। णं पलय-मेहेण ॥१६॥
भू-भङ्गुरच्छेण। मण-पवण-दच्छेण ॥१७॥

गये। इन्द्रने भी पराजय मान ली। रावणके रथमें जुते हुए हाथी चिंघाड़ने लगे। लंका नगरीका परकोटा तड़क कर टूट गया। नेत्रोंके लिए आनन्द देनेवाले सभी प्रासाद ध्वस्त हो गये। किसी-किसीने तो आहत हुए बिना ही अपने प्राण छोड़ दिये। कोई एक योद्धा कह रहा था कि उस कायरने यह सब क्या किया ? लो अब तो मरे, समुद्रको लाँघकर यहाँ रहते हुए भी धरती नहीं है। जब रामके धनुषकी टंकार इतनी प्राणघातक है, तो तब क्या होगा, जब रामके तीर आयेंगे ॥१-१०॥

[१०] इतनेमें रावणने अनगिनत तीरोंसे आसमान छा दिया। रामने उन्हें छिन्न-भिन्न कर दिया, और वे तीर उल्टे शत्रुकी सेना पर जा गिरे। स्त्रियोंके लिए रमणीय, सुप्रसिद्धनाम और दुश्मनकी शक्ति पा लेनेवाले रामने हँसते हुए कहा, "अरे, धनुर्वेदसे अपरिचित, और पराधीन, तुम हटो, अपने घर जाओ, किसी दूसरे गुरुसे सीख कर आओ। पहले धनुषका लक्षण समझो कुछ दिनों तक, फिर मुझसे युद्ध करने आना। इसी प्रताप और अपने अन्यायी स्वभावसे तुमने देवताओंसे अपनी सेवा करवायी और सताया है, अथवा चोरों और डकैती करने वालोंके पास कुछ नहीं टिकता। उनका पौरुष गल जाता है, सत्ता क्षीण हो जाती है। उनके शरीर काम नहीं करते।" देवताओंको कँपा देनेवाले और कैलास पर्वतको उठानेवाले, सहस्रकरको पकड़नेवाले, श्रेष्ठ वरुणका वारण करनेवाले, दस सिरवाले, सुरलोकके लिए भयंकर, क्रोधकी ज्वालासे दीप्त, मनमें वधका संकल्प लिये हुए, वह श्यामशरीर रावण ऐसा लगता था मानो प्रलयका मेघ हो। भ्रू-भंगिमासे भयंकर और अन-

घत्ता

बीसहि मि करेँहिं बीसाउहइँ एक्क-वार रणेँ मुक्काइँ ।
घरु किविणहोँ भामन्तु वइ जिह रामहोँ पासु ण ढुक्काइँ ॥१८॥

[११]

॥दुवई॥ णवर दसाणणेण वामोहु तमोहु सरो विसज्जिओ ।
सो वि वलुद्धुरेण रामेण पयंग-सरेण णिज्जिओ ॥१॥

रामणेँण विसज्जिउ कुलिस-दण्डु । सोँ वि रामेँ किउ सय-खण्ड-खण्डु २
रामणेँण समाहउ पायवेण । सोँ वि भग्गु महत्थेँ वायवेण ॥३॥
रामणेँण विसज्जिउ गिरि विचित्तु । सोँ वि रामेँ वलि जिह दिसहिँ वित्तु ४
अग्गेउ मुक्कु दस-कन्धरेण । उल्हाविउ सो वि वारुण-सरेण ॥५॥
रामणेँण विसज्जिउ पण्णयत्थु । सोँ वि गारुड-वाणेँहिँ किउ णिरत्थु ६
रामणेँण गयाणण-सर विमुक्क । ताह मि वल-वाण-मइन्द ढुक्क ॥७॥
रामणेँण विसज्जिउ सायरत्थु । तं मन्दर-घाएं णिउ णिरत्थु ॥८॥
जं जं आमेल्लइ णिसियरिन्दु । तं तं वि णिवारइ रामचन्दु ॥ ९ ॥

घत्ता

रणेँ रामण-राम-सरेँहिँ वलइँ समर-भूमि मेल्लावियइँ ।
दुप्पुत्तहिँ जिह पहवन्तएँहिँ उहय-कुलइँ संतावियइँ ॥ १० ॥

[१२]

॥ दुवई ॥ विण्णि वि सुद्ध-वंस रयणासव-दसरह-जेट्ठ-णन्दणा ।
विण्णि वि दिण्ण-सङ्ख करि-केसरि ओसव-पवर-सन्दणा ॥ १

विहिँ हत्थेँहिँ पहरइ रामचन्दु । वीसहिँ भुव-दण्डेँहिँ णिसियरिन्दु ॥२
अ-पमाणे वाण राहवहोँ तो वि । अजरिय कङ्क रयणायरो वि ॥३॥

रूपी पवनसे वह चंचल था। उसने अपने बीसों हाथोंसे बीस हथियार एक साथ युद्धमें छोड़ दिये, परन्तु वे घूमते हुए भी रामके पास उसी प्रकार नहीं पहुँचे, जिस प्रकार याचक किसी कंजूसके पास नहीं पहुँच पाता ॥१-१८॥

[११] तब रावणने व्यामोह और तमोह रामके तीर छोड़े, परन्तु रामने उन्हें भी अपने पतंग तीरसे जीत लिया। इसपर रावणने वज्रदण्ड फेंका, रामने उसके भी दो टुकड़े कर दिये। रावणने तब वृक्ष मारा, रामने उसे भी अपनी बहुमूल्य तलवार से काट दिया। तब रावणने एक विचित्र पर्वतसे आक्रमण किया, रामने उसे भी बलिके अन्नकी तरह सब दिशाओंमें बखेर दिया। तब रावणने आग्नेय बाण छोड़ा, रामने वारुणतीरसे उसे शान्त कर दिया। रावणने पन्नगतीर विसर्जित किया, परन्तु रामके गरुड़ बाणने उसे भी व्यर्थ कर दिया। रावणने तब गजमुख तीर छोड़ा, परन्तु रामके सिंहमुख तीरके सम्मुख वह भी नहीं ठहर सका। रावणने सागर बाण मारा, उसे भी रामने मन्दराचल तीरसे व्यर्थ कर दिया। इस प्रकार निशाचरराज जो भी तीर छोड़ता, राघवेन्द्र उसीको निरर्थक कर देते। इस प्रकार समूची युद्धभूमि और सेना राम और रावणके तीरोंसे उसी प्रकार संतप्त हो उठी जिस प्रकार खोटे मार्गपर जाती हुई पुत्रियोंसे दोनों कुल पीड़ित हो उठते हैं ॥१-१०॥

[१२] रावण और राम दोनों शुद्ध वंशके थे। वे क्रमशः वैश्रवण और दशरथके पुत्र थे। दोनोंने शंख बजवा दिये और अपने रथोंमें उत्तम सिंह जुतवा दिये। रामचन्द्र दोनों हाथोंसे उस पर प्रहार कर रहे थे, जब कि रावण अपने बीसों हाथोंसे। तब भी राघवके तीर गिने नहीं जा सकते थे। उनसे लंका

काइअइ गयणु चडन्तएहिँ । अलक्खिय-सर-महि-णिवडन्तएहिँ ॥४॥
वाएवउ चत्तु पहञ्जणेण । रहु लक्खिउ अदितिहिँ णन्दणेण ॥५॥
दिस-करिहुँ असेसहुं गलिउ गाउ । हल्लोहलिहूअउ जगु जें साउ ॥६॥
भिज्जन्ति वलहूँ जलेँ जलयरा वि । णहेँ णट्ठ देव थलेँ थलयरा वि ॥७॥
सो ण वि गयवरु सो ण वि तुरङ्गु । सो ण वि रहवरु तण्ण वि रहङ्गु ॥८॥
सो ण वि धउ तण्ण वि आयवत्तु । जहिँ राम-सरहूँ सउ सउ ण पत्तु ॥९॥

घत्ता

गय सत्त दिवह जुज्झन्ताहुँ तो वि ण छेउ महाहवहों ।
लहु लक्खणु अन्तरेँ देवि रहु थियउ णाइँ भिउ राहवहों ॥१०॥

[१६]

॥दुवई॥ 'बल महँ किङ्करेण किं कीरइ जइ तुहुँ धरहि धणुहरं ।
णिसियर-कुल-कियन्तु हउँ अज्जमि रावण चाहेँ रहवरं ॥१॥
दुम्मुह दुच्चरिय दुराय-राय । तउ राहव-केरा कुद्ध पाय ॥२॥
वलु उरेँ कउ चुक्कहि महु जियन्तु । बहु-कालेँ पावउ घउ कियन्तु' ॥३॥
तो कोव-जलण-जालोलि-जलिउ । 'हणु हणु' भणन्तु लक्खणहोँ वलिउ ॥४॥
वे वासुएव-पडिवासुएव । कुल-धवल धणुद्धर सावलेव ॥५॥
गय-गारुड-सन्दण कसण-देह । उण्णइय णाइँ णहेँ पलय-मेह ॥६॥
णं सोह महीहर-मत्थयत्थ । णं विञ्झ-सज्झ उभयावलत्थ ॥७॥
णं अञ्जण-महिहर विण्णिहूअ । णं णर-णिहेण थिय काल-दूय ॥८॥

नगरी और समुद्र अधीर हो गया था। ऊपर चढ़ते और धरती पर गिरते हुए अस्खलित तीरोंने आसमान ढँक दिया। हवाका बहना बन्द था। दशरथनन्दन रामने सूर्यकी गति रोक दी। दिग्गजोंके शरीर गलने लगे। समूचे विश्वमें खल-बली मच गयी। सेनाएँ नष्ट होने लगीं। जलके जलचर प्राणी, आकाशके देवता और धरतीके थलचर प्राणी नष्ट होने लगे। ऐसा एक भी गजवर नहीं था, अश्व नहीं था, रथवर और चक्र नहीं था, ऐसा एक भी ध्वज और आतपत्र नहीं था, जिसके रामके तीरोंसे सौ-सौ टुकड़े न हुए हों। इस प्रकार लड़ते हुए उनके सात दिन बीत गये। फिर भी युद्धका अन्त नहीं दीख रहा था। इतनेमें अपना रथ खींच कर लक्ष्मण इस प्रकार खड़ा हो गया, मानो रामकी विजय ही आकर खड़ी हो गयी हो ॥१–१०॥

[१२] उसने निवेदन किया,—"हे राम, यदि आप स्वयं शस्त्र उठाते हैं तो फिर मुझ सेवकका क्या होगा? मैं निशाचर-कुलके लिए साक्षात् यम हूँ! हे रावण, तुम अपना रथ आगे बढ़ाओ। हे दुर्मुख दुश्चरित, दुराजराज, तुम सचमुच रामके क्रुद्ध पाप हो। आगे बढ़, क्या तू मुझसे जीवित बच सकता है, आज बहुत समयके बाद, यमराज सन्तुष्ट होगा।" यह सुनकर रावण क्रोधकी ज्वालासे जल उठा। वह 'मारो-मारो' कहता हुआ दौड़ा। तब लक्ष्मण और रावण, दोनों वासुदेव और प्रति वासुदेव तैयार हो उठे। दोनोंका ही वंश धवल था। दोनों ही स्वाभिमानी और धनुर्धारी थे दोनोंके रथोंमें गज और गरुड़ जुते हुए थे, दोनों श्यामशरीर थे मानो आकाश-में प्रलय मेघ हों। मानो पहाड़की चोटीपर सिंह हों, मानो विन्ध्याचल और उदयाचल पहाड़ हों, मानो अञ्जनगिरिके

णं रवि-रत्तुप्पल-णीडणत्थ ।   णं वरएँ पसारिय उहय हत्थ ॥९॥

घत्ता

कङ्केसर-लक्खण उत्थरिय   पलय-जलय-गम्भीर-रव ।
वेयाल-सहासइँ णवियइँ   'अइ पर होसइ अज्ज धव ॥१०॥

[१४]

॥दुवई॥ जं किउ राहवेण तं तुहु मि करेसहि भूमि-गोयरा' ।
दह-दाहिण-करेंहिं दह-वयणें दह कड्ढिय महा-सरा ॥१॥

पहिलेण पवरु णग्गोह-रुक्खु ।   बीएण महग्गिरि दिण्ण-दुक्खु ॥२॥
जलु तइएं जलणु चउत्थएण ।   पञ्चमेंण सीहु फणि छट्टएण ॥३॥
सत्तमेंण मत्त-मायङ्ग-कोलु ।   अट्ठमेंण णिसायरु विसम-सीलु ॥४॥
णवमेण महन्तु महन्धयारु ।   दहमेण महोवहि-हत्थियारु ॥५॥
दस दिव्व महा-सर पलय-भाव ।   दस दिसउ णिरुम्भेंवि ठन्ति जाव ॥६॥
तो लक्खणु वुत्तु विहीसणेण ।   'दिव्वत्थइँ लइयइँ रावणेण ॥७॥
एक्केक्कु जें होइ अणेय-भाय ।   एक्केक्कु जें दरिसइ विविह भाय ॥८॥
एक्केक्कु जें जगु जमहँ वि समत्थु ।   लइ एहएँ अवसरें वाहि हत्थु ॥९॥

घत्ता

जइ आयइँ पइँ ण णिवारियइँ   आयामेप्पिणु भुअ-जुअलु ।
तो ण वि हउँ ण वि तुहुँ रामु ण वि   ण वि सुग्गीउ ण पवण-बलु' ॥१०॥

[१५]

॥ दुवई ॥ तो लच्छीहरेण तहु उज्झइ हुअवह-पुञ्ज-सच्छहं ।
माया-महिहरो वि मुसुमूरिउ दारुण-वज्ज-दण्डेंणं ॥१॥

दो टुकड़े हो गये हों, मानो मनुष्यके रूपमें कालदूत हों, मानो धरतीने रविरूपी लाल कमल तोड़नेके लिए अपने दोनों हाथ फैला दिये हों। प्रलयमेघके समान सान्द्रस्वर लक्ष्मण और रावण उछल पड़े। यह देखकर सैकड़ों बैताल नाच उठे, उन्हें लगा, चलो आज खूब तृप्ति होगी ॥ १–१० ॥

[१४] लक्ष्मणको देखकर रावणने कहा, "जो कुछ राघवने किया है, लगता है, वही तुम सब करोगे।" उसने अपने दसों दायें हाथोंमें दस महातीर निकाल लिये। पहलेमें महान् वट वृक्ष था। दूसरेमें दुखदायी महागिरि था, तीसरेमें पानी था और चौथेमें आग थी, पाँचवेंमें सिंह और छठेमें नाग था, सातवेंमें महागज था, आठवेंमें विषम स्वभाव निशाचर था। नवेंमें महान्धकार था, दशवेंमें महोदधि था। इस प्रकार जब उसने प्रलय स्वभाववाले दसों महातीर ले लिये और दसों दिशाओंको रोक कर स्थित हो गया, तो विभीषणने कहा, "लक्ष्मण, रावणने अपने दिव्य अस्त्र ले लिये हैं। एक होकर भी उनके अनेक भाग हो सकते हैं। उनमें-से एक-एक भी विविध मायाका प्रदर्शन कर सकता है। उनमें एक भी समूचे संसारका विनाश करनेमें समर्थ है। लो यह है अवसर, बढ़ाओ अपना हाथ। यदि तुमने अपने दोनों बाहुओंको फैलाकर इन अस्त्रोंको नहीं रोका तो न मैं बचूँगा, न तुम, न राम, न सुग्रीव और न ही वानर सेना" ॥ १–१० ॥

[१५] यह सुनकर, लक्ष्मणने अपने अग्नि-बाणसे उस बड़ महावृक्षको भस्म कर दिया और वज्रदण्डसे मायामहीधरको भी मसल डाला, वायव्य तीरसे उसने वारुण-अस्त्र नष्ट कर दिया और वारुण अस्त्रसे हुताशन अस्त्रको ध्वस्त कर दिया। उसके

वायवेण विणासिउ वारुणत्थु । वारुणेण हुआसणु किउ णिरत्थु ॥२॥
सरहेण सीहु गरुडेण णाउ । पञ्चाणणेण गय (?) दिण्णु घाउ ॥३॥
णिसियरु णिरुद्धु णारायणेण । तमु णासिउ दिणयर-पहरणेण ॥४॥
सोसिउ समुद्दु वडवाणलेण । तहिँ अवसरें आयउ णहयलेण ॥५॥
वर कण्णउ अट्ठ मणोहराउ । सुर-करि-कुम्भयल-पओहराउ ॥६॥
ससिवद्धण-विज्जाहर-सुआउ । मालइ-माला-कोमल-भुआउ ॥७॥
'वइदेहि-सयम्वरें वुत्तियाउ । लच्छीहर तुह कुल-उत्तियाउ ॥८॥
जय णन्द वड्ढ सिद्धत्थु होहि' । तं णिसुणेंवि हरिसिउ हरि-विरोहि ॥९॥

घत्ता

सिद्धत्थु अत्थु मणेँ सम्भरेंवि मुक्कु णिसायर-णायगेँण ।
तमि (?तं) धरिउ कुमारें पत्थु णाइँ अत्थेँ विग्घ-विणायगेँण ॥१०॥

[१६]

॥ दुवई ॥ जं जं किं पि पहरणं मुअइ णिसायर-वइ दसाणणो ।
तं तं सर-सएहिँ विणिवारइ अद्ध-वहेँ जेँ लक्खणो ॥१॥
तो तियस-विन्द-कन्दावणेण । बहुरूविणि चिन्तिय रावणेण ॥२॥
'दे दे आएसु' भणन्ति आय । मुह-कुहरें विणिग्गय तहोँ वि वाय ॥३॥
'जं अट्ठ दिवस आराहिया-सि । बहु-मन्तेँहिँ थोत्तेँहिँ साहिया-सि ॥४॥
तें सहल मणोरह करहि अज्जु । भू-गोयर-महिहरें होहि वज्जु ॥५॥
दहवयणहोँ केरउ रूवु लेवि । मायामउ रहवरु होहि देवि' ॥६॥
उत्थरिय विज्ज सहुँ लक्खणेण । दोहाविय तेण वि तक्खणेण ॥७॥
परिसाविय विज्जएँ परम माय । अत्थक्कएँ रावण चेप्पिम जाय ॥८॥

सिंहको और गरुड़से नाग अस्त्रको नष्ट कर दिया। पंचानन (सिंह) से उसने गजपर आघात कर दिया। नारायण तीरसे उसने निशाचरको रोक लिया और दिनकर अस्त्रसे अन्धकार-को नष्ट कर दिया, बड़वानलसे समुद्रका शोषण कर लिया। ठीक इसी अवसरपर आकाशतलसे आठ सुन्दर कन्याएँ नीचे उतरीं। उनके स्तन ऐरावतके कुम्भस्थलके समान विशाल थे। वे शशिवर्धन नामके विद्याधरकी कन्याएँ थी। मालतीमालाके समान उनकी भुजाएँ कोमल थीं। किसीने कहा, "हे लक्ष्मण, सीताके स्वयंवरमें दी गयीं ये कुलपुत्रियाँ तुम्हारे लिए हैं। तुम्हारी जय हो, बढ़ो, सफलता तुम्हें वरे।" यह सुन कर लक्ष्मणका दुश्मन रावण बहुत प्रसन्न हुआ। निशाचरराजने अपने मनमें सिद्धार्थ अस्त्रका ध्यान किया और उसे कुमार लक्ष्मणपर छोड़ दिया। उसने भी अपने विघ्नविनाशन अस्त्रसे, आकाशमें आते हुए उस अस्त्रको रोक लिया ॥ १-१० ॥

[१५] निशाचरस्वामी रावण जो-जो अस्त्र छोड़ता लक्ष्मण अपने शत-शत तीरोंसे उन्हें आधे रास्तेमें ही रोक लेता। तब देवताओंको सतानेवाले रावणने अपने मनमें बहुरूपिणी विद्या-का ध्यान किया। वह एकदम आयी और बोली, "आदेश दीजिए, आदेश दीजिए"! यह सुनकर रावणने अपने मुखसे कहा, "अनेक मन्त्रों और स्तुतियों-स्तोत्रोंसे मैंने आठ दिनों तक तुम्हारी आराधना की है, तुम आज हमारी समस्त कामनाएँ पूरी करो। इस मनुष्यरूपी पहाड़पर वज्र लेकर गिर पड़ो। तुम रावणका रूप धारण कर लो और अपना मायामय रथ ले लो"। यह सुनकर विद्या लक्ष्मणके सम्मुख उछली। उसने भी उसके दो टुकड़े कर दिये। तब विद्याने अपनी उत्कृष्ट विद्याका प्रदर्शन किया। शीघ्र ही उसने दो रावण बना दिये।

ते पहय चयारि समोत्थरन्ति । पडिपहय चयारि वि अट्ठ हुन्ति ॥९॥

घत्ता

सोलह बत्तीस दुण-कमेण विविह-रूव-दरिसावणहुँ ।
बहुरूविणि विज्जएँ णिम्मविय रणेँ अक्खोहणि रावणहुँ ॥१०॥

[१७]

॥ दुवई ॥ जलेँ थलेँ गयणेँ छत्तेँ धएँ तोरणेँ पच्छएँ पुरेँ वि रावणो ।
तो लच्छीहरेण सरु मेल्लिउ माया-उवसमावणो ॥१॥

तहोँ सरहोँ पहावेँ विज्ज पवर । थिउ एक्कु दसाणणु होवि णवर ॥२॥
उत्थरिउ अणन्तेँहिँ सरवरेहिँ । णाराएँहिँ वीरेँहिँ तोमरेहिँ ॥३॥
वावल्लेहिँ भल्लेहिँ कण्णिएहिँ । अवरहि मि असेसहिँ वण्णिएहिँ ॥४॥
सोमित्तिं तं सर-जालु छिण्णु । रहु लण्डेँ वि पुणु बलि दिसहिँ दिण्णु॥५॥
अण्णहिँ रहवरेँ आरुहइ जाव । सिरु हणेँवि खुरुप्पें छिण्णु ताव ॥६॥
णं हंसें तोडिउ आरणालु । चल-जीहु वियड-दाढा-करालु ॥७॥
कहकहकहन्तु लहुक्क-वयणु । जालोलि-फुलिङ्ग-मुअन्त-णयणु ॥८॥
उब्भड-भिउडी-भङ्गुरिय-भालु । कम्पिर-कवोलु चल-दाढियालु ॥९॥

घत्ता

सिरु स-मउडु पहु-विहूसियउ सहइ फुरन्तेँहिँ कुण्डलेँहिँ ।
णं मेरु-सिङ्गु सइँ णिवडियउ चन्द-दिवायर-मण्डलेँहिँ ॥१०॥

[१८]

॥ दुवई ॥ ताव समुब्भवाइँ रिउ-देहहोँ अण्णइँ वेण्णि सीसइं ।
'मरु मरु' 'पहरु पहरु' पभणन्तइँ उब्भड-भिउडि-भीसइं ॥१॥

जब वे आहत हुए, उसने चार उत्पन्न कर दिये। जब वे चारों आहत हुए तो वे आठ हो गये। फिर आठसे सोलह और सोलहसे बत्तीस, इसी द्विगुणित क्रममें बहुरूपिणी विद्याने विविधरूपोंमें दिखाई पड़नेवाले रावणोंकी एक अक्षौहिणी सेना ही उत्पन्न कर दी ॥ १-१० ॥

[१७] जल, थल, आकाश-छत्र, ध्वज, तोरण, पीछे और आगे सब तरफ रावण ही रावण दिखाई देते थे। तब कुमार लक्ष्मण ने मायाका शामक तीर चलाया। उस तीर के प्रभावसे बहुरूपिणी विद्या, केवल एक रावण होकर स्थित हो गयी। अब उसने अनन्त तीरों नाराचों वावल्ल भालों कणिकाओं आदि तीरोंसे आक्रमण किया, परन्तु लक्ष्मणने उसे भी छिन्न-भिन्न कर दिया। उसका रथ नष्ट कर उसकी बलि दसों दिशाओंमें बखेर दी। रावण दूसरे रथमें बैठ ही रहा था कि लक्ष्मणने खुरपेसे आक्रमण कर उसका सिर काट डाला, मानो हंसने कमलनाल तोड़ दी हो, उसकी जीभ चंचल थी, वह विकट दाढ़ीसे भयंकर दीख पड़ता था। उसका मुख कुछ पुकार सा रहा था, नेत्रोंसे आगके कण बरस रहे थे। उसका भाल उठी हुई भौंहोंसे विकराल दिखाई देता था। गाल काँप रहे थे और दाढ़ी हिल रही थी। मुकुट सहित उनका सिर पट्टसे अलंकृत था। वह चमकते हुए कुण्डलोंसे शोभित था। वह ऐसा लगता था, मानो चन्द्र और सूर्यमण्डलोंके साथ मेरु पर्वतका शिखर गिर पड़ा हो ॥१-१०॥

[१८] इतनेमें दुश्मनके शरीरसे दो और सिर निकल आये। उद्भट भौंहोंसे भयंकर वे कह रहे थे, "मारो मारो, प्रहार करो, प्रहार करो।" कोलाहल करते हुए उन सिरोंको भी लक्ष्मणने

ताइँ वि तोडियइँ स-कडयकाइँ । णं दहवयणहों दुण्णय-फलाइँ ॥२॥
तो अवरि अवारि समुट्ठियाइँ । णं थल-कमलिणि-कमलइँ थियाइँ ॥३॥
पुणु अण्णइँ अट्ठ समुग्गयाइँ । णं फणसहों फणसइँ णिग्गयाइँ ॥४॥
पुणु सोलह पुणु बत्तीस होन्ति । चउसट्ठि सिरइँ पुणु णीसरंति ॥५॥
सउ अट्ठावीसउ तक्खणेण । पाडिज्जइ सीसहुँ लक्खणेण ॥६॥
छप्पण्णइँ विण्णि सयइँ कियाइँ । छिण्णइ कुमारु जिह तुडियाइँ ॥७॥
पुणु पञ्च सयाइँ स-वारहाइँ । कमलाइँ व तोडइ तुरिउ ताइँ ॥८॥
पुणु चउवीसोत्तरु सिर-सहासु । पाडइ वच्छ-त्थल-सिरि-णिवासु ॥९॥

घत्ता

सीसइँ छिन्दन्तहों लक्खणहों विउणउ विउणउ वित्थरइ ।
रणेँ दक्खवन्तु बहु-रूवाइँ रावणु छन्दहों अणुहरइ ॥१०॥

[१९]

॥ दुवई ॥ जिह णिट्ठन्ति णाहि रिउ-सीसइँ तिह लक्खण-महासरा ।
'दुक्करु थत्ति एत्थु रणेँ होसइ' णहेँ बोल्लन्ति सुरवरा ॥१॥
तो जण-मण-णयणाणन्दणेण । पहरन्तेँ दसरह-णन्दणेण ॥२॥
रिउ-सिरइँ ताव विणिवाइयाइँ । रण-भूमिहिँ जाव ण माइयाइँ ॥३॥
जिह सीसइँ तिह हय बाहु-दण्ड । णं गरुडेँ विसहर कय दु-खण्ड ॥४॥
सय सहस लक्ख अ-परिप्पमाण । एक्केक्कएँ तहि मि अणेय बाण ॥५॥
णग्गोहहों णं पारोह छिण्ण । णं सुर-करि-कर केण वि पइण्ण ॥६॥
सब्वङ्गुलि सव्व-वाहुवलङ्ग । णं पञ्च-फणावलि थिय भुअङ्ग ॥७॥
कों वि करयलु सहइ स-मण्डलग्गु । णं तरुवर-पल्लउ कयहों लग्गु ॥८॥
कों वि सहइ सिलिमुह-सङ्गमेण । णं कइउ भुवङ्गु भुअङ्गमेण ॥९॥

इस प्रकार तोड़ दिया मानो जैसे रावणकी अनीतिके फल हों। तो फिर चार सिर उठ खड़े हुए, मानो धरती पर गुलाबके फूल खिले हों, उनके काटे जाने पर, फिर आठ सिर निकल आये, मानो क्रमसमें फणस (नागफन) निकल आये हों। फिर सोलह, फिर बत्तीस, और चौंसठ, इसी क्रमसे सिर निकलते रहे। तब लक्ष्मणने एक सौ अट्ठाईस सिर धरती पर गिरा दिये, फिर वे दो सौ छप्पन हो गये, लक्ष्मणने उन्हें भी पापोंके समान काट डाला, फिर वे पाँच सौ बारह हो गये, उन्हें भी लक्ष्मणने कमलकी भाँति तोड़ डाला। वे एक हजार चौबीस हो गये, कुमारने बहुरूपिणीविद्याके निवासरूप उन्हें भी तोड़ डाला। सिरोंके काटते-काटते लक्ष्मणकी निपुणता दुनियामें प्रकट होने लगी। इस प्रकार युद्धमें विविध रूपोंका प्रदर्शन कर रावण अपने स्वभावका ही अनुकरण कर रहा था ॥१-१०॥

[१९] जिस प्रकार रावणके सिर नष्ट नहीं हो रहे थे, उसी प्रकार लक्ष्मणके महातीर भी अक्षय थे। यह देखकर आकाशमें देवताओंकी बातचीत हो रही थी कि युद्धमें कड़ी स्थिरता रहेगी। उसके बाद जनोंके नेत्रों और मनोंको आनन्द देनेवाले, दशरथ-नन्दन लक्ष्मण शत्रुके सिरोंको तबतक गिराता चला गया, जबतक युद्धभूमि पट नहीं गयी। सिरोंकी ही भाँति, उसने उसके हाथ ऐसे काट गिराये मानो गरुड़ने साँपके दो टुकड़े कर दिये हों। सौ, हजार, लाख, अगिनत हाथ थे, और हाथोंमें अगिनत तीर थे। मानो वटवृक्षसे उसके तने ही टूट गये हों। या किसीने हाथीकी सूँड़ काट दी हो, पाँचों अंगुलियाँ थीं और उनमें सुन्दर नख ऐसे चमक रहे थे, मानो पाँच फनोंवाला नागराज हो। कोई हाथ तलवार लिये ऐसा सोह रहा था मानो वृक्षका पत्ता लतामें आ लगा हो। कोई भ्रमरोंके साथ

घत्ता

महि-मण्डलु मण्डिउ कर-सिरेंहिं छुडु छुडिएहिँ स-कोमलेंहिं ।
रण-देवय अच्चिय लक्खणेंण णाइँ स-णालेंहिँ उप्पलेंहिं ॥१०॥

[२०]

॥ दुवई ॥ गय दस दिवस बिहि मि जुज्झन्तहँ तो वि ण णिट्ठियं रणं ।
माया रावणेण बोल्लिज्जइ 'जइ जीवेण कारणं ॥१॥
तो जं जाणहि तं करें दवत्ति । लङ्केसर महु एत्तडिय सत्ति' ॥२॥
स-विलक्खु रक्खु सयमेव थक्कु । पलयक्क-सम-प्पहु लइउ चक्कु ॥३॥
परिरक्खणु अक्ख-सहासु जासु । विसहर-णर-सुरवर-जणिय-तासु ॥४॥
दुद्दरिसणु भीसणु णिसिय-धारु । मुत्ताहल-माला-मालियारु ॥५॥
स-कुसुम-चन्दण-चच्चिक्कियङ्गु । णिय-णासु णाइँ दरिसिउ रहङ्गु ॥६॥
तं णिएँवि णट्ठ णहें सुरवरा वि । ओसरेंवि दूरें थिय वाणरा वि ॥७॥
तो वुत्तु कुमारें णिसियरिन्दु । 'पइँ जेण पयावें धरिउ इन्दु ॥८॥
लइ तेण पयावें दुट्ठ-भाव । मुएँ चक्कु चिरावहि काइँ पाव' ॥९॥

घत्ता

दुव्वयणुद्दीविएँ दहमुहेंण करें रहङ्गु उग्गामियउ ।
णहेँ तेण भमाडिज्जन्तएँण जगु जें सव्वु णं भामियउ ॥१०॥

[२१]

॥ दुवई ॥ तो लच्छीहरेण छिण्णाहिँ समारम्भिउ रहङ्गयं ।
तोमिय-तोमरेहिँ णाराएँहिँ तहों वि चक्का समागयं ॥१॥

ऐसा मालूम होता था मानो साँपने साँपको पकड़ लिया हो। हाथों और सिरोंसे, कुमार लक्ष्मणने धरती मण्डलको पाट दिया मानो कुमार लक्ष्मणने कोमल नाल और कमल खोंट-खोंटकर युद्धके देवताकी अर्चा की हो ॥१-१०॥

[२०] दोनोंको लड़ते हुए दस दिन बीत गये, फिर भी युद्ध-का फैसला नहीं हो सका। इतनेमें माया रावणने (बहुरूपिणी विद्याने) रावणसे कहा, "यदि तुम जीवित रहना चाहते हो, तो जो और विद्या जानते हो, उससे काम लो, लंकेश्वर। मुझमें बस इतनी ही शक्ति है।" यह सुनकर, रावण विकलतासे स्तंभित रह गया। उसने अपना प्रलय सूर्यके समान चमकता हुआ चक्र हाथमें ले लिया। एक हजार यक्ष उसकी रक्षा कर रहे थे। वह विषधर, मनुष्य और देवताओंमें त्रास उत्पन्न कर देता था। वह अत्यन्त दुर्दर्शनीय और भयानक था। उसकी धार तेज थी। वह मोतियोंकी मालाके आकारका था। फूलों और चन्दनसे चर्चित चक्रको रावणने इस प्रकार दिखाया मानो अपने नाशका ही प्रदर्शन किया हो। उसे देखते ही आकाशके देवता भाग गये। वानर भी हटकर दूर जा खड़े हुए। तब कुमार लक्ष्मणने निशाचरराज रावणसे कहा, "तुमने जिस प्रतापसे इन्द्रको पकड़ा था, उसी प्रतापसे, हे कठोर स्वभाव रावण, तुम अपना चक्र मुझपर चलाओ। देर क्यों कर रहे हो।" लक्ष्मणके दुर्वचनोंसे उत्तेजित रावणने हाथमें चक्र उठा लिया। उसने जब उसे आकाशमें घुमाया तो सारा संसार घूम गया ॥१-१०॥

[२१] तब लक्ष्मीको धारण करनेवाले रावणने तिलमला अपना चक्र चलाया। परन्तु वीर, तोमर और बाणोंसे उसका

रिउ-कर-विमुक्कु मण-पवण-वेउ । घण-घोर-घोसु पलयग्गि-तेउ ॥१॥
रणेँ धरेँवि ण सक्किउ लक्खणेण । पहणन्ति असेस वि तक्खणेण ॥२॥
सुग्गीवु गएं राहउ हलेण । सूलेण विहीसणु पबलेण ॥३॥
भामण्डलु पत्तल-असिवरेण । हणुवन्तु महन्तें मोग्गरेण ॥५॥
अङ्गउ तिक्खेँण कुट्ठारएण । णलु चक्कें बइरि-वियारणेण ॥६॥
जम्बउ झसेण फलिहेण णीलु । कणएण विराहिउ विसम-सीलु ॥७॥
कुन्तेण कुन्दु दहिमुहु घणेण । केण वि ण णिवारिउ पहरणेण ॥८॥
मञ्जन्तु असेसाउह-सयाइँ । णं तुहिणु दहन्तु सरोरुहाइँ ॥९॥
परिभमिउ ति-वारउ तरल-तुङ्गु । णं मेरुहेँ पासेँहिँ भाणु-बिम्बु ॥१०॥

घत्ता

जं अण्ण-भवन्तरेँ अज्जियउ तं अप्पणहि (?) समावडिउ ।
आणा-विहेउ सु-कलत्तु जिह चक्कु कुमारहोँ करेँ चडिउ ॥११॥

[१२]

॥ दुवई ॥ जं उप्पण्णु चक्कु सोमित्तिहेँ तं सुर-णियरु तोसिउ ।
दुन्दुहि दिण्ण मुक्क कुसुमञ्जलि साहुक्कारु घोसिउ ॥१॥
अहिणन्दिउ लक्खणु वाणरेहिँ । 'जय णन्द वद्ध' मङ्गल-रवेहिँ ॥२॥
चिन्तवइ विहीसणु जाय सङ्क । 'लइ णट्ठु कज्जु उच्छिण्ण लङ्क ॥३॥
मुउ रावणु सन्तइ तुट्ट अज्जु । मन्दोयरि विहव विणट्ठु रज्जु' ॥४॥
पभणइ कुमारु 'करेँ चित्तु धीरु । छुडु सीय समप्पइ खमइ वीरु' ॥५॥
तो गहिय-चन्दहासाउहेण । हक्कारिउ लक्खणु दहमुहेण ॥६॥
'लइ पहरु पहरु किं करहि खेउ । तुहुँ एक्कें चक्कें सावलेउ ॥७॥

भी बल समाप्त हो गया। शत्रुके हाथसे मुक्त, मन और पवनके तरह वेगशील, मेघकी तरह घोषवाला, और प्रलय सूर्यकी तरह तेजस्वी उस चक्रको जब लक्ष्मण नहीं झेल सका तो बाकी सब लोग उसपर फौरन आक्रमण करने लगे। सुग्रीवने गदासे, राघवने हलसे, विभीषणने शूलसे, भामण्डलने तीखी तलवारसे, हनुमान्ने एक बड़े मोगरसे, अंगदने तीखे कुठारसे और नलने वैरीका विदारण करनेवाले चक्रसे, जम्बूकने झषसे, नीलने फलकसे, विराधितने विषमशील कनकसे, कुन्दने कुन्तसे और दधिमुखने घनसे। फिर भी हथियारसे कोई भी उसका निवारण नहीं कर सका। सैकड़ों हथियार बरबाद हो गये, जैसे हिम सैकड़ों कमलोंको जला देता है। चंचल और ऊँचाई पर घूमता हुआ 'चक्र' तीन बार घूमा, मानो सुमेरु पर्वतके चारों ओर सूर्यका बिम्ब घूमा हो। जो हम पूर्वजन्ममें कमाते हैं वह इस जन्ममें अपने आप मिलता है। आज्ञाकारी अच्छी स्त्रीकी तरह वह चक्र कुमार लक्ष्मणके हाथमें आ गया। ॥१–११॥

[२२] कुमारके हाथमें चक्रके इस प्रकार आ जानेपर सुर-समूह सन्तुष्ट हो उठा। नगाड़े बज उठे। फूलोंकी वर्षा होने लगी, और जयध्वनिसे आसमान गूँज उठा। वानरोंने लक्ष्मण-का अभिनन्दन किया, 'जय, प्रसन्न होओ, बढ़ो' आदि आदि शब्दोंसे आशंकित होकर विभीषण सोच रहा था, 'आज कार्य नष्ट हुआ। लंका नगरी मिट जायगी। रावण मारा जायगा, सन्तति नष्ट हुई। मन्दोदरी, वैभव और राज्य सब कुछ नष्ट हुआ।' तब कुमारने कहा—'अपने हृदयमें धीरज धारण करो, सीता अर्पित करने पर रावणको क्षमा कर दूँगा। इसके बाद चन्द्रहास कृपाण धारण करनेवाले रावणने लक्ष्मणको ललकारा, 'ले, कर प्रहार, कर प्रहार, देर क्यों करता

महु घइँ पुणु आएं कवणु गण्णु । किं सीहहों होइ सहाउ अण्णु' ॥ ॥
तं णिसुणेंवि विप्फुरियाहरेण । मेल्लिउ रहङ्गु लच्छीहरेण ॥९॥

घत्ता

उअयइरिहें णं अत्थइरि गउ सूर-बिम्बु कर-मण्डियउ ।
सहुँ भुएँहिं हणन्तहों दहमुहहों मण्ड उर-त्थलु खण्डियउ ॥१०॥

●

[७६. छसत्तरिमो संधि]

णिहएँ दसाणणें किउ सुरेंहिं कलयलु भुवण-मणोरह-गारउ ।
लोअ-पाल सच्छन्द थिय दुन्दुहि पहय पणच्चिउ णारउ ॥

[१]

णिवडिएँ रावणें तिहुअण-कण्टएँ । कुल-मङ्गल-कलसें व्व विसट्टएँ ॥१॥
णह-सिरि-दप्पणें व्व विच्छुट्टएँ । लच्छि-वरङ्गण-हारें व तुट्टएँ ॥२॥
पुहइ-विलासिणि-माणें व गलियएँ । रणवहु-जोव्वणे व्व दरमलियएँ ॥३॥
दाहिण-दिस-गएँ व्व ओणल्लएँ । णीसारिएँ व सुरासुर-सल्लएँ ॥४॥
रण-देवय-णमंसिएँ व दिण्णएँ । तोयदवाहण-वंसें व छिण्णएँ ॥५॥
चवण-पुरन्दरें व्व संकमिएँ । कालहों दिणयरें व्व अत्थमिएँ ॥६॥
लङ्काउरि-पायारें व पडियएँ । सीय-सयत्तणें व्व णिव्वडियएँ ॥७॥
तम-सङ्घाएँ व पुञ्जेंवि मुक्कएँ । अञ्जण-सेलें व थाणहों चुक्कएँ ॥८॥

है? अरे! तुम्हें एक ही चक्रमें इतना घमण्ड हो गया, पर मेरे लिए इसकी क्या गिनती। क्या कोई दूसरा सिंहकी समानता कर सकता है।" यह सुनते ही लक्ष्मणके ओठ फड़क उठे। उसने चक्र दे मारा। जिस प्रकार किरणोंसे शोभित सूर्यबिम्ब-का उदयगिरिसे अस्तगिरिपर अन्त हो जाता है, उसी प्रकार अपने हाथोंसे प्रहार करते हुए भी रावणका वक्षःस्थल खण्डित होकर गिर पड़ा॥ १-१०॥

●

छिहत्तरवीं सन्धि

[१] रावणके मारे जाने पर देवताओंने संसारको प्रिय लगनेवाला कोलाहल किया। अब लोकपाल स्वच्छन्द हो गये। नगाड़े बजने लगे। नारद नाच उठे। त्रिभुवन कंटक रावणका ऐसा पतन हो गया जैसे कुलका मंगल कलश नष्ट हो जाये, या नभश्री के दर्पणकी कान्ति जाती रहे, या लक्ष्मी-का हार टूट जाये, या पृथ्वी-विलासिनीका मान गलित हो जाये, या युद्धवधूका यौवन दलित कर दिया जाये, दक्षिणदिशा का गज झुक जाये। ऐसा जान पड़ने लगा जैसे सुर-असुरोंके मनकी शल्य निकल गयी हो, रणदेवताको जैसे नमस्कार कर दिया गया हो, तोयदवाहनका वंश ही छीन लिया गया हो, जैसे चवन पुरंदरको अतिक्रान्त किया गया हो, जैसे प्रलयका दिनकर अस्त हो गया हो, लंका नगरीका परकोटा ही टूट-फूट गया हो, सीता देवीका सतीत्व निभ गया, अन्धकार समूह, जैसे इकट्ठा होकर बिखर गया हो, अंजनपर्वत जैसे अपने स्थानसे

महु घईँ पुणु आएं कवणु गण्णु । किं सोहहों होइ सहाउ अण्णु' ॥ ॥
तं णिसुणेंवि विप्फुरियाहरेण । मेल्लिउ रहङ्गु लक्खणहरेण ॥९॥

घत्ता

उभयहरिहिँ णं अत्थइरि गउ सूर-बिम्बु कर-मण्डियउ ।
सहुँ भुएँहिं हणन्तहों दहमुहहों मण्डु उर-त्थलु खण्डियउ ॥१०॥

●

[७६. छसत्तरिमो संधि]

णिहएँ दसाणणें किउ सुरेँहिं कलयलु भुवण-मणोरह-गारउ ।
लोअ-पाल सच्छन्द थिय दुन्दुहि पहय पणच्चिउ णारउ ॥

[१]

णिवडिएँ रावणेँ तिहुअण-कण्टएँ । कुल-मङ्गल-कलसेँ व्व विसट्टएँ ॥१॥
णह-सिरि-दप्पणेँ व्व विच्छुट्टएँ । लच्छि-वरङ्गण-हारेँ व तुट्टएँ ॥२॥
पुहइ-विलासिणि-माणेँ व गलियएँ । रणवहु-जोव्वणे व्व दरमलियएँ ॥३॥
दाहिण-दिस-गएँ व्व ओणल्लएँ । णीसारिएँ व सुरासुर-सल्लएँ ॥४॥
रण-देवय-णमंसिएँ व दिण्णएँ । तोयदवाहण-वंसेँ व छिण्णएँ ॥५॥
पवण-पुरन्दरेँ व्व संकमिएँ । कालहों दिणयरेँ व्व अत्थमिएँ ॥६॥
लङ्काउरि-पायारेँ व पडियएँ । सीय-सयत्तणेँ व्व णिव्वडियएँ ॥७॥
तम-सङ्घाएँ व पुञ्जेँवि मुक्कएँ । अञ्जण-सेलेँ व थाणहों चुक्कएँ ॥८॥

है? अरे! तुम्हें एक ही चक्रमें इतना घमण्ड हो गया, पर मेरे लिए इसकी क्या गिनती। क्या कोई दूसरा सिंहकी समानता कर सकता है।" यह सुनते ही लक्ष्मणके ओठ फड़क उठे। उसने चक्र दे मारा। जिस प्रकार किरणोंसे शोभित सूर्यबिम्ब-का उदयगिरिसे अस्तगिरिपर अन्त हो जाता है, उसी प्रकार अपने हाथोंसे प्रहार करते हुए भी रावणका वक्षःस्थल खण्डित होकर गिर पड़ा॥ १–१०॥

●

छिहत्तरवीं सन्धि

[१] रावणके मारे जाने पर देवताओंने संसारको प्रिय लगनेवाला कोलाहल किया। अब लोकपाल स्वच्छन्द हो गये। नगाड़े बजने लगे। नारद नाच उठे। त्रिभुवन कंटक रावणका ऐसा पतन हो गया जैसे कुलका मंगल कलश नष्ट हो जाये, या नभश्री के दर्पणकी कान्ति जाती रहे, या लक्ष्मी-का हार टूट जाये, या पृथ्वी-विलासिनीका मान गलित हो जाये, या युद्धवधूका यौवन दलित कर दिया जाये, दक्षिणदिशा का गज झुक जाये। ऐसा जान पड़ने लगा जैसे सुर-असुरोंके मनकी शल्य निकल गयी हो, रणदेवताको जैसे नमस्कार कर दिया गया हो, तोयदवाहनका वंश ही छीन लिया गया हो, जैसे चवन पुरंदरको अतिक्रान्त किया गया हो, जैसे प्रलयका दिनकर अस्त हो गया हो, लंका नगरीका परकोटा ही टूट-फूट गया हो, सीता देवीका सतीत्व निभ गया, अन्धकार समूह, जैसे इकट्ठा होकर बिखर गया हो, अंजनपर्वत जैसे अपने स्थानसे

घत्ता

तेण पइन्तें पाडियइँ चिन्धइँ रणेँ रयणीयर-णामहुँ ।
पाग महारहेँ महिहरहोँ सुर-कुसुमइँ सिरेँ लक्खण-रामहुँ ॥९॥

[२]

अमरेँहिं साहुक्कारिएँ हरि-बलेँ । विजएँ पघुट्टेँ समुट्ठिएँ कलयलेँ ॥१॥
तहिँ अवसरेँ मणि-गण-विप्फुरियहेँ । उप्परेँ करु करेवि णिय-छुरियहेँ ॥२॥
अप्पउ हणइ विहीसणु जावेँहिं । मुच्छएँ णाइँ णिवारिउ तावेँहिँ ॥३॥
णिवडिउ धरणि-पट्टेँ णिच्चेयणु । दुक्खु समुट्ठिउ पसरिय-वेयणु ॥४॥
चरण धरेवि रुएवएँ लग्गउ । 'हा मायर महँ मुएँवि कहिं गउ ॥५॥
हा हा मायर ण किउ णिवारिउ । जण-विरुद्धु ववहरिउ णिरारिउ ॥६॥
हा मायर सरीरेँ सुकुमारएँ । केम वियारिउ चक्कहोँ धारएँ ॥७॥
हा मायर दुण्णिइएँ भुत्तउ । सेज्ज मुएँवि किं महियलेँ सुत्तउ ॥८॥

घत्ता

किं अवहेरि करेवि थिउ सीसेँ चडाविय चलण तुहारा ।
अच्छमि सुट्ठुम्माहियउ हियउ फुट्टु आलिङ्गि महारा' ॥९॥

[३]

रुअइ विहीसणु सोयक्कमियउ । 'तुहुँ णत्थमिउ वंसु अत्थमियउ ॥१॥
तुहुँ ण जिओऽसि सयलु जिउ तिहुअणु तुहुँ ण मुओऽसि मुअउ बन्दिय-अणु ॥२॥
तुहुँ पडिओऽसि ण पडिउ पुरन्दरु । मउडु ण भग्गु भग्गु गिरि-मन्दरु ॥३॥
दिट्ठि ण णट्ठ णट्ठ लङ्काउरि । वाय ण णट्ठ णट्ठ मन्दोयरि ॥४॥

चूक गया हो। रावणके धराशायी होते ही, निशाचरोंके मन बैठ गये। महारथी राजाओंके प्राण सूख गये, राम-लक्ष्मणके सिरों पर देवताओंने फूल बरसाये ॥१-९॥

[२] देवताओंने रामकी सेनाको साधुवाद दिया, विद्याके नष्ट होते ही आनन्दको ध्वनि होने लगी। इस अवसरपर इसी बीच, विभीषणका हाथ, मणिगणसे चमकती हुई अपनी छुरीके ऊपर गया। वह आत्महत्या करना ही चाह रहा था कि मानो मूर्छाने उसे थोड़ी देरके लिए रोक दिया, वह धरती पर अचेतन होकर गिर पड़ा। बड़ी कठिनाईसे वह दुबारा उठा, उसकी वेदना बढ़ने लगी। पैर पकड़ कर, वह रो रहा था, "हे भाई, मुझे छोड़कर तुम कहाँ चले गये। हे भाई, मैंने मना किया था, तुम नहीं माने। तुम्हारा आचरण एकदम लोक विरुद्ध था। हे भाई, अपने सुकुमार शरीरको तुमने चक्रधारासे कैसे विदीर्ण किया। हे भाई, तुम इस समय खोटी नींदमें सो रहे हो, सेज छोड़कर तुम धरतीपर सो रहे हो। तुम उपेक्षा क्यों कर रहे हो, मैं तुम्हारा चरण पकड़े हुए हूँ। मैं तुम्हारे सामने बैठा हूँ। हृदयके दो टुकड़े हो चुके हैं, हे आदरणीय, आलिंगन दीजिए" ॥१-९॥

[३] शोकसे व्याकुल होकर विभीषण विलाप करने लगा, "हे भाई, तुम नहीं डूबे, सारा कुटुम्ब ही डूब गया है। तुम नहीं जीते गये, त्रिभुवन ही जीत लिया गया। तुम नहीं मरे, वरन् तुम्हारे सब आश्रितजन ही मर गये हैं। तुम नहीं गिरे, बल्कि इन्द्र ही गिरा है। तुम्हारा मुकुट भग्न नहीं हुआ प्रत्युत मन्दराचल ही नष्ट हो गया। तुम्हारी दृष्टि नष्ट नहीं हुई, वरन् लंकानगरी ही नष्ट हो गयी। तुम्हारी वाणी नष्ट नहीं हुई प्रत्युत

हारु ण तुट्टु तुट्टु तारायणु । हियउ ण भिण्णु भिण्णु गयणङ्गणु ॥५॥
चक्कु ण ढुक्कु ढुक्कु पक्कन्तरु । आउ ण खुट्टु खुट्टु रयणायरु ॥६॥
जीउ ण गउ गउ आसा-पोट्टलु । तुहुँ ण सुत्तु सुत्तउ महि-मण्डलु ॥७॥
सीय ण आणिय आणिय जमउरि । हरि-बल कुद्ध ण कुद्धा केसरि ॥८॥

घत्ता

सुरवर-सण्ढ-वराइणा सयल-काल जे भिग सम्भूया ।
रावण पइँ सोहेण विणु ते वि अज्जु सच्छन्दीहूया ॥९॥

[४]

सयल-सुरासुर-दिण्ण-पसंसहों । अज्जु अमङ्गलु रक्खस-वंसहों ॥१॥
खल खुद्दहुँ पिसुणहुँ दुवियड्ढहुँ । अज्जु मणोरह सुरवर-सण्ढहुँ ॥२॥
दुन्दुहि वज्जउ गज्जउ सायरु । अज्जु तवउ सच्छन्दु दिवायरु ॥३॥
अज्जु मियङ्कु होउ पहवन्तउ । वाउ वाउ जगें अज्जु सइत्तउ ॥४॥
अज्जु धणउ धण-रिद्धि णियच्छउ । अज्जु जलन्तु जलणु जगें अच्छउ ॥५॥
अज्जु जमहों णिव्वहउ जमत्तणु । अज्जु करेउ इन्दु इन्दत्तणु ॥६॥
अज्जु घणहँ पूरन्तु मणोरह । अज्जु णिरग्गल होन्तु महागह ॥७॥
अज्जु पफुल्लउ फलउ वणासइ । अज्जु 'गाउ मोक्कलउ सरासइ' ॥८॥

घत्ता

ताव दसाणणु आहयणें पडिउ सुणेवि स-दोरु स-णेउरु ।
धाइउ मन्दोयरि-पमुहु धाहावन्तु सयलु अन्तेउरु ॥९॥

मन्दोदरी नष्ट हो गयी है। तुम्हारा हार नहीं टूटा, परन्तु तारागण ही टूट गये हैं। तुम्हारा हृदय भग्न नहीं हुआ, प्रत्युत आकाश ही भग्न हो गया है। चक्र नहीं आया है प्रत्युत एक महान् अन्तर आ गया है। तुम्हारी आयु समाप्त नहीं हुई, परन्तु समुद्र ही सूख गया है। तुम्हारे प्राण नहीं गये, प्रत्युत हमारी आशाएँ ही चली गयी हैं। तुम नहीं सो रहे हो, प्रत्युत यह सारा संसार सो रहा है। तुम सीताको नहीं लाये थे, प्रत्युत यमपुरीको ले आये थे। रामकी सेना क्रुद्ध नहीं हुई थी, प्रत्युत सिंह ही क्रुद्ध हो उठा था। हे रावण, बेचारे देवताओंका जो समूह, सदैव तुम्हारे सम्मुख मृग रहा, हे रावण, वह तुम जैसे सिंहके अभावमें, अब स्वच्छन्द हो गया है ॥१-९॥

[४] जिस निशाचरवंशकी समस्त सुर और असुरोंने प्रशंसा की थी आज उस राक्षस वंशका अमङ्गल आ पहुँचा है। खल, क्षुद्र, चुगलखोर और मूर्ख देवसमूहकी कामना आज पूरी हो गयी। नगाड़े बजे। समुद्र गरजे, अब सूर्य स्वतन्त्र होकर तपे, अब चन्द्र प्रभासे भास्वर हो जाये, हवा अब दुनियामें आजादीसे बहे, कुबेर भी अब अपना वैभव देख ले। अब आग दुनियामें जी भर जल ले। आज यमका यमत्व निभ ले। अब इन्द्र अपनी इन्द्रता चला ले। आज मेघोंके मनोरथ सफल हो लें, और महाग्रह उच्छृंखल हो लें। आज वनस्पतियाँ भी फूल-फल लें, सरस्वती भी आज मुक्तकंठ होकर गा ले। जब रावणके सडोर और नूपुरसहित अन्तःपुरने यह सुना कि युद्धमें रावण मारा गया है, तो वह मन्दोदरीको लेकर रोता-बिसूरता वहाँ आया ॥१-९॥

[५]

दुम्मणु दुक्ख-महण्णवें घित्तउ । पिय-विओय-आलोलि-पलित्तउ ॥१॥
मोक्कल-केसु विसण्ठुल-गत्तउ । विहलप्फलु णिवडन्तुट्ठन्तउ ॥२॥
उद्ध-हत्थु उद्धाहावन्तउ । अंसु-जलेण वसुह सिञ्चन्तउ ॥३॥
णेउर-हार-दोर-गुप्पन्तउ । चन्दण-छड-कद्दमें खुप्पन्तउ ॥४॥
पीण-पओहर-भारक्कन्तउ । कज्जल-जल-मल-मइलिज्जन्तउ ॥५॥
णं कोइल-कुलु कहि मि पयट्टउ । णं गणियारि-जूहु विच्छुट्टउ ॥६॥
णं कमलिणि-वणु थाणहों चुक्कउ णं हंसिउलु महासर-मुक्कउ ॥७॥
कलुण-सरेण रसन्तु पधाइउ । णिविसें रण-धरित्ति सम्पाइउ ॥८॥

घत्ता

हय-गय-मड-रुहिरारुणिय समर-वसुन्धरि सोह ण पावइ ।
रत्तउ परिहेँवि पङ्गुरेँवि थिय रावण-अणुमरणेँ णावइ ॥९॥

[६]

दिट्ठु महाहवु विणिवाइय-मडु । आमिस-सोणिय-रस-वस-वीसड्डु ॥१॥
हड्ड-रुण्ड-विच्छड्ड-भयङ्करु । कोट्टाविय-धय-चिन्ध-णिरन्तरु ॥२॥
णच्चिय-उद्ध-कबन्ध-विसन्थुलु । वायस-घोर-गिद्ध-सिव-सङ्कुलु ॥३॥
कहि मि आयवत्तइँ ससि-धवलइँ । णं रण-देवय-अच्चण-कमलइँ ॥४॥
कहि मि तुरङ्ग बाण-विणिमिण्णा । रण-देवयहेँ णाइँ बलि दिण्णा ॥५॥
कहि मि सरेंहिं धरिय णहेँ कुञ्जर । णं जल-धारा-धरिय जलहर ॥६॥

[५] उसे देखकर ऐसा लगता था, मानो दुर्मन वह दुःखके समुद्रमें डाल दिया गया हो। प्रियके वियोगकी आगमें जैसे वह जल उठा हो। उसके बाल बिखर गये, शरीर अस्त-व्यस्त हो गया, उठता-पड़ता वह नष्ट हो रहा था। ऊँचे हाथ कर, वह दहाड़ मार कर विलाप कर रहा था। आँसुओंसे धरती गीली हो चुकी थी। नूपुर, हार, डोर, सब चन्दनके छिड़कावकी कीचमें खच गये थे। पीन पयोधरोंके भारसे वह आक्रान्त था। काजलके जलमलसे वह मैला हो रहा था। मानो कोयलों-का समूह ही कहीं जा रहा हो, या हथिनियोंका समूह ही बिखर गया, या मानो, कमलिनियोंका वन ही अपने स्थानसे भ्रष्ट हो गया हो। या मानो हंसिनीकुल किसी महासरोवरसे छूट गया हो। करुणस्वर में रोता हुआ वह वहाँ आया और एक ही पलमें युद्धभूमिपर जा पहुँचा। अश्व, गज और योद्धाओंके खूनसे रँगी हुई युद्धभूमि बिलकुल अच्छी नहीं लग रही थी, ऐसा जान पड़ता था मानो वह लाल वस्त्र पहनकर, रावणके साथ अनुमरण करने जा रही हो ॥१-९॥

[६] अन्तःपुरने जाकर देखा वह महायुद्ध। कितने ही योद्धा मरे पड़े थे, मांस, रक्त, रस और मज्जासे लथपथ। हड्डियों और धड़ोंसे भयंकर था वह। उसमें ध्वज और दूसरे चिह्न लोटपोट हो रहे थे। नाचते हुए क्रुद्ध कबन्धोंसे अस्त-व्यस्त और वायस (कौवा), भयंकर गीध और सियारोंसे वह व्याप्त था। कहींपर चन्द्रमाके समान सफेद छत्र पड़े थे, मानो युद्धके देवताकी पूजाके लिए कमल रखे हुए हों। कहींपर तीरोंसे क्षत-विक्षत अश्व थे, मानो युद्धके देवताके लिए बलि दी गयी हो। कहीं पर तीरोंने हाथीको आकाशमें छेद रखा था, वह ऐसा लगता था, मानो जलधाराओंसे भरे हुए मेघ हों,

कहि मि रहङ्ग-मग्ग थिय रहवर । णं वज्जासणि-सूडिय महिहर ॥७॥
तहिँ दहवयणु दिट्ठु बहु-बाहउ । कप्प-तरु व्व पलोट्टिय-साहउ ॥८॥
रज्ज-गयालण-खम्भु व छिण्णउ । लक्खण-चक्क-रयण-विणिभिण्णउ ॥९॥

घत्ता

दह दियहाइँ स-रत्तियइँ　जं जुज्झन्तु ण णिद्दएँ भुत्तउ ।
तेण चक्क-सेज्जहिँ चडेंवि　रण-बहुअएँ समाणु णं सुत्तउ ॥१०॥

[७]

दिट्ठु पुणो वि णाहु पिय-णारिहिँ । खुत्तु मत्त-हत्थि व गणियारिहिँ ॥१॥
वाहिणिहिँ व सुक्कउ रयणायरु । कमलिणिहिँ व अत्थवण-दिवायरु ॥२॥
कुमुइणिहि व्व जरठ-मयलञ्छणु । विज्जुहि व्व छुडु छुडु वरिसिय-घणु ॥३॥
अमर-वहूहिँ व चवण-पुरन्दरु । गिम्म-दिसाहिँ व अञ्जण-महिहरु ॥४॥
भमरावलिहि व्व सूडिय-तरुवरु । कलहंसीहि व्व अ-जलु महा-सरु ॥५॥
कलयण्ठीहि व्व माहव-णिग्गमु । णाइणिहिँ व हय-गरुड-भुयङ्गमु ॥६॥
बहुल-पओसु व तारा-पन्तिहिँ । तेम दसास-पासु दुक्कन्तिहिँ ॥७॥
दस-सिरु दस-सेहरु दस-मउडउ । गिरि वं स-कन्दरु स-तरु स-कूडउ ॥८॥

घत्ता

णिएँ वि अवत्थ दसाणणहों　'हा हा सामि' भणन्तु स-वेयणु ।
अन्तेउरु मुच्छा-विहलु　णिवडिउ महिहिँ स्रत्ति णिच्चेयणु ॥९॥

कहींपर टूटे-फूटे पहियोंके रथ थे, कहींपर वज्राशनिसे चकनाचूर पहाड़ थे। कहींपर बहुत-से हाथोंवाला रावण उस अन्तःपुरको दिखाई दिया, मानो छिन्न शाखोंवाला कल्पवृक्ष ही हो। मानो राजकीय हाथियोंके बाँधनेका टूटा-फूटा खूँटा हो। रावण, लक्ष्मणके चक्ररत्नसे विदीर्ण हो चुका था। अनुरक्त दशों दिशाओंसे जूझते-जूझते जो वह नींद नहीं ले पाया था, मानो वह आज चक्रकी सेजपर चढ़ कर, युद्धरूपी वधूके साथ सानन्द सो रहा है ॥१-१०॥

[७] उसकी प्रिय पत्नियोंने अपने स्वामीको इस प्रकार देखा, जैसे हथिनियाँ सोये हुए हाथीको देखती हैं या जैसे नदियाँ सूखे हुए समुद्रको देखती हैं, या जैसे कमलिनियाँ अस्त होते हुए सूरजको, या जैसे कुमुदिनियाँ डूबे चाँदको देखती हैं, या जैसे बिजलियाँ रिमझिम बरसते मेघको देखती हैं, या जैसे अमरांगनाएँ च्युत इन्द्रको देखती हैं, या जैसे ग्रीष्मकालकी दिशाएँ, अंजनागिरिको देखती हैं; या जैसे भ्रमरमाला सूखे हुए पहाड़को देखती है, या जैसे कलहंसियाँ जलविहीन किसी महासरोवरको देखती हैं, या जैसे सुरवाली कोयलें माधवके बीत जानेको देखती हैं, या जैसे नागिनें गरुड़से आहत सर्पको देखती हैं, या तारा मालाएँ जैसे कृष्णपक्षको देखती हैं, उसी प्रकार वह अन्तःपुर रावणके निकट पहुँचा। उसके दस सिर थे, दस शेखर और दस ही मुकुट थे, वह ऐसा लगता था मानो गुफाओं, वृक्षों और चोटियोंके सहित पहाड़ ही हो। रावणकी वह दशा देखते ही अन्तःपुर—"हे रावण," कहकर वेदनाके अतिरेकसे व्याकुल हो उठा, और शीघ्र ही धरतीपर बेहोश गिर पड़ा ॥१-९॥

[८]

तारा-चक्कु व थाणहों चुक्कउ । दुक्खु दुक्खु मुच्छएँ आमुक्कउ ॥१॥
लग्ग रुएवएँ तहिँ मन्दोयरि । उव्वसि रम्भ तिलोत्तिम-सुन्दरी ॥२॥
चन्दवयण सिरिकन्ताणुद्धरि । कमलाणण गन्धारि वसुन्धरि ॥३॥
मालइ चम्पयमाल मणोहरि । जयसिरि चन्दणलेह तणूअरि ॥४॥
लच्छि वसन्तलेह मिगलोयण । जोयणगन्ध गोरि गोरोयण ॥५॥
रयणावलि मयणावलि सुप्पह । कामलेह कामलय सयम्पह ॥६॥
सुहय वसन्ततिलय मलयावइ । कुङ्कमलेह पउम पउमावइ ॥७॥
उप्पलमाल गुणावलि णिरुवम । कित्ति बुद्धि जयलच्छि मणोरम ॥८॥

घत्ता

आएँहिँ सोआऊरियहिँ अट्ठारहहि मि जुवइ-सहासेंहिँ ।
णव-घण-मालाडम्बरेंहिँ छाइउ विञ्झु जेम चउ-पासेंहिँ ॥९॥

[९]

रोवइ लङ्का-पुर-परमेसरि । 'हा रावण तिहुअण-जण-केसरि ॥१॥
पइँ विणु समर-तूरु कहों वज्जइ । पइँ विणु बाल-कील कहों छज्जइ ॥२॥
पइँ विणु णव-गह-एक्कीकरणउ । को परिहेसइ कण्ठाहरणउ ॥३॥
पइँ विणु को वि विज्ज आराहइ । पइँ विणु चन्दहासु को साहइ ॥४॥
को गन्धव्व-वावि आडोहइ । कण्णहुँ छ वि सहासु संखोहइ ॥५॥
पइँ विणु को कुबेरु भञ्जेसइ । तिजगविहूसणु कहों वसि होसइ ॥६॥
पइँ विणु को जमु विणिवारेसइ । को कइलासुद्धरणु करेसइ ॥७॥
सहसकिरण-णलकुब्बर-सक्कहुँ । को अरि होसइ ससि-वरुणक्कहुँ ॥८॥
को णिहाण-रयणइँ पालेसइ । को बहुरूविणि विज्ज लएसइ ॥९॥

[८] ऐसा लग रहा था मानो ताराचक्र अपने स्थानसे च्युत हो गया हो। बड़ी कठिनाईसे रनिवासकी मूर्च्छा दूर हुई। मन्दोदरी, उर्वशी, तिलोत्तमा, सुन्दरी, चन्द्रवदना, श्रीकान्ता, अनुद्धरा, कमलमुखी, गान्धारी और वसुन्धरा, मालती, चम्पकमाला, मनोहरी, जयश्री, चन्द्रलेखा, तनूदरी, लक्ष्मी, वसन्तलेखा, मृगलोचना, योजनगन्धा, गौरी, गोरोचना, रत्नावली, मदनावली, सुप्रभा, कामलेखा, कामलता, स्वयंप्रभा, सुहृदा, वसन्ततिलका, मलयावती, कुंकुमलेखा, पद्मा, पद्मावती, उत्पलमाला, गुणावली, निरुपमा, कीर्ति, बुद्धि, जयलक्ष्मी, मनोरमा आदि सभी रोने बैठ गयीं। शोकसे व्याकुल रोती-बिसूरती हुई स्त्रियोंसे घिरा हुआ, रावण ऐसा जान पड़ता था, मानो नव-मेघमालाओंसे विन्ध्याचल सब ओरसे घिरा हुआ हो ॥१-९॥

[९] लंकानगरीकी स्वामिनी फूट-फूटकर रोने लगी, "त्रिभुवनजनके सिंह हे रावण, अब तुम्हारे बिना युद्धका नगाड़ा कौन बजवायेगा! अब कौन, तुम्हारे अभावमें बालक्रीड़ाएँ करेगा! तुम्हारे बिना नवग्रहोंको कौन इकट्ठा करेगा! कौन कण्ठाभरण पहनेगा! तुम्हारे बिना कौन विद्याकी आराधना करेगा! कौन चन्द्रहासकी साधना करेगा! गन्धर्वोंकी वापिकामें कौन प्रवेश करेगा! छह हजार कन्याओंके मनमें कौन क्षोभ उत्पन्न करेगा! तुम्हारे बिना कुबेरका नाश कौन करेगा! त्रिजगभूषण महागज किसके वशमें होगा! तुम्हारे बिना यमको कौन रोक सकेगा! और कौन कैलासपर्वतका उद्धार करेगा! सहस्रकिरण, नल-कूबर, इन्द्र; चन्द्र, वरुण और सूर्यसे अब कौन दुश्मनी लेगा! अब कौन रत्नकोशको संरक्षण देगा!

घत्ता

सामिय पइँ मविएण विणु पुप्फ-विमाणेँ चडेँवि गुरु-मत्तिएँ।
मेरु-सिहरेँ जिण-मन्दिरइँ को मइँ णेसइ वन्दण-हत्तिएँ' ॥१०॥

[१०]

पुणु वि पुणु वि गयणङ्गणगोयरि। कलुणक्कन्दु करइ मन्दोयरि ॥१॥
'णन्दण-वणेँ दिज्जन्ति मणोहरि। सुमरमि पारियाय-तरु-मञ्जरि ॥२॥
कुङ्कुण-वाविहेँ थण-परिचड्डणु। सुमरमि हँसि हँसि अवरुण्डणु ॥३॥
सयण-मवणेँ णह-णिवर-वियारणु। सुमरमि लीला-पङ्कय-ताडणु ॥४॥
पयण-रोस-समए मय-वड्ढणु। सुमरमि रसणा-दाम-णिबन्धणु ॥५॥
सुमरमि दिज्जमाणु दणु-दावणि। धरणिन्दहोँ केरउ चूडा-मणि ॥६॥
सुमरमि सामि कुमारहोँ केरउ। बरहिण-पेहुण-कण्णेऊरउ ॥७॥
सुमरमि सुर-करि-मय-मल-सामलु। हारेँ ठविज्जमाणु मुत्ताहलु ॥८॥

घत्ता

सुमरमि सइँ सुरयारम्मेँ णेउर-वर-झङ्कार-विलासु।
तो इ महारउ वज्जमउ हियउ ण वे-दलु होइ णिरासु' ॥९॥

[११]

पुणु वि पुणु वि मन्दोयरि जम्पइ। 'उट्ठु भडारा केत्तिउ सुप्पइ ॥१॥
जइ वि णिरारिउ णिद्दएँ मुत्तउ। तो वि ण सोअहि महियलेँ सुत्तउ ॥२॥
सामिय को अवराहु महारउ। सीयहेँ दूइँ गय मय-वारउ ॥३॥
तो इ अ-कारणेँ उज्जेँ आरुट्ठउ। जेण परिट्ठिउ पाराउट्ठउ' ॥४॥

अब कौन बहुरूपिणी विद्याको ग्रहण करेगा ! हे स्वामी, आपके न रहनेपर, अब कौन पुष्पकविमानमें चढ़ाकर वन्दनाभक्तिके लिए, सुमेरुपर्वतके जिनमन्दिरोंके लिए मुझे ले जायेगा !" ॥१-१०॥

[१०] विद्याधरी मन्दोदरी बार-बार करुण क्रन्दन कर रही थी। वह कह रही थी—"मुझे पारिजातकी वह मंजरी याद आ रही है जो तुमने नन्दन वनमें मुझे दी थी, याद आता है वह समय मुझे जबकि तुम स्नानवापिकामें मेरे स्तनोंपर चढ़ जाते थे, और धीरे-धीरे मेरा आलिंगन करते थे। याद करती हूँ जब शयन भवनमें तुम अपने नखोंसे मुझे क्षत-विक्षत कर देते थे। याद आता है, आपका उस लीलाकमलसे मुझे प्रताड़ित करना। मुझे याद आ रही है कि जब मैं प्रणयकोपमें बैठी होती, तब तुम अपने हाथों मुझे करधनी पहनाते और मैं पागल हो उठती। मुझे याद आता है कि तुमने दानवोंको चौंका देनेवाला नागराजका चूड़ामणि मुझे लाकर दिया था। हे स्वामी, मैं याद करती हूँ कुमारके मयूरपंखका कर्णफूल। मुझे याद है कि ऐरावतके गन्धजलकी तरह श्यामल तुमने मेरे हारमें मोती लगाया था। हे प्रिय, मैं याद करती हूँ सुरतिसमारम्भकालमें नूपुरोंकी स्वरलहरियोंका लीलाविलास, फिर भी मेरा यह वज्रका बना हुआ निराश हृदय टूटकर टुकड़े-टुकड़े नहीं होता ! ॥ १-९ ॥

[११] मन्दोदरी बार-बार कह रही थी, "हे आदरणीय उठें, तुम कितना और सोओगे ! जानती हूँ कि तुम गहरी नींदमें सो गये हो। फिर भी धरतीपर सोते हुए तुम शोभित नहीं होते। हे स्वामी, हमारा क्या अपराध है, मैं हजार बार सीतादेवीकी दूती बनकर गयी। फिर आप मुझपर अकारण अप्रसन्न हैं, जो आप मुझसे इस प्रकार विमुख हो गये हैं !" उस करुण प्रसंग-

तहि अवसरें पिउ पेक्खेंवि धाइउ । का वि करेइ अलीयइ (?) साइउ ॥५॥
आलिङ्गेप्पिणु सव्वायामें । का वि णिवन्धइ रसणा-दामें ॥६॥
का वि वरंसुएण क वि हारें । का वि सुअन्ध-कुसुम-पब्भारें ॥७॥
का वि उरें ताडेंवि लीला-कमलें । पमणइ मउलिएण मुह-कमलें ॥८॥

घत्ता

'तुम्हहँ चक्क-धार-वहुअ जइ वि णिरारिउ पाणहँ रुच्चइ ।
तो कि महु पेक्खन्तियहें हियएँ पइट्ठी णिविसु ण मुच्चइ' ॥९॥

[१२]

का वि केसावलि रङ्खोलावइ । णं कसणाहि-पन्ति खेलावइ ॥१॥
का वि कुडिल भउहावलि दावइ । हणइ मयण-धणु-लट्ठिएँ णावइ ॥२॥
का वि णिएइ दिट्ठिएँ सु-विसालएँ । णं ढङ्कइ णीलुप्पल-मालएँ ॥३॥
का वि अहिसिञ्चइ अविरल-वाहें । पाउस-सिरि गिरि स्व जल-वाहें ॥४॥
का वि पियाणणें आणणु लायइ । णं कमलोवरि कमलु चडावइ ॥५॥
का वि आलिङ्गइ भुअहिँ विसालहिँ । णं ओमालइ मालइ-मालहिँ ॥६॥
का वि परिमसइ अग्ग-हत्थयलें । छिवइ णाइँ ण व-लीला-कमलें ॥७॥
का वि णिम्मल-कररुह पयडावइ । णं दह-मुहहुँ व दप्पणु दावइ ॥८॥
का वि पओहर-घड-जुअलेणं । णं सिञ्चइ लायण्ण-जलेणं ॥९॥

घत्ता

तहिँ अवसरें केण वि णरेंण इन्दइ-कुम्भयण्ण-आवासएँ ।
सहसा जिह ण मरन्ति तिह रावण-मरणु कहिउ परिहासएँ ॥१०॥

[१३]

'अज्जु महन्तु दिट्ठु अच्छरियउ । किह कमलेण कुलिसु जज्जरियउ ॥१॥
किह मुट्ठिएँ मेरु इ मुसुमूरिउ । किह पायालु तिलद्धें पूरिउ ॥२॥

पर, प्रिय को आहत देखकर कोई झूठी आकृति बना रही थी, कोई उसका आलिंगन कर अपनी करधनीसे उसे बाँध रही थी, कोई उत्तम वस्त्रसे, कोई हारसे, कोई सुगन्धित कुसुमभारसे, कोई लीलाकमलसे अपनी छाती पीट रही थी, कोई मुरझाये हुए मुखकमलसे बोल रही थी। तुम्हें यद्यपि चक्रकी धाररूपी वधू, प्राणोंसे इतनी प्यारी है, फिर हमारे देखते हुए भी हृदयमें घुसी हुई उसे एक पलको तुम नहीं छोड़ सकते ॥ १-९ ॥

[१२] कोई अपनी केशराशि बिखेर रही थी, मानो काले नागोंकी कतारको खिला रही हो, कोई अपनी कुटिल भौंहें दिखा रही थी, मानो कामकी धनुष लतासे आहत करना चाह रही हो। कोई अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंसे देख रही थी मानो नीलकमलोंकी मालासे ढक लेना चाहती थी। कोई अविरल आँसुओंकी धारासे सींच रही थी, मानो जलकी धारा पावस लक्ष्मीका अभिषेक कर रही हो। कोई एक प्रियके पास अपना मुख ले जा रही थी, मानो कमलके ऊपर कमल रख रही हो। कोई अपनी बड़ी-बड़ी भुजाओंसे आलिंगन कर रही थी, मानो मालतीमालासे लिपट रही हो, कोई हाथकी हथेली उसपर फेर रही थी, मानो नये कमलसे उसे छू रही हो। कोई अपना निर्मल करकमल प्रकट कर रही थी, मानो रावणको दर्पण दिखा रही थी। कोई पयोधरोंके घटयुगलसे उसे छू रही थी, मानो सौन्दर्यके जलसे उसे सींच रही थी। उस अवसरपर किसी एक आदमीने इन्द्रजीत और कुम्भकर्णके आवासपर जाकर, परिहासके इस ढंगसे रावणकी मृत्युका समाचार दिया कि जिससे उन्हें धक्का न लगे ॥ १-१० ॥

[१३] उसने कहा, "आज मैंने बहुत बड़ा अचरज देखा। क्या कमल वज्रको नष्ट कर सकता है? या मुट्ठी सुमेरु पर्वतको

किह इन्धणेंण दड्ढु वइसाणरु । किह जुण्णुएण सुसिउ रयणायरु ॥३॥
किह पोइलेंण णिवद्धु पहञ्जणु । किह करेण ढक्किउ मयलञ्छणु ॥४॥
दिणयर-तेय-ससि-कर-दूसहु । किह जोइङ्गणेण किउ णिप्पहु ॥५॥
किह पडेण पच्छण्णु पहावउ । किह सिव-पहु अण्णाणें णायउ ॥६॥
किह परमाणुएण णहु छाइउ । किह गोप्पएँ महिमण्डलु माइउ ॥७॥
किह मसएण तुलिउ भुवण-त्तउ । मराणावत्थ कालु कहि पत्तउ' ॥८॥

घत्ता

तं एरिसउ वयणु सुणेंवि रावण-तणयहुँ विक्कम-सारहुँ ।
इन्दइ-पमुहउ मुच्छियउ अद्ध-पञ्च कोडीउ कुमारहुँ ॥९॥

[१४]

णिवडिउ कुम्भयण्णु सहुँ पुत्तेंहिं । णं मयलञ्छणु सहुँ णक्खत्तेंहिं ॥१॥
णं अमराहिउ सहियउ अमरेंहिं । सित्तु जलेण पविञ्जिउ चमरेंहिं ॥२॥
उट्ठिउ दुक्खु दुक्खु दुक्खाउरु । सोयहों तणउ णाइँ पढमङ्कुरु ॥३॥
कग्गु रुएवएँ 'हा हा भायरि । हा हा हउ हरिणेहिं व केसरि ॥४॥
हा विहि तुहु मि हूउ दालिद्दिउ । हा सव्वण्णु तुहु मि किह छिद्दिउ ॥५॥
हा जम तुहु मि महाहवें घाइउ । हा रयणायर तुहु मि तिसाइउ ॥६॥
हा मरु तुहु मि णिवन्धणु पत्तउ । हा रवि तुहु मि किरण-परिचत्तउ ॥७॥
हा दड्ढोऽसि तुहु मि धूमद्धय । णीसोहग्गु तुहु मि मयरद्धय ॥८॥

घत्ता

हा अचलिन्द तुहु मि चलिउ तुहु मि पयावइ भुक्खएँ भग्गउ ।
पुण्ण-महक्खएँ पेक्खु किह वज्जमएँ वि खम्भें घुणु लग्गउ' ॥९॥

मसल सकती है? क्या तिलका आधा भाग पातालको भर सकता है? क्या ईंधन आगको जला सकता है? क्या चुल्लू समुद्रको सोख सकती है? क्या पोटली हवाको बाँध सकती है? क्या हाथ चन्द्रमाको ढक सकता है? क्या तेजपुंज, किरणोंसे असह्य सूरजको जुगनू कान्तिहीन बना सकता है? क्या कपड़ा प्रभातको ढक सकता है? क्या भगवान् शिव अज्ञानसे जाने जा सकते हैं? क्या परमाणु आकाशको ढक सकता है? क्या गोपद, धरतीमण्डलको माप सकता है? क्या मच्छर संसारके साथ तुल सकता है, क्या काल मर सकता है? उसके यह वचन सुनकर विक्रममें श्रेष्ठ रावणके इन्द्रजीत प्रमुख, ढाई करोड़ पुत्र सहसा मूर्च्छित हो गये॥ १-९॥

[१४] कुम्भकर्ण भी अपने पुत्रोंके साथ इस प्रकार गिर पड़ा मानो नक्षत्रोंके साथ चन्द्रमा ही गिर पड़ा हो, मानो देवताओं-के साथ इन्द्र धराशायी हो गया हो। जलके छिड़काव और हवा करनेपर उसे होश आया। दुःखसे व्याकुल वह बड़ी कठि-नाईसे उठा, मानो शोकका पहला अंकुर निकला हो। वह रोने लगा, "हे भाई, हे भाई! हिरणोंने सिंहको पछाड़ दिया; हे विधाता, तुम दरिद्री हो गये। तुम सबमें बहुछिद्री हो गये, हे यम, महायुद्धमें तुम्हें मरना पड़ा। हे समुद्र, तुम्हें भी प्यास लग आयी। हे पवन, तुम भी आज बन्धनमें पड़ गये। हे सूर्य, तुमने अपनी किरणोंको छोड़ दिया? हे अग्नि, तुम भी नष्ट हो गये? हे कामदेव, आज तुम्हारा भी सौभाग्य जाता रहा। हे अचलेन्द्र, आज तुम डिग गये; प्रजापते, तुम्हें भी भूख लग आयी? पुण्यका क्षय होनेसे देखो वज्रके खम्भोंमें भी घुन लग जाता है॥ १-९॥

[१५]

ताव स-वेयणु उट्ठिउ इन्दइ । अप्पउ हणइ पिवइ परिणिन्दइ ॥१॥
'हा हा ताय ताय माणुण्णय । सुरवर-समर-सहासहिँ दुज्जय ॥२॥
पइँ अत्थन्तएण अत्थमियइँ । बोल्लिय-हसिय-रमिय-परिभमियइँ ॥३॥
सुख-विउद्ध-गमण-आगमणइँ । परिहिय-जिमिय-पसाहिय-ण्हवणइँ ॥४॥
वण-कीला-जल-कीला-थाणइँ । पुत्तुच्छव-विवाह-वर-पाणइँ' ॥५॥
गेय-पणच्चियाइँ वर-वज्जइँ । परियण-विस्सवास-सिय-रज्जइँ' ॥६॥
तोयदवाहणो वि स-कुमारउ । मुच्छाविज्जइ सय-सय-वारउ ॥७॥
कन्दइ कणइ पवड्ढिय-वेयणु । अविरल-वाहाऊरिय-लोयणु ॥८॥

घत्ता

दुक्खु दसाणण-परियणहोँ सीयहेँ दिहि जउ लक्खण-रामहुँ ।
सुर वि स इं भुवणहुँ चलिय लङ्क पइट्ठ कइद्धय-णामहुँ ॥९॥

●

[७७. सत्तसत्तरिमो संधि]

माइ विओएं जिह जिह करइ विहीसणु सोउ ।
तिह तिह दुक्खेण रुवइ स-हरि-बल-वाणर-लोउ ॥

[१]

दुम्मणु दुम्मण-वयणउ अंसु-जलोल्लिय-णयणउ ।
दुक्खु कइद्धय-सत्थउ जहिँ रावणु पल्हत्थउ ॥१॥

[१५] वेदनासे व्याकुल इन्द्रजीत इसी बीच उठा। अपनेको वह ताड़ित करता, पीटता और निन्दा करता। वह कह रहा था, "हे तात, हे मानोन्नत तात, तुम हजारों देव-युद्धोंमें अजेय रहे। तुम्हारे अस्त हो जानेसे बोलना, हँसना, रमना और घूमना सब दुनियासे बिदा हो गये। सोना-जागना, आना, जाना, पहनना, खाना-पीना, शृंगार करना, नहाना, वन-क्रीड़ा, जल-क्रीड़ा, स्नान, पुत्रका उत्सव, विवाह, उत्तम पान गेय नृत्य आदि उत्तम विद्याएँ जाती रहीं। परिजन और अपना राज्य भी अब अपना नहीं रहा। कुमारोंके साथ तोयदवाहन भी सौ सौ बार मूर्च्छित हो उठा। वह वेदनाके अतिरेकमें करुण क्रन्दन कर रहा था। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी अविरल धारा बह रही थी। जो घटना रावणके परिजनोंके लिए दुःखद थी, वही सीता, राम और लक्ष्मणके लिए भाग्यशाली थी। कपिध्वजी लोगोंने स्वयं लंका नगरीमें प्रवेश किया ॥ १–९ ॥

●

सतहत्तरवीं सन्धि

अपने भाईके वियोगमें विभीषणको जितना अधिक शोक होता, राम-लक्ष्मण और वानर समूह भी दुःखके कारण उतना ही रो पड़ता।

[१] उन्मन और उदास चेहरेसे वानर समूह वहाँ पहुँचा, जहाँ रावण धरतीपर पड़ा हुआ था। उसकी आँखें

तेण समाणु विणिग्गय-णामेंहिँ । दिट्ठु दसाणणु लक्खण-रामेंहिँ ॥२॥
दिट्ठइँ स-मउड-सिरइँ पलोट्टइँ । णाइँ स-केसराइँ कन्दोट्टइँ ॥३॥
दिट्ठइँ भालयलइँ फाउडियइँ । अद्धयन्द-बिम्बाइँ व पडियइँ ॥४॥
दिट्ठइँ मणि-कुण्डलइँ स-तेयइँ । णं खय-रवि-मण्डलइँ अणेयइँ ॥५॥
दिट्ठउ भउहउ भिउडि-करालउ । णं पलयग्गि-सिहउ धूमालउ ॥६॥
दिट्ठइँ दीह-विसालइँ णेत्तइँ । मिहुणा इव आमरणासत्तइँ ॥७॥
मुह-कुहरइँ दट्ठोट्ठइँ दिट्ठइँ । जमकरणाइँ व जमहों अणिट्ठइँ ॥८॥
दिट्ठ महब्भुव भड-सन्दोहेंं । णं पारोह मुक्क णग्गोहें ॥९॥
दिट्ठ उर-त्थलु फाडिउ चक्कें । दिण-मज्झु व(?) मज्झत्थें अक्कें ॥१०॥
अवणियलु व विम्भेण विहञ्जिउ । णं विहिँ भाएँहिँ तिमिरु व पुञ्जिउ ॥११॥

घत्ता

पेक्खेंवि रामेंण समरङ्गणें रावण [हों] मुहाइँ ।
आलिङ्गेप्पिणु धीरिउ 'रुवहि विहीसण काइँ ॥१२॥

[२]

सो मुउ जो मय-मत्तउ जीव-दया-परिचत्तउ ।
वय-चारित्त-विहूणउ दाण-रणङ्गणें दीणउ ॥१॥
सरणाइय-बन्दिग्गहें गोग्गहें । सामिहें अवसरें मित्त-परिग्गहें ॥२॥
णिय-परिहवें पर-विहुरें ण जुज्झइ । तेहउ पुरिसु विहीसण रुज्झइ । ३॥
अण्णु इ दुक्खिय-कम्म-जणेरउ । गरूअउ पाव-भारु जसु केरउ ॥४॥
सव्वंसह वि सहेवि ण सक्कइ । अहों अण्णाउ भणन्ति ण थक्कइ ॥५॥

आँसुओंसे गीली हो रही थीं। वानर समूहके साथ विश्व-विख्यात राम और लक्ष्मणने भी रावणको देखा। लोट-पोट होते हुए, उसके मुकुट सहित सिर ऐसे दिखाई देते थे, मानो पराग सहित कमल हों, गिरे हुए उसके भालतल ऐसे लग रहे थे, मानो अर्धचन्द्रके प्रतिबिम्ब हों, चमकते हुए मणि-कुण्डल ऐसे लगते थे मानो अनेक प्रलयकालीन सूर्य हों, भृकुटिसे भयंकर उसकी भौंहें ऐसी लगती थीं, मानो धुँधाती हुई प्रलयकी आग हो, उसके लम्बे विशाल नेत्र ऐसे लगते थे, मानो मरणपर्यन्त आसक्त रहनेवाले युगल हों, दाँतोंसे युक्त मुख-कुहर ऐसे लगते थे, मानो यमके अनिष्टतम यमकरण अस्त्र हों। योद्धाओंके समूहने जब रावण की विशाल भुजाएँ देखीं तो लगा जैसे वटवृक्षके तने हों, चक्रसे फाड़ा गया वक्षःस्थल ऐसा दिखाई दिया, मानो सूर्यने मध्याह्नमें दिनके दो टुकड़े कर दिये हों। वह ऐसा लगता था मानो विन्ध्याचलने धरती-को विभक्त कर दिया हो, अथवा अनेक भागोंमें अन्धकार ही इकट्ठा हो गया हो। युद्धके प्रांगणमें, रावणके मुखोंको देखकर, रामने विभीषणको अपने अंकमें भर लिया, और धीरज बँधाते हुए कहा, "हे विभीषण, तुम रोते क्यों हो" ॥१-१२॥

[२] "वास्तवमें मरता वह है जो अहंकारमें पागल हो, और जीवदयासे दूर हो, जो व्रत और चरित्रसे हीन हो, दान और युद्ध भूमिमें अत्यन्त दीन हो। जो शरणागत और वन्दीजनोंकी गिरफ्तारीमें, गायके अपहरणमें, स्वामीका अवसर पड़नेपर, और मित्रोंके संग्रहमें, अपने पराभवमें और दूसरेके दुःखमें काम नहीं आता, ऐसे आदमीके लिए रोया जाता है। इसके सिवाय, जो दुष्ट कर्मोंका जनक हो, जिसके पापका भार बहुत भारी हो, यहाँ तक कि सब कुछ सहनेवाली धरतीमाता

वेवइ वाहिणि किं महँ सोसहि । धाहावइ खजन्ती ओसहि ॥६॥
छिज्जमाण वणसइ उग्घोसइ । कइयहुँ मरणु णिरासहों होसइ ॥७॥
पवणु ण मिडइ माणु कर खज्जइ । भणु राउल-चोरग्गिहुँ खज्जइ ॥८॥
विन्धइ कण्टेंहि व दुव्वयणेंहिं । विस-रुक्खु व मण्णिज्जइ सयणेंहिं ॥९॥

घत्ता

धम्म-विहूणउ पाव-पिण्डु अणिहालिय-थामु ।
सो रोवेवउ जासु महिस-विस-मेसहिं णामु ॥१०॥

[२]

एयहों अखलिय-माणहों दिण्ण-णिरन्तर-दाणहों ।
पूरिय-पणइणि-आसहों रोवहि काइँ दसासहों ॥१॥
रोवहि किं तिहुअण-वसियरणउ । किय-णिसियर-वंसब्भुद्धरणउ ॥२॥
रोवहि किय-कुबेर-विक्भाडणु । किय-जम-महिस-सिङ्ग-उप्पाडणु ॥३॥
रोवहि किय-कइलासुद्धारणु । सहसकिरण-णलकुब्बर-वारणु ॥४॥
रोवहि किय-सुरवइ-भुव-बन्धणु । किय-अइरावय-दप्प-णिसुम्भणु ॥५॥
रोवहि किय-दिणयर-रह-मोडणु । किय-ससि-कंसरि-केसर-तोडणु ॥६॥
रोवहि किय-फणिमणि-उद्दालणु । किय-वरुणाहिमाण-संचालणु ॥७॥
रोवहि किह णिहि-रयणुप्पायणु । किय-रयणियर-णियर-अप्पायणु ॥८॥
रोवहि किय बहुरूविणि-साहणु । किय-दारुण-दूसह-समरङ्गणु ॥९॥

भी जिसे सहन नहीं करती, नदी काँपती है कि क्यों मेरा शोषण करते हो, खायी जाती हुई औषधि दहाड़ मारकर रो पड़ती है, छीजती हुई वनस्पति जिसके बारेमें घोषणा करती है, जो आशा शून्य है उस का मरण ही कब होता है, उसे पवन नहीं छूता, सूर्य भी उसे अपने अधीन नहीं करता, राजकुल रूपी चोरोंसे जो धन इकट्ठा करता रहता है, जो अपने खोटे वचनोंसे काँटोंकी भाँति वेध देता है, और स्वजन जिसे विष-वृक्ष मानते हैं। जो धर्मसे रहित है, पापपिण्ड है, जिसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं, जिसका नाम महिष, वृषभ और मेषके नामपर हो, उसे रोना चाहिए ॥१–१०॥

[३] परन्तु यह (रावण) तो अस्खलित मान था। उसने निरन्तर दान दिया है, याचकजनोंकी उसने आशा पूरी की है, ऐसे रावणके लिए तुम नाहक रोते हो। तुम उसके लिए क्यों रोते हो, जिसने त्रिभुवनको वशमें कर लिया था। जिसने निशाचर कुलका उद्धार किया। कुबेरका नाश करनेवालेके लिए तुम क्यों रोते हो, जिसने यम और महिषके सींग उखाड़ दिये, जिसने कैलास पर्वतका उद्धार किया, उसके लिए तुम क्यों रोते हो ? जिसने सहस्रकिरण और नल-कूबरका प्रतिकार किया, जिसने इन्द्रको बन्दी बनाया, जिसने ऐरावतके घमण्ड-को चूर-चूर कर दिया, उसके लिए तुम क्या रोते हो, जिसने सूर्यका रथ मोड़ दिया, जिसने चन्द्रमाके सिंहके अयालको तोड़ डाला, जिसने साँपके फणमणिको उखाड़ दिया और वरुणके अभिमानको चलता किया, ऐसे उस निधियों और रत्नोंको उत्पन्न करनेवाले रावणके लिए तुम क्यों रोते हो ? जिसने समूचे निशाचर कुलको अपना बना लिया, बहुरूपिणी विद्याकी सिद्धि करनेवाले और अनेक भयंकर समरांगणोंके

घत्ता

थिय अजरामर भुवण-वसिद्धि परिट्ठिय जासु ।
सय-सय-खण्ड होवहि काइँ विहीसण तासु' ॥१०॥

[४]

तं णिसुणेवि पहाणउ भणइ विहीसण-राणउ ।
'एत्तिउ रूसमि दसासहों भरिउ भुवणु जं अयसहों ॥१॥
एण सरीरें अविणय-थाणें । दिट्ठ-णट्ठ-जल-बिन्दु-समाणें ॥२॥
सुरचावेण व अथिर-सहावें । तडि-फुरणेण व तक्खण-भावें ॥३॥
रम्भा-गब्भेण व णीसारें । पक्क-फलेण व सडणाहारें ॥४॥
सुक्क-हरेण व विहडिय-बन्धें । पच्छहरेण व अइ-दुग्गन्धें ॥५॥
उक्करुडेण व कीडावासें । अकुलीणेण व सुकिय-विणासें ॥६॥
परिवाहेण व किमि-कोट्ठारें । असुहहँ भुवणें भूमिहँ भारें ॥७॥
अट्ठिय-पोट्टलेण वस-कुण्डें । पूय-तलाएं आमिस-डब्बें ॥८॥
मल-कूडेण रुहिर-जल-वरणें । कसि-विवरेण चम्म-णिज्झरणें ॥९॥
कुहिय-करण्डएण घिणिवन्तें । चम्ममएण इमेण कु-जन्तें ॥१०॥
तउ ण चिण्णु मण-तुरउ ण रुम्भिउ । मोक्खु ण साहिउ णाहु ण अञ्चिउ ॥११॥
वउ ण धरिउ महु ण किउ णिवारिउ । अप्पउ किउ तिण-समउ णिरारिउ' ।१२।
तं णिसुणेवि विहीरइ हलहरु । 'एहु वट्टइ णिज्झावण-अवसरु' ॥१३॥

घत्ता

एम भणेप्पिणु पुणु आएसु दिण्णु परिवारहों ।
'धवल-सहावहँ लकहँ व लहु कट्ठहँ ओसारहों' ॥१४॥

विजेता रावणके लिए तुम क्यों रोते हो? जो अजर अमर है, जिसकी संसारमें प्रसिद्धि हो चुकी है हे विभीषण, तुम सौ-सौ बार उसके लिए क्यों रोते हो? ॥१-१०॥

[४] यह सुनकर प्रधान राजा विभीषणने कहा, "मैं इतना इसलिए रोता हूँ कि रावणने अयशसे, दुनियाको इतना अधिक भर दिया है। यह मनुष्य शरीर अविनयका स्थान है, जलकी बूँदके समान देखते-देखते नष्ट हो जाता है, इन्द्रधनुषकी तरह यह चपलस्वभाव है बिजलीकी चमककी तरह, उसी समय नष्ट हो जाता है; कदलीवृक्षके गाभकी तरह निस्सार है, पके फलकी तरह यह पक्षियोंका आहार बनता है। शून्य गृहकी भाँति इसके सभी जोड़ विघटित हैं, बुरी वस्तुकी तरह यह दुर्गन्धसे भरा हुआ है। अपवित्र वस्तुके ढेरकी तरह जिसमें कीड़े बिलबिला रहे हैं, अकुलीनकी तरह जो पुण्यका विनाश करता रहता है। नगर नालीकी तरह जो कीड़ोंका घर है, जो धरतीपर अपवित्रताका भार है, जो हड्डियोंका ढेर और मज्जा-का कुण्ड है, पीबका तालाब है, और मांसका पिण्ड है, मलका कूट है, और रक्तका सर है, गुह्यस्थानसे सहित, जो पसीनेसे भरा हुआ है, हड्डियोंका ढेर घिनौना, चर्ममय एक खोटा यन्त्र है। इससे तप नहीं किया, अपने मनके घोड़ेका निवारण नहीं किया, मोक्ष नहीं साधा, भगवान्‌की चर्चा नहीं की—व्रत नहीं साधा, मदका निवारण नहीं किया, अपनेको तिनकेके बराबर हलका बना लिया।" यह सुनकर रामने कहा, "क्या यह निन्दाका अवसर है"। यह कहकर, रामने परिवारको आदेश दिया कि खलके समान कठिन स्वभाववाली लकड़ियाँ शीघ्र निकालो ॥१-१४॥

[५]

कहूँ रामाएमें मड-णिवहेण असेसें ।
मेलावियइँ विचित्तइँ सिल्हय-चन्दण-मिसइँ ॥१॥
बब्बर-गोसिरीस-सिरिखण्डइँ । देवदारु-कालागरु-खण्डइँ ॥२॥
कय कत्थूरी-कप्पूरङ्कइँ । कङ्कोलेला-लवलि-लवङ्गइँ ॥३॥
एव सुअन्ध-महद्दुम-पमुहइँ । णीसारेंवि मसाणहों समुहइँ ॥४॥
किङ्कर-वरें हिं तिलोयाणन्दहों । कहिउ णवेप्पिणु राहवचन्दहों ॥५॥
'मेलावियइँ मडारा कट्ठइँ । दुट्ठङ्कुर-दाणाइँ [व] कट्ठइँ ॥६॥
कामिणि-ओब्वणाइँ व जण-घट्ठइँ । कु-कुडुम्बाइँ व थाणहों भट्ठइँ ॥७॥
बहरि-कुलाइँ व उक्खय-मूलइँ । वाइ-पुरिस-चित्ताइँ व थूलइँ' ॥८॥
तं णिसुणेवि विणिग्गय-णामें । उच्चल्लाविउ रामणु रामें ॥९॥

घत्ता

जेण तुलेप्पिणु किउ कइलासु समुण्णइ-भग्गउ ।
सो विहि-छन्देंण सामण्णहि मि तुलिज्जइ लग्गउ ॥१०॥

[६]

उच्चाइएँ दसाणणें सोउ पवड्ढिउ परिअणें ।
मीसणु विविह-पयारउ उट्ठिउ हाहाकारउ ॥१॥
केली-वण उच्छु-वण-समाणइँ । खलइँ व डज्झइँ थियइँ विताणइँ ॥२॥
धय धरहरिय मसाण-मएण व । पूरिय सङ्ख बन्धु दुक्खेण व ॥३॥
तूरइँ हयइँ पुव्व-वइरा इव । वद्धइँ तोरणाइँ चोरा इव ॥४॥
चमरइँ पाडियाइँ चित्ताइँ व । छित्तइँ पण्णइँ कु-कलत्ताइँ व ॥५॥
फाडियाइँ दोहाइँ व णेत्तइँ । धरियइँ संगहणाइँ व छत्तइँ ॥६॥
चूरियाइँ खल-मुहइँ व रयणाइँ । लुद्धइँ सङ्ख-उलाइँ व वयणाइँ ॥७॥

[५] रामका आदेश पाकर समस्त भट समूहने गीले चन्दनसे युक्त विचित्र ईंधन इकट्ठा किया। बबूल, गोरोचन, चन्दन, देवदारु, कालागुरु, कस्तूरी, कपूर, कंकोल, एला, लवली, लवंग आदि अत्यन्त सुगन्धित प्रमुख वृक्षोंकी लकड़ियाँ, मरघटपर पहुँचाकर श्रेष्ठ अनुचरोंने त्रिलोकको आनन्द देनेवाले श्रीरामको प्रणाम किया और कहा, "हे आदरणीय, हमने लकड़ियाँ डाल दी हैं, जो दुष्टके उत्कट दानकी तरह कठिन हैं, कामिनियोंके यौवनकी तरह जनोंके द्वारा मर्दन करने योग्य हैं, खोटे कुटुम्बकी तरह अपने स्थानसे भ्रष्ट हैं, शत्रुकुलकी तरह जो जड़से उखाड़ दी गयी हैं, वादी पुरुषोंके चित्तकी भाँति जो स्थूल हैं (मोटी हैं)।" यह सुनकर विख्यात नाम रामने रावणकी अरथी उठवा दी। जिसने शक्तिसे कैलास पर्वत उठाकर उसके गर्वको खण्डित किया था, आज भाग्यके फेरसे साधारण लोग उसे उठाने लगे ॥१–१०॥

[६] रावणकी अरथी उठाते ही, परिजनोंमें शोककी लहर दौड़ गयी। तरह-तरहका भीषण हाहाकार गूँज उठा। बड़े-बड़े वितान थे, जो कदलीवन और ईखके खेतोंकी तरह विकृत और दुष्टकी तरह उद्धत थे। मरघटके भयसे पताकाएँ फहरा रही थीं। शंख उसी तरह पूरित थे जिस प्रकार भाई दुःखसे भरा हुआ था। पूर्व वैरकी तरह नगाड़े बजा दिये गये। चोरोंकी भाँति तोरण बाँध दिये गये। चित्तकी भाँति चमर गिर पड़े। खोटी स्त्रीकी भाँति पत्ते गिरने लगे। दुर्भाग्यकी भाँति (रेशमी) वस्त्र फाड़े जाने लगे, संग्रहकी भाँति छत्र धारण किये जाने लगे, दुष्टोंकी भाँति मोती चूरे जाने लगे, शंखोंकी तरह मुख क्षुब्ध हो उठे। इस प्रकार रावणकी मृत्यु-

आएं मरणावत्थ-विहोणं । कलुणकन्दु करन्तें कोणं ॥८॥
णिउ मसाणु सुरवर-सन्तावणु । विरइउ सेलु वइसारिउ रावणु ॥९॥

घत्ता

जो परिचड्डिउ सयल-काल कामिणि-थण-वट्टेंहिं ।
सो पुवण-कलऍं पेक्खु केम पहु पेल्लिउ कट्टेंहिं ॥१०॥

[७]

अट्ठावय-कम्पावणें चियऍं चडाविऍं रावणें ।
सालङ्कारु स-णेउरु मुच्छाविउ अन्तेउरु ॥१॥

वार-वार णिवडइ णिच्चेयणु । वार-वार उब्भियइ स-वेयणु ॥२॥
वार-वार उम्मुहु धाहावइ । छिज्जमाणु सङ्खिणि-उलु णावइ ॥३॥
अन्तेउर-अणुमरणासङ्कऍं । चिन्धइँ कम्पन्ति व अणुकम्पऍं ॥४॥
छत्तइँ एम भणन्ति वराया । 'पइँ विणु कासु करेसहुँ छाया' ॥५॥
तूरहि एम णाइँ घोसिज्जइ । 'पइँ विणु कासु पासें वज्जिज्जइ' ॥६॥
'को जुप्पेसइ रण-भर-कक्खेंहिं' । एव णाइँ धाहाविउ सङ्खेंहिं ॥७॥
तहिं अवसरें तओणि-विणासणु । सीयासाउ व दिण्णु हुआसणु ॥८॥
सहसा उप्परें चडेंवि ण सक्कइ । कम्पइ तसइ ल्हसइ ण ढुक्कइ ॥९॥
'सगिरि-ससायर-महि-कम्पावणु । मा पुणो वि जीवेसइ रावणु' ॥१०॥

घत्ता

पुणु वि पडीवउ चिन्तइ एव णाइँ धूमद्धउ ।
'काइँ दहेसमि एयहों जो अयसेण जि दड्ढउ' ॥११॥

[८]

तहिं अवसरें दुक्खाउरु लङ्काहिव-अन्तेउरु ।
मइलिय-वयण-सरोरुहु णिउ सलिलहों सवडम्मुहु ॥१॥

दशासे क्षुब्ध होकर लोग करुण क्रन्दन कर रहे थे। उसके बाद देवताओंके सतानेवाले रावणको मरघटमें ले गये, चिता बनाकर उसमें उसे रख दिया गया। जो रावण हमेशा सुन्दर कामिनियोंके स्तनभागपर चढ़ा, देखो पुण्यका क्षय होनेपर वह किस प्रकार लकड़ियोंसे ठेला जा रहा है ॥१-१०॥

[७] अष्टापदको कँपा देनेवाला रावण चितापर चढ़ा दिया गया। यह देखकर नूपुरों और अलंकारोंसे युक्त अन्तःपुर मूर्छित हो उठा; वह बार-बार अचेत होकर गिर पड़ता। बार-बार वेदनासे व्याकुल होकर उठता। बार-बार, मुख ऊँचा कर वह रो पड़ता, ऐसा लगता मानो छीजता हुआ शंख-कुल हो। रनिवासकी मृत्युकी आशंकासे मारे डरके पताकाएँ काँप रही थीं। बेचारे छत्र भी यह कह रहे थे कि "तुम्हारे बिना अब हम किसपर छाया करेंगे, तूर्य भी यह घोषणा बार-बार कह रहे थे कि तुम्हारे बिना, अब कैसे बजेंगे! "सैकड़ों लाखों रणभारोंमें भला कौन हमें फूँकेगा,"—मानो शंख भी यह कह रहे थे। ठीक इसी अवसरपर अपने ही आश्रयका नाश करनेवाली आग, सीताके शापकी तरह चितामें लगा दी गयी। परन्तु वह आग शीघ्र ही लौ नहीं पकड़ सकी। काँपती, झपकती और सिसकती हुई वह टिमटिमा रही थी। मानो वह अपने मनमें सोच रही थी कि पहाड़ों और समुद्रों सहित धरतीको कँपा देनेवाला रावण कहीं दुबारा जीवित न हो जाय। आग फिर सोचने लगी, "इसे क्या जलाऊँ यह तो अयशसे पहले ही जल चुका है" ॥१-११॥

[८] उस अवसरपर रावणका रनिवास दुःखसे व्याकुल था, उसका मुखकमल मुरझाया हुआ था। वह पानीके पास

गयइँ कलत्तइँ जम्मन्तरइँ व । तूर-सहासइँ सुइणन्तरइँ व ॥२॥
सज्ज मियन्त(?)हएँवि सयणा इव । किङ्कर लद्ध-फलइँ सउणा इव ॥३॥
बन्दिण दाण-भोग-णिवहा इव । बन्धव णव-जोव्वण दियहा इव ॥४॥
रयण-णिहाण-धरत्ति-तिखण्डइँ । चमरइँ चिन्धइँ धयइँ स-दण्डइँ ॥५॥
लङ्काउरि-सीहासण-छत्तइँ । छड्डेंवि थियइँ णाइँ दु-कलत्तइँ ॥६॥
गग गय गय जि ण दिट्ठ पडीवा । हय हय हय जि ण हूय स-जीवा ॥७॥
रह रह रह रहेंवि थिय दूरें । को दीसइ अत्थमिएं सूरें ॥८॥
तहिं अवसरें परितुट्ठ-पहिट्ठइँ । एव चवन्ति व चन्दण-कट्ठइँ ॥९॥
'जाहँ पसाय ताहँ एक्केण वि । तुम्हावसरु ण सारिउ केण वि ॥१०॥
सामिय अम्हेँ जइ वि पइँ घट्टइँ । गणियइँ जणहों मज्झें अइ कट्टइँ ॥११॥

घत्ता

जइ वि स-हत्थें ण किउ आसि गरुयउ सम्माणु ।
तो वि वहेव्वउ हुयवहें पइँ समाणु अप्पाणु' ॥१२॥

[९]

ताव णिरन्तरु णीलउ उट्ठिउ धूमुप्पीलउ ।
अन्धारिय-णह-मग्गउ रावण-अयसु व णिग्गउ ॥१॥
दस-दिसि-वह मइलन्तु पधाइउ । जिह अकुलीणउ कहिं मि ण माइउ ॥२॥
धूम-मज्झें धूमद्धउ धावइ । विज्जु-वलउ जलअन्तरें णावइ ॥३॥
पवम (?) पएहिँ लग्गु अकुलीणु व । पच्छएँ उप्परें चडिउ णिहीणु व ॥४॥
जे णरवर-चूडामणि-चुम्बिय । जाहँ णहेँहिँ रवि-ससि पडिबिम्बिय ॥५

गया। जन्मान्तरोंकी भाँति बहुत-सी स्त्रियाँ वहाँ पहुँचीं। स्वप्नान्तरोंकी भाँति हजारों तूर्य वहाँ थे। उन्हें देखकर स्वजनोंकी भाँति शंख रो रहे थे, पक्षियोंकी भाँति अनुचर फल लिये हुए थे, दान और भोगके समूहकी तरह वन्दीजन वहाँ थे। नवयौवनके दिवसोंको भाँति बन्धुजन वहाँ थे, रत्नोंसे भरी हुई तीन खण्ड धरती, चमर चिह्न ध्वज और दण्ड, लंकाका सिंहासन और छत्र छोड़कर वे खोटी स्त्रीकी भाँति स्थित हो गयीं। हाथी चले गये और ऐसे गये कि फिर लौटकर नहीं आये। अश्वोंकी ऐसी दुर्गति हुई कि फिर उनमें जान नहीं आयी। रह-रहकर, एक एक रथ दूर हो गया। भला सूर्यके अस्त होनेपर कौन-कौन दीख सकता है? उस अवसरपर सन्तुष्ट और प्रसन्न चन्दनकी लकड़ियोंने कहा, "हे स्वामी, जिनपर आपका प्रसाद था उनमें-से एक भी तुम्हारे काम नहीं आया। हे स्वामी, इस समय आपको हम घसीटें तो लोग हमें कठोर कहेंगे। यद्यपि आपने मेरा सम्मान अपने हाथों नहीं किया है, परन्तु फिर भी आगमें तुम्हारे साथ स्वयंको भी जलाऊँगी।' ॥१-१२॥

[९] इसी अन्तरालमें नीला-नीला धूम-समूह चिता से उठा, उसने समूचे आकाशमार्गको अँधेरे से भर दिया। वह ऐसा लगता था मानो रावणका अयश निकला हो। वह दसों दिशाओंको मैला करता हुआ जा रहा था, अकुलीनकी भाँति कहीं भी नहीं समा रहा था; धूमके भीतर आग ऐसी लगती थी, मानो पानीके भीतर बिजली-समूह हो। अकुलीन पहले पैरोंपर लगता है, फिर वह नीच ऊपर चढ़ता है! रावणके पैरोंको, जो कभी बड़े-बड़े राजाओंसे चूमे जाते थे, और जिनके नखोंमें सूर्य और

ते कम-कमल कन्ति-परियड्ढा । सिहि-खलेण सुयणा इव दड्ढा ॥६॥
जं सुकलत्त-कलत्तेंहिं रत्तउ । रह-गय तुरय विमाणेंहिं जन्तउ ॥७॥
सीहासण-पल्लङ्केंहिं ठन्तउ । रसणा-किङ्किणि-मुहलिजन्तउ ॥८॥
तं णियम्बु जलणेन विहसिउ । तक्खणें छारहों पुञ्जु पदरिसिउ ॥९॥
जं कइलास-कूड-अवरुण्डणु । जं कामिणि-पीण-त्थण-चड्डणु ॥१०॥
जं मोत्तिय-मालालङ्करियउ । णं गयणङ्गणु तारा-भरियउ ॥११॥

घत्ता

जं रत्तिंदिउ सीया-विरहाणल-जालड्ढउ ।
अलसन्तेण व तं पहु-हियउ हुआसें दड्ढउ ॥१२॥

[१०]

जे भुवणाहिन्दोलणा बइरि-समुद्द-विरोलणा ।
सुर-सिन्धुर-कर-बन्धुरा परियड्ढिय-रण-भर-धुरा ॥१॥
जे थिर थोर पलम्ब पईहर । सुहि-मम्भीस वीस-पहरण-धर ॥२॥
जे बालत्तणें बालकीलएँ । पणय-मुहेंहिं छुहन्तउ लीलएँ ॥३॥
जे गन्धव्व-वावि-आडुम्मण । सुरसुन्दर-बुह-कणय-णिसुम्भण ॥४॥
जे बहुरूवण-रिद्धि-विब्भाडण । तिजगविहूसण-गय-मय-साडण ॥५॥
जे जम-दण्डचण्ड-उद्दालण । स-वसुन्धर-कइलासुच्चालण ॥६॥
जे सहसयर-मडप्फर-भञ्जण । णलकुब्बर-गेहिणि-मण-रञ्जण ॥७॥
जे अमरिन्द-दप्प-ओहट्टण । वरुण-णराहिव-बल-दलवट्टण ॥८॥
जे बहुरूविणि-विज्जाराहण । दूरोसारिय-वाणर-साहण ॥९॥

चन्द्रमा प्रतिबिम्बित थे, जो सुन्दर कान्तिसे अंकित थे, दुष्ट आगने सज्जनोंकी भाँति अला दिया। जो नितम्ब सुन्दर रमणियोंकी तृप्ति करते थे, रथ, अश्व, गज और विमानोंमें यात्रा करते थे, सिंहासन और पलंगपर बैठते थे, करधनीके नूपुरोंसे मुखरित रहते थे उसके भी आगने दो खण्ड कर दिये। एक क्षणमें वे जलकर राख हो गये। रावणका वह हृदय, जिसने कैलास शिखरका आलिंगन किया, जिसने हमेशा कामिनियोंके पीन स्तनोंसे क्रीड़ा की, जो सदा मोतियोंकी मालासे अलंकृत हो ऐसा लगता था मानो ताराओंसे जड़ित आसमान हो। जो रात-दिन सीताविरहकी ज्वालामें जलता रहा, आगने बिना किसी विलम्बके उसे भस्म कर दिया ॥१-१२॥

[१०] जिन हाथोंने कभी समूचे संसारको हिला दिया था, जिन्होंने शत्रु समुद्रको मथ डाला था, जो ऐरावतकी सूँड़के समान सुन्दर थे, जो युद्धका भार उठानेमें समर्थ थे, जो स्थिर दृढ़ और लम्बे थे, सुधियोंको अभय देनेवाले, बीस हथियार धारण करनेवाले थे, जिन्होंने बचपनमें खेल-खेलमें साँपोंके मुखोंको क्षुब्ध कर दिया था, जिन्होंने गन्धर्वकी बावड़ीका आलोडन किया था, जिन्होंने सुरसुन्दर बुध और कनकका विनाश किया था, जिन्होंने वैश्रवणके वैभव का विनाश किया था और त्रिजगभूषण महागजके मदका विनाश किया था, जिन्होंने यमके दण्डको प्रचण्डतासे उछाल दिया था, और धरती सहित कैलास पर्वतको उठा लिया था, जिन्होंने सहस्रनेत्रके घमण्डको चूर-चूर किया था और नलकूबरकी पत्नीका मनोरंजन किया था। जिन्होंने अमरोंके दर्पका विनाश किया था, और राजा वरुणके दर्पका दलन किया था, जिन्होंने बहुरूपिणी विद्याकी आराधना की थी और वानर सेनाको

घत्ता

जे स-सुरासुर-जग-जूरावण जिह जम-दूवा ।
ते णिविसद्धेंण वीस वि वाहु-दण्ड मसिहूया ॥१०॥

[११]

दसकन्धर-संदीवउ णाइँ णिएइ पडीवउ ।
किं दहगीवहों गीवउ णिज्जीवाउ सजीवउ ॥१॥
सो जें जीउ कण्ठ-ट्ठिउ णावइ । णावइ दह-मुहेहिँ वोहावइ ॥२॥
जेहउ वाल-भावें पढमुब्भवें । णव-गह-कण्ठाहरण-समुब्भवें ॥३॥
जेहउ विज्ज-सहस्साराहणें । जेहउ चन्दहास-असि-साहणें ॥४॥
जेहउ मन्दोवरि-पाणिग्गहें । जेहउ सुरसुन्दर-बन्दिग्गहें ॥५॥
जेहउ कणय-धणय-ओसारणें । जेहउ जम-गइन्द-विणिवारणें ॥६॥
जेहउ अट्ठावय-कम्पावणें । जेहउ सहसकिरण-जूरावणें ॥७॥
जेहउ णलकुब्बर-वल-मद्दणें । जेहउ सक्क-सुहड-कडमद्दणें ॥८॥
जेहउ वरुण-णराहिव-साहणें । जेहउ बहुरूविणि-आराहणें ॥९॥

घत्ता

तेहउ एवहिँ होइ ण होइ व किह मुह-राउ ।
आएं कोडेंण हुअवहु णाइँ णिहालउ आउ ॥१०॥

[१२]

वयणु णियन्तु हुआसउ वड्ढिउ जाल-सहासउ ।
जगु मुहेंहिँ विसत्थउ णाइँ विकासिणि-सत्थउ ॥१॥
गउ सरहसु दहेवि दह वयणइँ । गहकल्लोलु व दस-ससि-गहणइँ ॥२॥
जाइँ बहल-तम्बोलायम्बइँ । फग्गुण-तरुण-तरणि-पडिबिम्बइँ ॥३॥
दसण-च्छवि-किय-विज्जु-विलासइँ । मलयाणिल-सुअन्ध-णीसासइँ ॥४॥
मुद्ध-पुरन्धि-पीय-अहर-द्दलइँ । भोयण-खाण-पाण-रस-कुसलइँ ॥५॥

दूर भगाया था। जो असुरों और सुरों सहित दुनियाको यम-दूतोंकी तरह सतानेवाले थे, वे बीसों ही हाथ एक पलमें राखके ढेर भर रह गये ॥१-१०॥

[११] दशकन्धरकी आग मानो फिरसे देख रही थी कि रावणकी गर्दन सजीव है या निर्जीव है। दसमुखोंसे वह जीव ऐसा लगता था मानो कण्ठमें स्थित हो। वैसा ही जन्मके समय, बचपनमें, नवग्रहकण्ठाभरणोंके उत्पन्न होनेपर जैसा था। हजारों विद्याओंकी आराधनामें, चन्द्रहास तलवार ग्रहण करते समय, मन्दोदरीका पाणिग्रहण करते समय, सुर-सुन्दरियोंको बन्दी बनाते समय, कनक और कुबेरको हटाते समय, यम-गजेन्द्रका प्रतीकार करते समय जैसा था। अष्टापदको कँपाते हुए जैसा था, सहस्रकिरणको कँपानेमें जैसा, नलकूबर और बलका मर्दन करते समय जैसा था, शक्र और दूसरे सुभटोंके मर्दनके समय जैसा था, वरुणाधिपको वशमें करते समय जैसा था, और बहुरूपिणी विद्याकी आराधनाके समय जैसा था। क्या पता, अब वैसा मुखराग हो या न हो, मानो इसी कुतूहलसे आग उसका मुख देखने आयी थी ॥१-१०॥

[१२] जब आगने रावणके मुखको छुआ तो उससे हजारों ज्वालाएँ ऐसी फूट पड़ीं, मानो विलासिनियोंका झुण्ड किसीके मुँह लग गया हो! आग रावणके दसों मुख जलाकर चल दी। मानो दसों चन्द्रमाओंको निगलकर राहु चल दिया हो। उन-मुखोंको जो पान खानेसे लाल थे, जो फागुनके सूर्यकी तरह चमकते थे, जो दाँतोंकी कान्तिसे बिजलीकी शोभा धारण करते थे। जो मलयपवनकी सुगन्धसे उच्छ्वसित थे। जिन्होंने मुग्ध इन्द्राणीके अधरोंका मुखपान किया था, जो भोजन खान-पान

रएँ रणें दामें वद्ध-अणुरावइँ । जिय-सुर-चाया-पविरुय-छायइँ ॥६॥
तिहुवण-जण-संतावण-सीलइँ । तियस-विन्द्-कन्दावण-कीलइँ ॥७॥
कम्पाविय-दस-दिसिवह मग्गइँ । सयलागम-अवसाण-वलग्गइँ ॥८॥
ताइँ मुहइँ अणन्त-वियड्ढइँ । णिविसें कुम्भहराइँ व दड्ढइँ ॥९॥

घत्ता

आइँ विसालइँ तरलइँ तारइँ मुद्ध-सहावइँ ।
विहि-परिणामेंण णयणाइँ ताइँ कियइँ मसिभावइँ ॥१०॥

[१३]

जे कुण्डल-मणि-मण्डिया सयलागम-परिचड्ढिया ।
ते कण्णाऽणल-चोलिया थल्लूरा व पलोलिया ॥१॥
आइ जिणिन्द पाय-पणमिल्लइँ । सेहर-मउड-पट्ट-सोहिल्लइँ ॥२॥
अञ्जण-गिरि-सिहरुण्णय-माणइँ । सजल-वलाहय-दुग्ग-समाणइँ ॥३॥
कण्ण-कुण्डलुज्जल-गण्डयलइँ । अट्ठमि-चन्द्-रुन्द्-भालयलइँ ॥४॥
सयल-काल(?)रणें भिउडि-कराळइँ । मउर-कसण-कोल-भडहालइँ ॥५॥
जम-णाराय-पईहर-णयणइँ । दसणावलि-दट्ठाहर-वयणइँ ॥६॥
ताइँ सिरइँ सय-कुन्तल-केसइँ । कियइँ खणन्तरेण मसि-सेसइँ ॥७॥
धुय-परिहउ परिपुण्ण-मणोरहु । लद्ध-भूउ समजाली(?) हुयवहु ॥८॥
जो सुरवरहँ आसि अवहरियउ । सो रावणु तेउ व णीसरियउ ॥९॥
सीया-सायर्गि व णिव्वडियउ । लक्खण-कोवग्गि व वावडियउ ॥१०॥
सेस-विसग्गि व दूरुच्छलियउ । वसुमइ-हियय-वप्पु व जलियउ ॥११॥

और रसमें कुशल थे। जो रति रण-दानसे प्रेम रखते थे, देवताओंकी कान्ति जीतनेसे जिनकी प्रभा द्विगुणित हो रही थी, जो तीनों लोकोंको सतानेवाले थे, देवताओंके समूहको सताना जिनके लिए एक खेल था। जिन्होंने दसों दिशाओंको कँपा दिया था, जो समस्त आगमोंकी चरम सीमापर पहुँच चुके थे। ऐसे उन अत्यन्त विदग्ध मुखों और अधरोंको सूने घरोंकी भाँति एक क्षणमें खाकमें मिला दिया। जो विशाल तरल स्वच्छ और मुग्ध स्वभावके थे, भाग्यके वशसे वे नेत्र भी राख बन गये ॥१-१०॥

[१३] जो कान कुण्डल और मणियोंसे मण्डित थे, जिन्होंने समस्त शास्त्रोंका पारायण किया था, वे भी आगमें विलीन हो गये—एक लताकी तरह झुलस गये। जो सिर सदैव जिन भगवानके चरणकमलोंको छूते थे, जो शेखर मुकुट और राजपट्टसे शोभित थे और जिनका मान अंजनगिरिके शिखरकी तरह ऊँचा था—जो सजल मेघोंके दुर्गकी भाँति थे, जिनके गाल कानोंके कुण्डलोंसे चमक रहे थे, जिनके भालतल अष्टमीके चाँदकी तरह थे, जिनकी भौंहें सदैव युद्धकालमें भयंकर रहती थीं, बाँके, काले और चंचल जिनके बाल थे, यमके तीरोंकी तरह नुकीली जिनकी आँखें थीं, जिनकी दशनावली अधरोंमेंसे दिखाई देती थी, घुँघराले स्वच्छ बालोंवाले वे सिर एक क्षणमें भस्म शेष रह गये। आग भी आज, पराभवसे शून्य, समर्थ समज्वाल और सफल मनोरथ हो सकी। जो रावण देवताओंका अपहरण करता था वह भी आगकी भाँति जलता रहा था, सीताकी शापाग्निके समान समाप्त हो गया, लक्ष्मणकी कोपाग्निके समान प्रगट हुआ, और शेषनागकी फूत्कारकी भाँति छलक पड़ा, और धरतीके हृदयके समान जल

घत्ता

सुरवर-डामरु रावणु दढ्‌ढु जासु जगु कम्पइ ।
'अण्णु कहिं महु सुज्झइ' एव णाइँ सिहि जम्पइ ॥११॥

[१४]

'रे रे जण णीसारउ   विहलु खलु संसारउ ।
दरिसिय-णाणावत्थउ   दुक्खावासु वि गत्थउ ॥१॥
जहिं उड्डन्ति महीहर वाएं ।   तहिँ किं गहणु रेणु-संघाएं ॥२॥
जहिं जलणेण जलन्ति जलाइँ वि । तहिँ तिणोहु किं थुक्कइ काइँ वि ॥३॥
जहिं कुलिसाइँ जन्ति सय-सक्करु । तहिँ कमलइँ केत्तडउ मडप्फरु ॥४॥
होइ महण्णवो वि जहिं णिप्पउ । तहिँ पञ्झरइ काइँ किर गोप्पउ ॥५॥
जहिं भइरावणो वि डम्मज्जइ ।   तहिँ किर काइँ ससउ गलगज्जइ ॥६॥
जहिँ णित्तेउ तरणि णह-मण्डणु ।   तहिँ किं करइ कन्ति जोइङ्गणु ॥७॥
जहिं तुट्टइ अचलिन्दु समत्थउ ।   तहिँ किर कवणु गहणु सिद्धत्थउ ॥८॥
कुम्भ-कडाह-थलु वि जहिं फुट्टइ । तहिँ कुम्भार-घडउ किं छुट्टइ ॥९॥

घत्ता

जहिं पलयङ्गउ रावणु तिहुयण-बणगय-अङ्कुसु ।
उप्पइवन्तउ तहिँ सामण्णु काइँ किर माणुसु' ॥१०॥

[१५]

ताव दसाणण-परियणु सोआउरु हेट्ठाणणु ।
पइसइ कमल-महासरेँण णावइ चिन्ता-सायरेँण ॥१॥
कमलायर-तीरन्तरेँ थक्केँवि ।   पभणइ रहुवइ णरवर कोक्केँवि ॥२॥
'अहों विज्जाहर-वंस-पईवहों ।   भामण्डल-सुसेण-सुग्गीवहों ॥३॥
अम्बव-मइसमुद्द-मइकन्तहों ।   दहिमुह-कुमुय-कुन्द-हणुवन्तहों ॥४॥

गया। जिससे एक दिन दुनिया काँपती थी, देवताओंके लिए भयावह, वह रावण भी जल गया। मानो आग अपनी काँपती हुई शिखासे कह रही थी कि क्या कोई मुझसे बच सकता है। ॥१–१२॥

[१४] अरे-अरे लोगो, यह संसार, क्षणभंगुर और निःस्सार है। इसमें नाना अवस्थाएँ देखनी पड़ती हैं, यह दुःखका आवास है, जहाँ हवासे बड़े-बड़े महीधर उड़ जाते हैं, वहाँ क्या धूल-समूहको पकड़ा जा सकता है,? जहाँ बड़वानलसे जल जलता है, वहाँ आगसे क्या तिनकोंका समूह बच सकता है ? जहाँ बड़े-बड़े वज्रोंके सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं, वहाँ कमल कितना घमण्ड कर सकते हैं, जहाँ बड़े-बड़े समुद्र जलरहित हो जाते हैं, वहाँ क्या गोपद बच सकता है, जहाँ ऐरावत भी नष्ट हो जाता है, वहाँ खरगोश क्या गर्जन कर सकता है ? जहाँ आकाशका मण्डन करनेवाला सूर्य निस्तेज हो जाता है, वहाँ बेचारा जुगनू क्या करेगा ? जहाँ समर्थ गिरिराज डूब जाता है, वहाँ सरसों बेचारा कैसे ठहर सकता है? जहाँ कछुएका पीठ रूपी कड़ाहा फूट जाता है, वहाँ क्या कुम्हारका घड़ा बच सकता है ? जहाँ रावण, जो त्रिभुवनरूपी वनगजके लिए अंकुश था और जो उन्नतिके चरम शिखरपर था, विनाशको प्राप्त हुआ, वहाँ सामान्य मनुष्य भला क्या कर सकता है ॥१–१०॥

[१५] तब दशाननके व्याकुल परिजनोंने अपना मुख नीचे किये हुए कमल महासरोवरमें इस प्रकार प्रवेश किया मानो उन्होंने चिन्ता सागरमें ही प्रवेश किया हो। इसी बीच कमल महासरोवरके किनारेपर बैठ कर रामने नर श्रेष्ठोंको बुलाकर कहा, "अरे भामण्डल, सुसेन और सुग्रीव, आप विद्याधर वंश दीपक हैं, हे जम्बू, मतिसमुद्र, मतिकान्त, दधिमुख,

रक्ख-विराहिय-तार-तरङ्गहों । चन्दकिरण-करणङ्गय-अङ्गहों ॥५॥
गवय-गवक्ख-सुसङ्ख-णरिन्दहों । णल-णीलहों माहिन्द-महिन्दहों ॥६॥
इन्दइ-कुम्भयण्ण कहु आणहों । कोसावारु करहों सरें ण्हाणहों' ॥७॥
तं णिसुणेवि कुद्ध सामन्तेंहिं । पञ्च-पयार-मन्त-मइवन्तेंहिं ॥८॥
'णाह ण होइ एहु भल्लारउ । सव्वहँ जणण-वइरु वड्डारउ ॥९॥

घत्ता

इन्दइ-राणउ सकिउ णिएँवि जइ कह वि वि वियट्टइ ।
तो अम्हारउ खन्धावारु सव्वु दलवट्टइ ॥१०॥

[११]

किण्ण परक्कमु बुज्झिउ जइयहुँ सुर-वरेँ जुज्झिउ ।
जिणेँवि वरुण बलवन्तहों भग्गु मरट्टु जयन्तहों ॥१॥
अण्णु वि पवण-पुत्तु जस-लुद्धउ । सो वि णाग-पासेहिँ णिबद्धउ ॥२॥
भामण्डलु सुग्गीउ सहत्थें । बद्ध ते वि तेण जि दिव्वत्थें ॥३॥
अण्णु वि कुम्भयण्णु किं धरियउ । जइयहुँ सण्णहेवि णीसरियउ ॥४॥
तहिँ अवसरें जं तेण वियम्भिउ । किण्ण दिट्ठु बलु सयलु वि थम्भिउ ॥५॥
अण्णु वि मारुइ आवइ पाविउ । तारा-सुएँण कुम्भु ओहाविउ ॥६॥
ते विण्णि अजिक्काणक-सरिसा । केण पडिच्छिय बद्धामरिसा ॥७॥
बद्धा किण्ण हुन्ति मणि उज्जल । बद्धा मउ मुअन्ति किं मयगल ॥८॥
बद्धा कव्वालाव मणहरा । किण्ण हुन्ति जणवएँ गुरुभारा ॥९॥

घत्ता

आयहुँ हत्थेँण णाह-वइरु परिवड्ढेँवि भीसणु ।
पर ण जाणहुँ काइँ करेसइ केएँ विहीसणु' ॥१०॥

कुमुद, कुन्द, हनुमान, रम्भ, विराधित, तार, तरंग, चन्द्रकिरण, करण, अंग, अंगद, गवय, गवाक्ष, सुसंख, नरेन्द्र, नल, नील, माहिन्द्र, महेन्द्र, तुम इन्द्रजीत और कुम्भकर्णको शीघ्र ले आओ! लोकाचार पूरा करो, सब सरोवरमें स्नान करो," यह सुनकर, पाँच प्रकारकी मन्त्रनीतिके वेत्ता बुद्धिमान् सामन्तोंने कहा, "हे स्वामी यह ठीक न होगा, सबमें पिताका बैर सबसे बड़ा होता है। इन्द्रजीत राजा हमें पानीमें देखकर यदि विद्रोह कर बैठा तो वह हमारी समूची छावनीको नष्ट कर देगा ॥१-१०॥

[१६] जब उसका देवताओंसे संग्राम हुआ था तब क्या तुमने उसके पराक्रमको नहीं देखा ? बलपूर्वक देवसुताको जीत कर उसने बलवान जयन्तका अहंकार नष्ट कर दिया था। इसके अतिरिक्त यशस्वी पवनपुत्रको भी उसने नागपाशमें बाँध लिया था और भी जो भामण्डल और सुग्रीव थे, उन्हें भी उसने दिव्यास्त्रसे अपने हाथों पकड़ लिया था। कुम्भकर्ण भी जब तैयार होकर निकला था तो क्या वह पकड़ा गया था। उस अवसरपर उसने जो कुछ किया उससे सभी सेना अचरजमें पड़ गयी थी। हनुमान आपत्तिमें फँस गया था। उसे तारासुतने बड़ी कठिनाईसे छुड़ाया था। हवा और आगके समान हैं वे दोनों! अमर्षसे भरे हुए उनका प्रतिकार भला कौन कर सकता है ? और क्या बँधे हुए मणि उज्ज्वल नहीं होते, क्या बँधे हुए मदगज अपना मद छोड़ देते हैं ? हे आदरणीय, बँधे हुए काव्यालाप क्या जनपदोंमें शोभा नहीं पाते। इन लोगोंके हाथसे भाईका बैर भयंकर रूपसे बढ़ गया है। हम नहीं जानते कि द्रोहसे विभीषण क्या कर बैठे ? ॥१-१०॥

[१०]

तं णिसुणेवि हलीसें कुवइ विहुणिय-सीसें ।
'लक्खण-समु किय-पेसणु विहडइ केम विहीसणु ॥१॥
विणयवन्तु अचन्त-सणेहउ । अण्णु वि लक्खिय-मग्गु ण एहउ ॥२॥
जेण समाणु रोसु सो हम्मइ । अवसें सहुँ अवमाणु ण गम्मइ ॥३॥
अहवइ किं करन्ति ते कुद्धा । भग्ग-मडप्फर संसऍ छुद्धा ॥४॥
उक्खय-दन्त मत्त मायङ्ग व । दाढुप्पाडिय पवर भुवङ्ग व ॥५॥
णहर-पहर-परिहीण मइन्द व । उण्णइ-भग्ग महीहर-विन्द व' ॥६॥
लद्धाएस पधाइय किङ्कर । उक्खय-पहरण-णियर-भयङ्कर ॥७॥
णग्गिएण तेण असेस वि राणा । दुम्मण दीण णिरुण्णय-माणा ॥८॥
लक्खण-रामहुँ पासु पराणिय । सहुँ अन्तेउरेण सरे ण्हाणिय ॥९॥

घत्ता

कोयाचारेंण पाणिउ दिण्णु दसाणण-वीरहों ।
अञ्जलि-उडेंहिं व पर पिवन्ति लायण्णु सरीरहों ॥१०॥

[१८]

अह दहमुह-पियइत्तिहें मुच्छाविवर्ये (?) चरित्तिहें ।
पच्चुज्जीविय-अत्थऍ सलिलु पिवन्ति व मत्थऍ ॥१॥
अहवइ वसुमईऍ जं दिण्णउ । सोक्खु असेसु वि आसि उक्किण्णउ ॥२॥
तं पहु पच्छऍ मज्जिज्जन्तहुँ । दिन्ति णाइँ वेवन्त-रुवन्तहुँ ॥३॥
पुणु वि पईवइँ कुङ्कुइँ सरवरें । णं पाविट्ठइँ णरयब्भन्तरें ॥४॥
पुणु णीसरियइँ सरहों रउद्दहों । णं भवियइँ संसार-समुद्दहों ॥५॥
जलु कायण्णु णाइँ मेल्लन्तइँ । णं तिवलीउ तरङ्गहुँ देन्तइँ ॥६॥
वड्डिम सरहों मराकहुँ थिर-गइ । चक्कवाक-जुवलहुँ थण-सङ्गइ ॥७॥

[१७] यह सुनकर रामने अपना माथा ठोककर कहा, "जिस विभीषणने लक्ष्मणके समान सेवा की, क्या वह अब बदल जायगा ! वह अत्यन्त विनयशील और स्नेही है, और यह क्षत्रियोंका मार्ग नहीं है, जिसका जिससे वैर होता है, उसके अवसानके साथ भी, उसका अन्त नहीं होता। अथवा वे क्रुद्ध होकर भी कर क्या लेंगे। हतमान वे स्वयं सन्देहसे क्षुब्ध हो रहे हैं, वे उखड़े हुए दन्तोंवाले मत्तगजके समान हैं, विषदन्तविहीन विषधरकी भाँति हैं, प्रहरणशील नखोंसे हीन सिंहके समान हैं, उन्नतिसे अवरुद्ध पर्वत समूहकी तरह हैं। इस प्रकार रामका आदेश सुनकर सभी अनुचर दौड़ पड़े, वे उठे हुए हथियारोंके समूहसे अत्यन्त भयंकर थे। बाकी राजा लोग भी जो दुर्मन-दीन और गलितमान थे, राम और लक्ष्मण-के पास आये। सबने अन्तःपुरके साथ महासरमें स्नान किया। लोकाचारसे दशाननराजको रामने जब पानी दिया तो ऐसा लगा जैसे अञ्जलिपुटसे वे शरीरका सौन्दर्य ही डाल रहे हों ! ॥१-१०॥

[१८] इसके अनन्तर धरतीपर पड़ी हुई मूर्च्छित रावणकी प्रियपत्नीके सिरपर पुनर्जीवनके लिए पानीका छिड़काव किया गया। अथवा धरतीने जो भी अशेष सुख उसके लिए दिया था वह सब अब उच्छिन्न हो गया, और अब वे रोती-बिसूरती और काँपती हुई उसे प्रभुको दे रही हैं। फिर वे दुबारा पानीमें घुसीं, मानो पापात्माओंने नरकमें प्रवेश किया हो। फिर वे उस भयंकर सरोवरसे इस प्रकार निकलीं, मानो संसार-समुद्रसे भव्यजन ही निकल आये हों, मानो जल सौन्दर्यका त्याग कर रहा हो, या मानो लहरोंको त्रिबलिका दान किया जा रहा हो। उन्होंने सरोवरके हंसोंको बड़ी स्थिर

मुह-अणुराय रत्त-अरविन्दहुँ । महु आलावउ महुयर-विन्दहुँ ॥८॥
बल-सोह सयवत्त-सहासहुँ । णयण-च्छवि कुवलयहुँ असेसहुँ ॥९॥

घत्ता

णीर तरेप्पिणु जुवइ-सहासहुँ साइउ दिन्ति ।
पीऍवि पोएँवि कलुणु महा-रसु णाइँ लइन्ति ॥१०॥

[१९]

ताव विहीसण-णामें किय-सुरहों वि पणामें ।
लायण्णम्भ-महासरि धीरिय कइ-सुरेसरि ॥१॥
'बाल मराल-लील-गइ-गामिणि । अज्ज वि रज्जु तुहारउ सामिणि ॥२॥
सोहइ तं जें तुहारउ पेसणु । छत्तइँ ताइँ तं जि सीहासणु ॥३॥
चमरइँ ताइँ ताइँ धय-इन्धइँ । रयण-णिहाणइँ वसुह-ति-खण्डइँ ॥४॥
ते जि तुरङ्ग ते जि गय सन्दण । ते जि तुहारा सयल वि णन्दण ॥५॥
ते जि असेस भिच्च हियइच्छा । ते जि णराहिव आण-वडिच्छा ॥६॥
सा तुहुँ सा जें लङ्क परमेसरि । इन्दइ भुअउ सयल वसुन्धरि' ॥७॥
तं णिसुणेवि पवोल्लिउ रावणि । विज्जाहर-कुमार-चूडामणि ॥८॥
'लच्छि कुमारि व चञ्चल-चित्ती । किह भुञ्जमि जा ताएं भुत्ती ॥९॥

घत्ता

पहु मइँ कहाएँ सव्व-सङ्ग-परिचाउ करेव्वउ ।
सहुँ परिवारेण पाणि-पत्तें आहारु लएव्वउ' ॥१०॥

[२०]

तं णिसुणेंवि णीसासेंण पुलउ वहन्तें रामेंण ।
साहुक्कारिउ रावणि 'होहि भव्व-चूडामणि' ॥१॥
एम भणेंवि अपकच्छि-णिवासहों । सव्वइँ णियइँ णियय-आवासहों ॥२॥
परिहाविवइँ दुकूलइँ वत्थइँ । आयरणइँ व कइ-सहत्थइँ ॥३॥

गति दे दी, चक्रवाक जोड़ोंको स्तन संगति दे दी, लाल कमलों-को मुखका अनुराग दे दिया, और मधुकरवृन्दको मुखका आलाप दे दिया, सहस्रों कमलोंको कमल शोभा प्रदान कर दी, और कुवलयोंको नयनोंकी शोभा दे दी। हजारों युवतियाँ पानीसे निकल कर आलिंगन दे रही थीं, मानो पीड़ित होकर करुण महारसको ग्रहण कर रही थीं ॥११-१८॥

[१९] तब विभीषणने दूरसे ही प्रणाम किया, और सौन्दर्यकी महासरिता लंका परमेश्वरीको धीरज बँधाया। उसने कहा, "हे बालहंसके समान सुन्दर गमनवाली, आज भी तुम्हीं राज्यकी स्वामिनी हो, आज भी तुम्हारी आज्ञा शोभित है, वही छत्र है, और वही सिंहासन है। वही चामर हैं, और वही ध्वजदण्ड है, वही रत्नोंके कोष और तीनों खण्ड धरती। वही अश्व, वही गज और वही रथ। और वे ही तुम्हारे सब पुत्र हैं। वही सब अशेष मनचाहे अनुचर हैं, आज्ञापालक वे ही नृप हैं, वही तुम लंकाकी स्वामिनी हो, प्रसन्न होओ, और वसुन्धराका उपभोग करो" यह सुनकर रावणकी पत्नी मन्दोदरीने जो विद्याधर कुमारियोंमें श्रेष्ठ थी बोली—"यह लक्ष्मी एक चंचल कुमारी है! क्या भोगूँ जिसे स्वामी भोग चुके हैं। हे स्वामी, कल मैं सब परिग्रहका परित्याग कर दूँगी। अपने परिवारके साथ 'पाणिपात्र' आहार ग्रहण करूँगी" ॥१-१०॥

[२०] यह सुनकर असाधारण रामको रोमांच हो आया। उन्होंने साधुवाद देते हुए कहा, "तुम संसारमें सर्वश्रेष्ठ बनो"! यह कहकर जय-लक्ष्मीके निकेतन, सब लोग अपने-अपने आवासोंको चल दिये। उन्होंने अपने दुकूल—वस्त्र ऐसे पहन लिये जैसे वैयाकरण व्याकरणको धारण कर लेते हैं। दशानन

परिहाविय‍उ दसाणण-पत्तिउ ।   सहु केउरेँहिँ विमुक्कउ पोत्तिउ ॥४॥
णेउर-णियडु समउ कय-मग्गेँ ।   रसणा-दामइँ सहुँ सोहग्गेँ ॥५॥
अङ्गुत्थलियउ वन्तणि-सोहेँहिँ(?)। चूडा-वन्ध समउ घर-मोहेँहिँ ॥६॥
सहुँ केऊराकिङ्कण-भावेँहिँ ।   कण्ठा कण्ठ-ग्गहण-सहावेँहिँ ॥७॥
मणि-कुण्डलइँ समउ तणु-तेएँहिँ । वर-कण्णावयंस सहुँ गेएँहिँ ॥८॥
छुहिय छिग(?) तिलय सहुँ माणेँहिँ । चूडामणिय पिय-पणय-पणामेँहिँ॥९॥

घत्ता

एव विमुक्कइँ विसय-सुहेहिँ समउ मणि-रयणइँ ।
णवर ण मुक्कइँ दिढइँ स इं भु एण गुरु-वयणइँ ॥१०॥

शुल्लकंडं समाप्तम्

●

पत्नीने सब कुछ छोड़ दिया। उसने केयूरोंके साथ पोत भी छोड़ दी, अपने मनकी तरंगमें उसने नूपूर छोड़ दिये और सौभाग्यके साथ करधनीको भी त्याग दिया, अँगुलियोंकी शोभाके साथ अँगूठी छोड़ दी, घरके मोहके साथ चूड़ापाश छोड़ दिया। उसने आलिंगनके भावके साथ केयूर और कण्ठग्रहणके भावके साथ कण्ठा भी छोड़ दिया। शरीरकी कान्तिके साथ मणिकुण्डल और गीत (?) के साथ उत्कृष्ट कर्णावतंस छोड़ दिये। मान के साथ ललित हृदय (?) तिलक तथा प्रियके प्रणय प्रणाम के साथ चूणामणिको छोड़ दिया। इस प्रकार विषय सुखके साथ मणि-रत्नादि छोड़ दिये, किन्तु गुरु के वचनोंमें दृढ़ता नहीं छोड़ी॥१-१०॥

●

पउमचरिउ उत्तरकाण्डम्

[७८. अट्ठसत्तरिमो संधि]

रावणेंण मरन्तें दिण्णु सुहु सुरहुँ दुक्खु बन्धव-जणहों ।
रामहों कलत्तु कल्लाणहों जउ अविचलु रज्जु विहीसणहों ॥

[१]

अससेसीहूअएँ दहवयणें । पडिवण्णएँ दिणमणि अत्थवणें ॥१॥
उप्पण्ण-सएहिँ महा-रिसिहिँ । तव-सूरहुँ णासिय-मय-णिसिहिँ ॥२॥
णामेण साहु अपमेयबलु । थिउ णन्दण-वणें मेरु व अचलु ॥३॥
उप्पण्णु णाणु तहों मुणिवरहों । एत्तहें वि परम-तित्थङ्करहों ॥४॥
धण-कणय-रयण-कामिणि-पउरें । अइसुन्दरें सुन्दररयण-पुरें ॥५॥
जे वन्दणहत्तिएँ तेत्थु गय ते इह वि पराइय अमर-सय ॥६॥
एत्तहें रहु-तणउ स-साहणु वि । एत्तहें इन्दइ घणवाहणु वि ॥७॥
सयलेहिँ वि वन्दणहत्ति किय । रयणीयर पुणु वोल्लन्त थिय ॥८॥

घत्ता

'तुम्हागमु उग्गमु केवलहों अण्णु एउ देवागमणु ।
गय-दिवसेँ भडारा होन्तु जइ तो मरन्तु किं दहवयणु' ॥९॥

पाँचवाँ उत्तर काण्ड

अठहत्तरवीं सन्धि

(रावणकी मृत्युकी भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ हुईं) उसने मरकर, देवताओंको सुख, भाइयोंको दुःख, रामको उनकी पत्नी, लक्ष्मणको जय और विभीषणको अविचल राज्य दिया।

[१] दशानन यशशेष रह गया और सूरज भी डूब गया। तब तपसूर भवनिशाको समाप्त करनेवाले छप्पन सौ महामुनियोंके साथ, अप्रमेयबल नामक महामुनि, जो सुमेरु पर्वतके समान अचल थे, नन्दनवनमें आकर ठहर गये। वहाँ उन महामुनिको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और इतनेमें जो देवता परम तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथके केवलज्ञान कल्याणकमें वन्दना भक्तिके लिए धन, सुवर्ण, रत्न और स्त्रियोंसे भरपूर, अत्यन्त सुन्दर रत्नपुरनगर गये थे, वे भी सैकड़ोंकी संख्यामें यहाँ पहुँचे। एक ओर राम अपने साधनोंके साथ आया, और दूसरी ओर इन्द्रजीत और मेघवाहन भी आये। सभी लोगोंने वन्दनाभक्ति की, और तब उन लोगोंमें बातचीत होने लगी। उन्होंने पूछा, 'हे देव, आपका इस प्रकार यहाँ आना, केवलज्ञानकी उत्पत्ति होना, देवताओंका यह आगमन, (ये तीनों चीजें) यदि कल हो सका होता—तो क्या रावण मरता? ॥१-२॥

[२]

परमेसरु केवल-णाण-णिहि । णिसियरहँ वियक्खइ धम्म-विहि ॥१॥
'विसमहों दीहरहों अणिट्ठियहों । तिहुयण-वम्मीय-परिट्ठियहों ॥२॥
को काल-भुयङ्गहों उव्वरइ । जो अगु जँ सव्वु उवसङ्करइ ॥३॥
तहों जहिँ जहिँ कहि मि दिट्ठि रमइ । तहिँ तहिँ णं मइयवट्ट ममइ ॥४॥
कें वि गिलइ गिलेँवि कें वि उग्गिलइ काहि(?) मि जम्मावसाणेँ मिलइ ॥५॥
कें वि णरय-विलेँहिँ पइसेँवि गसइ । काहि(?) वि अणुलग्गउ जॅ वसइ॥६॥
कें वि कड्ढइ सग्गहों वरि चडेँवि । कें वि खयहों णेइ उप्परेँ पडेँवि॥७॥
कें वि घारइ घोरएँ पाव-विसेँण । कें वि भक्खइ णाणाविह-मिसेँण ॥८॥

घत्ता

तहों को वि ण चुक्कइ भुक्खियहों काल-भुअङ्गहों दूसहहों ।
जिण-वयण-रसायणु लहु पियहों जॅ अजरामरु पउ लहहों ॥९॥

[३]

जइ काल-भुअङ्गु ण उवडसइ । तो किं सुरवइ सग्गहों खसइ ॥१॥
कहिँ रावणु सुरवर-डमर-करु । दस-कन्धरु दस-मुहु वीस-करु ॥२॥
बहुरूविणि जसु पेसणु करइ । जसु णामें तिहुयणु थरहरइ ॥३॥
जसु चन्दु ण णहयलेँ तवइ रवि । जसु-तलवरु वरथइँ धुवइ हवि ॥४॥
जसु पङ्गणु वोहारइ पवणु । कोसाणुपालु जसु वइसवणु ॥५॥
घण छडउ देन्ति सरसइ थुणइ । जसु वणसइ पुप्फवणु कुणइ ॥६॥
सा सम्पय गय कहिँ रावणहों । कहिँ रावणु कहिँ सुहु परियणहों ॥७॥

घत्ता

अम्ह वि तुम्ह वि अवरह मि सव्वइँ एक्कहिँ मिलियाइँ ।
पेक्खेसहुँ काल-भुअङ्गमेँण अज्ज व कल्ल व गिलियाइँ ॥८॥

[२] तब केवलज्ञान निधि परमेश्वर निशाचरोंको धर्म-विधि बताते हुए कहते हैं : इस त्रिभुवनरूपी वनमें महाकाल-रूपी महानाग रहता है, विषम, विशाल और अनिष्टकारी; उससे कौन बच सकता है? वह संसार में सबका उपसंहार करता है, उसकी जहाँ कहीं भी दृष्टि जाती, वहाँ-वहाँ मानो विनाश नाच उठता। किन्हींको वह निगल जाता, और निगल कर उगल देता, किसीसे उसकी भेंट जीवनके अन्तिम समय होती, किन्हींको वह नरक बिलमें घुसकर डसता; किसीके पीछे-पीछे घूमता, किसीको स्वर्गमें चढ़कर वहाँ से निकालकर ले आता; किसीके ऊपर पड़कर उसे नष्ट कर देता; किसीको वह पापरूपी विष देकर मार डालता; और किन्हींको तरह-तरहसे समाप्त कर देता! उस भूखे और असह्य कालरूपी महानागसे कोई नहीं बचता। इसलिए जिन-वचनरूपी रसायनको शीघ्र पी लो जिससे अजर अमर पद पा सको!" ॥१-२॥

[३] यदि कालरूपी महानाग नहीं डसता तो इन्द्र स्वर्गसे क्यों च्युत होता? वह इन्द्रका त्रासद रावण कहाँ है? जिसके दस कन्धे, दस मुख और बीस हाथ थे, बहुरूपिणी विद्या जिस-की सेवा करती थी, जिसके नामसे सारा संसार काँपता, जिसके कारण चन्द्रमा और सूर्य आकाशमें नहीं चमकते, यम जिसकी रक्षा करता, आग वस्त्र धोती, हवा जिसके आँगनमें बुहारी देती, कुबेर जिसके कोशकी रक्षा करता था, मेघ छिड़काव करते, सरस्वती मान करती और जिसकी वनस्पतियाँ पुष्पोंसे अर्चा करतीं; रावणकी वह सम्पदा कहाँ गयी? कहाँ रावण? कहाँ परिजनोंका सुख। हम, तुम और दूसरे भी, सब एकमें मिल जायँगे, देखते-देखते, कालरूपी महानाग, आज-कलमें निगल जायगा ॥१-८॥

[४]

सो काल-भुअङ्गमु दुव्विसहों । अण्णु वि विसमउ परिवारु तहों ॥१॥
अच्छइ परिवेढिउ सप्पिणिहिँ । बिहिँ ओसप्पिणि-अवसप्पिणिहिँ ॥२॥
एक्केक्कहें तिण्णि तिण्णि समय । सु-दु-पढम-समुत्तर-णाम णय ॥३॥
ताहँ वि उप्पण्णा सट्ठि तणय । संवच्छर-णाम पसिद्धि गय ॥४॥
एक्केक्कहों विण्णि कलत्ताइँ । अयणाइँ णामेण पहुत्ताइँ ॥५॥
एक्केक्कहों तहिँ छ-प्पङ्गुरुह । फग्गुण-अवसाण चेत्त-पमुह ॥६॥
एक्केक्कहों तहों वि धवल-कसण । उप्पण्ण पुत्त दुइ दुइ जें जण ॥७॥
एक्केक्कहों तहिँ वि पाण-पियउ । पण्णारह पण्णारह तियउ ॥८॥

घत्ता

एँहु परियणु काल-भुअङ्गमहों अवरु गणेंवि कें सक्कियउ ।
सो तेहउ तिहुअणें को वि ण वि जो ण वि आएं डक्कियउ ॥९॥

[५]

तं णिसुणेंवि कलण-रसक्कमइय । इन्दइ-घणवाहण पव्वइय ॥१॥
मय-कुम्मयण्ण-मारिचि तिह । अवर वि णरिन्द अमरिन्द-णिह ॥२॥
सहसत्ति आय सीकाहरण । आयास-वास कर-पावरण ॥३॥

[४] ऐसा है वह कालरूपी महानाग। उसका परिवार, उससे भी अधिक असह्य और विषम है ? वह उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी इन दो नागिनोंसे घिरा है। एक-एक नागिनके तीन तीन समय हैं जिनके पहले दुः और सु उपसर्ग लगते हैं, (दुःषमा-सुषमा) अर्थात् सुषमा, सुषमा-सुषमा, सुषमा-दुःषमा, दुःषमा-सुषमा, दुःषमा, दुःषमा-दुःषमा। उसके भी साठ पुत्र हैं जो संवत्सरके नामसे प्रसिद्ध हैं, फिर उनकी दो-दो पत्नियाँ हैं, जो उत्तरायण और दक्षिणायनके नामसे प्रसिद्ध हैं। चैत्रसे लेकर फागुन तक उसके छह विभाग हैं, उसके भी—कृष्ण और शुक्ल नामके दो पुत्र हैं,[१] उनकी भी पन्द्रह-पन्द्रह प्राणप्रिया पत्नियाँ हैं। उस महाकालरूपी नागका यह महापरिवार है, उसके दूसरे सदस्योंको कौन गिन सकता है ? तीनों लोकोंमें एक भी आदमी ऐसा नहीं जिसको इसने न डँसा हो॥१-९॥

[५] यह सुनकर इन्द्रजीत और मेघवाहन, दोनों अचानक करुणासे उद्वेलित हो उठे। उन्होंने संन्यास ले लिया। मय, कुम्भकर्ण, मारीच और दूसरे नरेन्द्र तथा अमरेन्द्र भी इसी प्रकार संन्यस्त हो गये। शील ही उनका अब एक-मात्र आभरण था। आकाश ही वास था, और हाथ ही

---

१. साठ संवत्सर रूपी पुत्र हैं : प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृति, खर, नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्बी, विकारी, सर्वकारी, प्लवंग, सुभिक्ष, शोभन, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्रलंब, कीलक, सौम्य, साधारण, विरोध, परिधावी, प्रमादी, आनन्द, राक्षस, नल, पिंगल, काल, सिद्धार्थ, रौद्र, दुर्मति, दुन्दुभि, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्ष, क्रोधन और क्षय।

मन्दोयरि वय-गुण-वन्तियहँ । कन्तियहेँ पासेँ ससिकन्तियहेँ ॥४॥
णिक्खन्त समउ अन्तेउरेँण । साहरणोसारिय-णेउरेँण ॥५॥
पव्वइउ को वि पव्वइउ ण वि । णहेँ णाइँ णिहालउ आउ रवि ॥६॥
रवि उइउ विहीसणु गयउ तहिं । नन्दण-वणेँ जणयहोँ तणय जहिं ॥७॥
आहरणइँ वत्थइँ ढोइयइँ । वइदेहिएँ ताइँ ण जोइयइँ ॥८॥

घत्ता

'भलु केवलु आयइँ सव्वइ मि जइ मणेँ मलिणु मणम्मणउ ।
णिय-पइहेँ मिलन्तिहेँ कुल-वहुहेँ सीलु जि होइ पसाहणउ ॥९॥

[६]

जइ जामि आसि परिचत्त-भय । तो सहुँ हणुवन्तें किण्ण गय ॥१॥
किणु णिय-भत्तारें जन्तियहेँ । कुलहरु जेँ पिसुणु कुलउत्तियहेँ ॥२॥
पुरिसहुँ चित्तइँ आसीविसइँ । अलहन्त वि उड्डिसन्ति मिसइँ ॥३॥
वीसासु जन्ति णउ इयरहु मि । सुय-देवर-मायर-पियरहु मि ॥४॥
तं वयणु सुणेवि महासइहेँ । गउ पासु विहीसणु रहुवइहेँ ॥५॥
'अहोँ अहोँ परमेसर दासरहि । पच्छएँ लङ्काउरिं पइसरहि ॥६॥
मिलि ताव भडारा जाणइहेँ तरु दुत्तर-विरह-महाणइहेँ ॥७॥
वहु तिजगविहूसण-कुम्भयलेँ मय-परिमल-मेलाविय-भसलेँ' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेंवि हलहरु चक्कहरु सीयहेँ पासेँ समुच्चलिय ।
अहिसेय-समएँ सिरि-देवयहेँ दिग्गय विण्णि णाइँ मिलिय ॥९॥

आवरण था। व्रतों और गुणोंसे युक्त कान्ति और शशि-कान्तिके पास जाकर, आभरण और नूपुरोंसे रहित अन्तःपुरके साथ, मन्दोदरीने भी दीक्षा ले ली। इतनेमें आकाशमें सूर्य निकल आया, मानो यह देखने के लिए कि किसने दीक्षा ली है, और किसने नहीं ली। सूर्योदय होनेपर, विभीषण वहाँ गया, जहाँ नन्दन वनमें जनककी पुत्री सीता देवी बैठी थीं। वह जिन वस्त्रों और आभरणोंको वहाँ ले गया था सीता देवीने उनकी ओर देखा तक नहीं। उसने कहा, "यह सब मेरे लिए कचरेका ढेर है चाहे, मनमें उन्मादक काम ही क्यों न हो, अपने पतिसे मिलते समय कुलवधूका एकमात्र प्रसाधन शील ही होता है" ॥ १-२ ॥

[६] तब विभीषणने पूछा, "यदि आप निर्भय हैं, तो मैं जाता हूँ। आप हनुमान्‌के साथ, क्यों नहीं गयीं ?" इसपर सीतादेवीने कहा—"बिना पतिके जानेवाली कुलपत्नीपर कुल-धर भी कलंक लगा देते हैं, पुरुषोंके चित्त जहरसे भरे होते हैं, नहीं होते हुए भी वे कलंक दिखाने लगते हैं, दूसरोंका तो वे विश्वास ही नहीं करते, यहाँ तक कि पुत्र, देवर, भाई और पिता-का भी।" महासतीके उन वचनोंको सुनकर, विभीषण रघुपति रामके पास गया; और बोला, "परमेश्वर राम, लंकामें आप बादमें प्रवेश करिए। हे आदरणीय, पहले सीतादेवीसे मिलिए, और विरह नदीसे उसका उद्धार कीजिए। यह है त्रिजगभूषण महागज; इसके मदभरे कुम्भस्थलपर भौंरे गूँज रहे हैं, इसपर चढ़िए।" यह सुनकर राम और लक्ष्मण सीतादेवीके पास गये, मानो लक्ष्मीके अभिषेकके समय दो महागज आ मिले हों ॥ १-२ ॥

[७]

वइदेहि दिट्ठ हरि-हलहरेंहिं णं चन्दलेह विहिँ जलहरेंहिँ ॥१॥
णं सरय-लच्छि पङ्कय-सरेंहिं । णं पुण्णिम विहिँ पक्खन्तरेंहिँ ॥२॥
णं सुर-सरि हिमगिरि-सायरेंहिं । णं णह-सिरि चन्द-दिवायरेंहिं ॥३॥
परिपुण्ण मणोरह जाणइहेँ । तरइ व लायण्ण-महाणइहेँ ॥४॥
पिय-णयण-सरासणि सन्धइ व । पिउ पगुण-गुणेहिँ णिबन्धइ व ॥५॥
अस-कद्दमें णं जगु लिम्पइ व । हरिसंसु-पवाहें सिम्पइ व ॥६॥
विञोइ व करयल-पल्लवें हिं । अञ्चेइ व णह-कुसमें हिँ णवें हिं ॥७॥
पइसरइ व हियएँ हलाउहहों । करइ व उज्जोउ दिसामुहहों ॥८॥

घत्ता

मेहलिएँ मिलन्तहों रहुवइहेँ सुहु उप्पण्णउ जेत्तडउ ।
इन्दहों इन्दत्तणु पत्तहों होज ण होज व तेत्तडउ ॥९॥

[८]

स-कलत्तउ लक्खणु पणय-सिरु । पभणइ अलहर-गम्भीर-गिरु ॥१॥
'जं किउ खर-दूसण-तिसिर-वहु । जं हंसदीवें थिउ हंसरहु ॥२॥
जं ससि पडिच्छिय समर-मुहें । जं लग्ग विसल्ल करम्बुरुहें ॥३॥
जं रणें उप्पण्णु चक्क-रयणु । जं णिहउ बलुद्धरु दहवयणु ॥४॥
तं देवि पसाएँ तउ तणेंण । कुलु धवलिउ आएँ सइत्तणेंण' ॥५॥
अहिवायणु किउ लक्खणेंण जिह । सुग्गीव-पमुह-णरवरहिँ तिह ॥६॥
सयल वि णिय-णिय वाहणें हिं थिय । पर-पुर-पवेस-सामग्गि किय ॥७॥
जय-मङ्गल-तूरइँ ताडियइँ । रिउ-वरिणिहिँ चित्तइँ पाडियइँ ॥८॥

घत्ता

पइसन्तहुँ बल-णारायणहुँ णयरु मणोहरु आवडिउ ।
णं सुरहुँ चरन्त-चरन्ताहुँ तुट्टेंवि सग्ग-खण्डु पडिउ ॥९॥

[७] राम और लक्ष्मणने सीतादेवीको इस प्रकार देखा मानो दो महामेघ चन्द्रलेखाको देख रहे हों, मानो कमलसरोवर शरद्लक्ष्मीको देख रहे हों, मानो दोनों पक्ष (शुक्ल और कृष्ण) पूर्णिमाको देख रहे हों, मानो हिमगिरि और समुद्र गंगाको देख रहे हों, मानो सूर्य और चन्द्रमा आकाशकी शोभाको देख रहे हों। उन्हें देखते ही सीतादेवीकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो गयीं। वह ऐसी लगी जैसे सौन्दर्यकी महानदी तिरती-सी, अपने नेत्रधनुषका सन्धान करती-सी, अपने महागुणोंसे प्रियको बाँधती-सी, यशकी कीचड़से जगको लीपती-सी, हर्षकी अश्रुधारासे सींचती-सी, करतल-पल्लवोंसे हवा करती-सी, नये-नये नभकुसुमोंसे अर्चा करती-सी, रामके हृदयमें प्रवेश करती-सी, दिशाओंके मुखोंको आलोकित करती-सी। सीतादेवीसे मिलनेमें रामको जितना सुख हुआ, उतना इन्द्रको भी इन्द्रपद पाकर भी शायद होगा या नहीं होगा॥ १–९॥

[८] सपत्नीक और प्रणतसिर लक्ष्मण मेघके समान गम्भीर स्वरमें बोले, "जो मैंने खर, दूषण और त्रिसिरका वध किया; हंसद्वीपमें हंसरथको जीता; युद्धभूमिमें शक्तिसे आहत हुआ, विशल्यादेवी हाथ लगी; युद्धमें चक्ररत्नकी उपलब्धि हुई और युद्धमें अपनी शक्ति से रावणका संहार किया, वह सब, हे देवी! आपके प्रसादसे ही; आपने अपने शीलसे सचमुच कुल पवित्र किया है।" लक्ष्मणकी ही भाँति सुग्रीव आदि प्रमुख नरश्रेष्ठों ने भी उस महादेवीका अभिवादन किया। सब लोग अपने-अपने वाहनों पर आकर बैठ गये और महानगरमें प्रवेश करनेकी सामग्री जुटाने लगे। विजयके नगाड़े बज उठे; शत्रु-स्त्रियोंके दिल बैठने लगे। राम और लक्ष्मणके प्रवेश करते ही समूचा नगर सुन्दरतासे खिल उठा, मानो देव-

[९]

पइसन्तें बल-णारायणेंण । पव चाकिय णायरियाणणेंण ॥१॥
'एँहु सुन्दरि सोक्खुप्पायणहों । अहिरामु रामु रामा-यणहों ॥२॥
एँहु लक्खणु लक्खण-कक्ख-धरु । जूरावण-रावण-पलय-करु ॥३॥
एँहु भामण्डलु मा-भूल-भुउ । वइदेहि-सहोयरु जणय-सुउ ॥४॥
एँहु किक्किन्धाहिउ दुद्दरिसु । ताराबइ ताराबइ-सरिसु ॥५॥
एँहु अङ्गउ जेण मणोहरिहें । केसग्गहु किउ मन्दोयरिहें ॥६॥
एँहु सुरवइ-करि-कर-पवर-भुउ । णन्दण-वण-मद्दणु पवण-सुउ ॥७॥
एँहु कुमुउ विराहिउ णीलु णलु । एँहु गवउ गवक्खु सङ्खु पवलु ॥८॥

घत्ता

तहिँ कालें कहु पइसन्ताहों परम रिद्धि जा हलहरहों ।
सो अमराउरि भुञ्जन्ताहों होज्ज ण होज्ज पुरन्दरहों ॥९॥

[१०]

पइसरइ रामु रावण-भवणु । दक्खवइ जिणाणइँ सयलु जणु ॥१॥
'इह मेह-उलेंहिँ दिज्जइ छडउ । इह सक्कु पसाहइ गय-घडउ ॥२॥
किय अवण एत्थु वणस्सइएँ । इह गाय(?)उ गेउ सरस्सइएँ ॥३॥
इह णिक्कउ करइ आसि पवणु । इह भण्डागारिउ वइसवणु ॥४॥
इह वत्थइँ सिहिण पडिच्छियइँ । सुर-बन्दि-सयइँ इह अच्छियइँ ॥५॥
अणवसरु पियामह-हरि-हरहों । अत्थाणु एत्थु दसकन्धरहों ॥६॥
आयरणु एत्थु जम-तलवरहों । इह मेकउ णाग-णरामरहों ॥७॥
इह णव-गह दमिय दसाणणेंण । इह अच्छिउ सइँ वणियाणणेंण' ॥८॥

ताओंको पकड़ते-पकड़ते स्वर्गका एक खण्ड टूटकर गिर पड़ा हो ॥ १–२ ॥

[९] राम-लक्ष्मणके प्रवेश करते ही लंकाके नागरिकोंमें बातचीत होने लगी। वे कह रहे थे, 'ये सुन्दर राम हैं—जो सुख उत्पन्न करनेवाली स्त्रियोंसे भी अधिक सुन्दर हैं, ये लाखों लक्षण धारण करनेवाले लक्ष्मण हैं, सतानेवाले रावणके लिए प्रलय; कान्तिसे शोभित बाहुवाला यह भामण्डल है, जनकका पुत्र और वैदेहीका सहोदर! यह है दुद्धर्ष किष्किधाराज; ताराका पति और चन्द्रमाके समान। यह है अंगद, सुन्दर मन्दोदरीका केशग्राही। यह है पवनसुत हनुमान्, ऐरावतकी सूँड़की तरह विशाल बाहु और नन्दनवनको धूलमें मिलानेवाला। यह हैं कुमुद, विराधित, नल, नील, गवय, गवाक्ष, शंख और प्रबल। लंका प्रवेश के समय रामको जो ऋद्धि मिली, वह सम्भवतः अमरावतीका उपभोग करनेवाले इन्द्रको भी उपलब्ध नहीं थी ॥ १–९ ॥

[१०] उसके बाद रामने रावणके भवनमें प्रवेश किया। सबको सुन्दर-सुन्दर स्थान दिखाये गये। यहाँ मेघ छिड़काव करते थे, यहाँ इन्द्र गजघटाओंको सजाता था, यहाँ वनस्पतियाँ अर्चा करती थीं, यहाँ सरस्वती गान करती थी, यहाँ पवन बुहारी देता था, यहाँ कुबेर भण्डारी था, यहाँ आग कपड़े धोती थी, यहाँ सैकड़ों देवताओंके समूह बन्दी थे। यहाँ ब्रह्मा, विष्णु और शिवका अप्रवेश था। यह रावणका राजभवन है। यह यमरूपी रक्षकका स्थान है और यहाँ पर नाग, नर और देवताओंका मिलाप था। यहाँ पर रावणने नवग्रहोंको दबा रखा था, और यहाँ पर वह अपने वनिताजनके साथ रहता था। रावणके

घत्ता

पेक्खन्तु णिवाणइँ रावणहों कहि मि ण रहुवइ रइ करइ ।
स-कलत्तु स-भाइ स-भिच्चयणु सन्ति-जिणालउ पइसरइ ॥९॥

[११]

थुओ सन्ति-णाहो । कयक्खावराहो ॥१॥
हयाणङ्ग-सङ्गो । पभा-भूसियङ्गो ॥२॥
दया-मूल-धम्मो । पणट्ठट्ठ-कम्मो ॥३॥
तिलोयग्ग-गामी । सुणासीर-सामी ॥४॥
महा-देव-देवो । पहाणूढ-सेवो ॥५॥
जरा-रोग-णासो । असामण्ण-भासो ॥६॥
समुप्पण्ण-णाणो । कयङ्गि-प्पमाणो ॥७॥
ति-सेयायवत्तो । महा-रिद्धि-पत्तो ॥८॥
अणन्तो महन्तो । अ-कन्तो अ-चिन्तो ॥९॥
अ-डाहो अवाहो । अ-कोहो अ-मोहो ॥१०॥
अ-कोहो अरोहो । अ-जोहो अ-मोहो ॥११॥
अ-दुक्खो अ-भुक्खो । अ-माणो समाणो ॥१२॥
अ-जाणो सजाणो । अ-णाहो वि णाहो ॥१३॥

घत्ता

थुइ एम करेंवि किर वीसमइ ताव पडिच्छिय-पेसणेंण ।
स-कलत्तु स-लक्खणु स-बलु बलु णिउ णिय-णिलउ विहीसणेंण॥१४॥

[१२]

सु-वियड्ढ वियड्ढाएवि लहु । वर-जुवइहुँ दसहिँ सएहिँ सहुँ ॥१॥
दहि-दोव-जलक्खय-गहिय-कर । गय तहिँ जहिँ हलहर-चक्कहर ॥२॥
आसीसहिँ सेसहिँ पणवणेंहिँ । जय-णन्द-वद्ध-वद्धावणेंहिँ ॥३॥

सुन्दर-सुन्दर स्थानोंको देखकर भी रामका मन कहीं भी नहीं लगा। वह अपनी पत्नी, भाई और अनुचरोंके साथ शान्ति-जिनमन्दिरमें गये ॥ १-२ ॥

[११] वहाँपर उन्होंने इन्द्रियोंका दमन करनेवाले, शान्तिनाथ भगवान्‌की स्तुति प्रारम्भ की—"हे स्वामी! आपने कामको समाप्त कर दिया है। आपके अंग कान्तिसे मण्डित हैं। आप दयाको मूलधर्म मानते हैं, आपने आठ कर्मोंका नाश किया है। और आप तीनों लोकोंमें गमन करते हैं, आप इन्द्रके भी स्वामी हैं, आप महादेव हैं—बड़े-बड़े लोग आपकी सेवा करते हैं, आप जरारोगका नाश करनेवाले हैं; आपकी कान्ति असाधारण है। आपको केवलज्ञान उत्पन्न हो चुका है। आपने अप्रमाणता अंगीकार कर ली है, तीन श्वेत आतपत्र आपके ऊपर हैं, आपको महान् ऋद्धियाँ उपलब्ध हैं। आप अनन्त हैं, महान् हैं, आप कान्ताविहीन हैं, चिन्ताओंसे दूर हैं, ईर्ष्या और बाधाओंसे परे हैं, लोभ और मोह आपके पास नहीं फटकते, न आपमें क्रोध है और न क्षोभ। न योद्धापन है और न मोह। न दुःख है, न सुख है, न मान है और न सम्मान, न आप अज्ञानी हैं और न सज्ञानी, न अनाथ हैं और न सनाथ। इस प्रकार शान्तिनाथ भगवान्‌की स्तुति कर रामने विश्राम किया। इसके अनन्तर आज्ञाकारी विभीषण पत्नी, लक्ष्मण और सेनाके साथ उन्हें अपने घर ले गया ॥ १-१४ ॥

[१२] इसी बीच विभीषणकी चतुर पत्नी विदग्धादेवी एक हजार सुन्दरियोंके साथ दही, दूब, जल और अक्षत हाथमें लेकर शीघ्र ही वहाँ पहुँची जहाँ राम और लक्ष्मण थे। अनेक आशीर्वादों, आरतियों, प्रणामों, जय बढ़ो, प्रसन्न होओ

उच्छाहेँहिँ धवलेँहिँ मङ्गलेँहिँ । पडु-पडहेँहिँ सङ्खेँहिँ मन्दलेँहिँ ॥४॥
कइ-कहएँहिँ णड-णट्टावएँहिँ । गायण-वायण-फम्फावएँहिँ ॥५॥
णर-णायर-बम्मण-घोसणेँहिँ । अवरेहि मि चित्त-परिओसणेहि ॥६॥
मन्दिरु पइसरइ विहीसणहोँ । मज्जणउ मरिउ रहु-णन्दणहोँ ॥७॥
पुणु ण्हवणासण-परिहावर्णंहिँ । दसकण्ठ-कोस-दरिसावणेँहिँ ॥८॥

घत्ता

गउ दिवसु सव्वु पाहुण्णएँण लक्खमइ तो वि पमाणु ण वि ।
'सुहु सुअउ सीय सहुँ रहु-सुएँण' एम भणेँवि णं ल्हिक्कु रवि ॥९॥

[१२]

तो भणइ विहीसणु 'दासरहि । अणुहुञ्जि भडारा सयल महि ॥१॥
सीयऽग्ग-महिसि तुहुँ रज्ज-धरु । सोमित्ति मन्ति हउँ आण-करु ॥२॥
रमणीय एह लङ्का-णयरि । एँहु तिजगविहूसणु पवर-करि ॥३॥
एँहु पुप्फ-विमाणु पहाणु घरेँ । एँउ चन्दहासु करवालु करेँ ॥४॥
सिंहासण-छत्तइँ चामरइँ । लइ उवसमन्तु रिउ-डामरइँ' ॥५॥
तं णिसुणेँवि पमणइ दासरहि । 'अणुहुञ्जि विहीसणु तुहुँ जेँ महि ॥६॥
अम्हहुँ घरेँ भरहु जेँ रज्ज-धरु । जसु जणणिहेँ ताएँ दिण्णु वरु ॥७॥
तुम्हहुँ घरेँ तुज्झु जेँ राय-सिय । सइ जासु वियड्ढाएवि तिय ॥८॥

घत्ता

णहेँ सुरवर महियलेँ मेरु-गिरि जाव महा-जलु मयरहरेँ ।
परिभमइ कित्ति जगेँ जाव महु ताव विहीसण रज्जु करेँ' ॥९॥

इत्यादि बधाइयों, उत्साह धवल मंगल आदि गीतों, पटुपटह, शंख, मन्दल आदि वाद्यों, कवि कत्थक नट नृत्यकार आदि नृत्य-विदों, गायक-वादक आदि बन्दीजनों, नरश्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी घोषणाओं, और भी चित्तको सन्तोष देनेवाले साधनोंके साथ रामने विभीषणके घरमें प्रवेश किया। यह सब देखकर रामका मन भर गया। फिर उन्होंने स्नान और आसनके साथ सुन्दर वस्त्र पहने। फिर उन्हें रावणके विशाल कोष दिखाये गये। सारा दिन इस प्रकार आतिथ्यमें ही बीत गया; फिर भी उसकी सीमा नहीं थी; सूर्य भी मानो यह कहकर छिप गया कि राम, तुम सीताके साथ सुखपूर्वक सोओ ॥ १-९ ॥

[१३] तब विभीषणने निवेदन किया, "हे आदरणीय राम, आप इस समस्त धरतीका उपभोग करें, सीता राजमहिषी बने और आप राज्यशासक, लक्ष्मण मंत्री बनें और मैं आज्ञाकारी सेवक। यह सुन्दर लंकानगरी है। यह त्रिजगभूषण महागज है, यह घरमें मुख्य पुष्पकविमान है और हाथमें यह चन्द्रहास तलवार है। ये सिंहासन, छत्र और चामर हैं, इससे शत्रुओंके विस्तारको शान्त कीजिए।" यह सुनकर रामने कहा, "हे विभीषण! इस धरतीका उपभोग तुम्हीं करो। हमारे घरमें भरत राज्य धारण करता है, जिसके लिए पिताने माताके लिए वर दिया था। तुम्हारे घरमें राज्यश्री तुम्हारी अपनी हो, आखिर तुम्हारी विदग्धा जैसी सुन्दर पत्नी भी तो है। आकाशमें देवता, धरतीपर सुमेरु पर्वत, और जबतक समुद्रमें पानी है और जबतक इस धरती पर मेरी कीर्ति कायम रहती है, तबतक हे विभीषण, तुम राज करो ॥ १-९ ॥

[१४]

अहिसेउ बिहीसणेँ आढविउ । भामण्डलु कलसु लएवि थिउ ॥१॥
सुग्गीउ विराहिउ णीलु णलु । दहिमुहु महिन्दु मारुइ पवलु ॥२॥
अट्ठहि मि तेहिँ सुह-दंसणहोँ । पल्हत्थिय कलस बिहीसणहोँ ॥३॥
सइँ बद्धु पट्टु रहु-णन्दणेँण । बहु-दिवसेँहिँ राम-जणद्दणेँण ॥४॥
जाउ वि माणियउ ण माणियउ । ताउ वि तहिँ तुरिउ पराणियउ ॥५॥
णं सुर-वहुअउ सग्गहोँ चुअउ । सीहोयर-वज्जयण्ण-सुअउ ॥६॥
कल्लाणमाल वणमाल तह । जियपोम सोम जिण-पडिम जिह ॥७॥
कइपुङ्गम-दहिमुह-णन्दणिउ । ससिवद्धण-णयणाणन्दणिउ ॥८॥

घत्ता

बहु-विन्दइँ आयइँ अवरइ मि सव्वइँ तहिँ जेँ समागयइँ ।
अच्छन्ताहँ वल-णारायणहँ कहुँ वरिसइँ छह गयइँ ॥९॥

[१५]

तहिँ कालेँ सुकोसल-राणियहेँ । णन्दण-विओय-विद्दाणियहेँ ॥१॥
रत्तिन्दिहु पहु जोअन्तियहेँ । पन्थिय-पउत्ति-पुच्छन्तियहेँ ॥२॥
घर-पङ्गणेँ वायसु कुलकुलइ । णं भणइ 'माएँ रहुवइ मिलइ' ॥३॥
रिसि णारउ ताव पराइयउ । थुउ पुच्छिउ 'केत्तहोँ आइयउ' ॥४॥
तेण वि णिय-वइयरु विमलु कउ । 'परमेसरि पुव्व-विदेहेँ गउ ॥५॥
वन्दन्तहोँ तेत्थु तित्थ-सयइँ । सत्तारह वरिसइँ ववगयइँ ॥६॥
पुणु तेत्थहोँ लङ्का-णयरि गउ । जहिँ लक्खण-चक्केँ वहरि हउ ॥७॥
पडि पुव्व-विदेहु पराइयउ । तेवीसहुँ वरिसहुँ आइयउ ॥८॥

घत्ता

लक्खणु विसल्ल वइदेहि वलु लङ्कहिँ रज्जु करन्ताइँ ।
अच्छन्ति माएँ तुहि लोयणइँ तउ दक्खवमि जियन्ताइँ' ॥९॥

[१४] विभीषणका अभिषेक प्रारम्भ हुआ। भामण्डलने कलश अपने हाथमें ले लिया। सुग्रीव, विराधित, नल, नील, दधिमुख, महेन्द्र, मारुति और प्रबल, इन आठोंने सुमदर्शन विभीषणका कलशाभिषेक किया। रघुनन्दनने अपने हाथों स्वयं उसे राजपट्ट बाँधा। बहुत दिनोंतक राम और लक्ष्मण जिनकी ओर ध्यान नहीं दे सके थे, वे सभी इसी बीच वहाँ आ पहुँचे। सिंहोदर और वज्रकर्णकी लड़कियाँ ऐसी लगीं मानो देवांगनाएँ आकाशसे गिर पड़ी हों, कल्याणमाला, वनमाला, जितपद्मा और सोमा, जो जिनप्रतिमाके समान सुन्दर थीं, कपिश्रेष्ठ और दधिमुखकी लड़की, और शशिवर्धनकी नेत्रोंको आनन्द देनेवाली कन्या भी वहाँ आ गयीं। और भी दूसरे जितने वधूसमूह थे, वे भी वहाँ आ गये। इस प्रकार राम और लक्ष्मणके लंका में रहते-रहते छह वर्ष बीत गये ॥ १–९ ॥

[१५] इस अन्तरालमें सुकोशलकी महारानी कौशल्या पुत्रके वियोगमें क्षीण हो चुकी थी। वह रात-दिन रास्ता देख रही थी। पथिकोंसे उनके बारेमें पूछा करती। कभी घर आँगन में कौआ काँव-काँव कर उठता, मानो वह कहता, "माँ, तुम्हें राम अवश्य मिलेंगे"। इतनेमें महामुनि नारद वहाँ आये। स्तुतिकर कौशल्याने पूछा—"कहिए, कैसे आना हुआ।" तपस्वी नारदने भी उससे स्पष्ट शब्दोंमें कहा, "हे परमेश्वरी, मैं पूर्व विदेह गया था, वहाँ सैकड़ों तीर्थोंकी वन्दना करते हुए हमारे सत्रह बरस बीत गये, वहाँसे फिर मैं लंका नगरी गया। वहाँ लक्ष्मणने चक्रसे शत्रुको समाप्त कर दिया है, फिर मैं पूर्वविदेह पहुँचा और वहाँसे अब तेईस वर्षोंमें आ रहा हूँ। लक्ष्मण विशल्याके साथ और राम वैदेहीके साथ, इस समय लंकामें राज्य कर रहे हैं। वे वहाँ हैं। हे माँ, तुम आँखें पोंछो, मैं तुम्हें

[१६]

गउ कहि महा-रिसि गयण-गमणु । णिय-वेओहामिय-खर-पवणु ॥१॥
परिभमिर-भमर-झङ्कार-वरें । णीलुप्पल-बहु-रय-गन्ध-भरें ॥२॥
तरु-तीर-लयाहरें कुसुमहरें । जहिँ अङ्गउ कीलइ कमल-सरें ॥३॥
तिहुवण-परिभमिर-पियारऍण । तहिँ थाऍवि पुच्छिउ णारऍण ॥४॥
‘किं कुसलु कुमार वियक्खणहों । वइदेहिहें रामहों लक्खणहों’ ॥५॥
तेण वि जिय-सयल-महाहवहों । पइसारिउ मन्दिरु राहवहों ॥६॥
हलहरेंण वि अब्भुत्थाणु किउ । ‘आगमणु काइँ’ पुच्छिउ चविउ ॥७॥
तावसेण वुत्तु ‘तउ माइयहें । आयउ पासहों अपराइयहें ॥८॥
सा तुम्ह विओएं दुम्मणिय । अच्छइ हरिणि व वुण्णाणणिय ॥९॥

घत्ता

सुहु एक्कु वि दिवसु ण जाणियउ पइँ वण-वासु पवण्णऍण ।
अच्छइ कन्दन्ति स-वेयणिय णन्दिणि जिह विणु तण्णऍण’ ॥१०॥

[१७]

उम्माहिउ तं णिसुणेवि बलु । बोल्लइ मउलाविय-मुह-कमलु ॥१॥
‘अहों मह-रिसि सुन्दरु कहिउ पइँ । जइ अज्जु कल्लें णउ दिट्ठ मइँ ॥२॥
तो दंसण-सल्ल-तिसाइयहें । उड्डन्ति पाण अपराइयहें ॥३॥
णिय-जम्मभूमि जणणिएँ सहिय । सग्गों वि होइ अइ-दुल्लहिय ॥४॥
लइ जामि विहीसण णियय-घरु । पइँ मुएँवि अण्णु को सहइ भरु ॥५॥
छव्वरिसइँ एक्क-दिवस-समइँ । ववगयइँ सुरिन्द-सुहोवमइँ ॥६॥
लब्भइ पमाणु सायर-जलहों । लब्भइ पमाणु वाणर-बलहों ॥७॥
लब्भइ पमाणु लक्खण-सरहों । लब्भइ पमाणु दिणयर-करहों ॥८॥

उनको जीवित दिखाऊँगा ॥१-९॥

[१६] अपने मनके अनुसार गमन करनेवाले महामुनि नारद पवनसे भी अधिक तेज गतिसे लंका नगरी गये। वह वहाँ पहुँचे, जहाँपर अंगद कमलोंके सरोवरमें क्रीड़ा कर रहा था, वहाँ सुन्दर किनारोंपर लतागृह और कुसुमगृह थे। त्रिभुवन-की यात्राके प्रेमी नारद मुनिने ठहरकर पूछा, "विचक्षण कुमार लक्ष्मण, सीतादेवी और राम कुशलतासे तो हैं।" तब अंगद उन्हें अनेक महायुद्धोंको जीतनेवाले राघवके आवासपर ले गया। राम उनके अभिवादनमें खड़े हो गये, और उन्होंने पूछा, "कहिए किस लिए आना हुआ"। तब तापस नारद महा-मुनिने कहा, "मैं तुम्हारी माँ अपराजिताके पाससे आया हूँ। वह तुम्हारे वियोगमें एकदम उन्मन है, हरिनीकी तरह वह खिन्न है। जबसे तुम वनवासके लिए गये हो, तबसे उसने एक भी दिन सुख नहीं जाना। वेदनासे व्याकुल वह रोती-विसूरती रहती है ठीक उसीप्रकार, जिसप्रकार बिना बछड़ेकी गाय ॥ १-१० ॥

[१७] राम यह सुनकर सहसा उन्मन हो गये। उदास मुखकमलसे उन्होंने कहा, "हे महामुनि, आपने बिलकुल ठीक कहा। मैंने यदि आज या कलमें, माँके दर्शन नहीं किये, तो निश्चय ही देखनेकी उत्कण्ठासे पीड़ित माँ अपराजिताके प्राण-पखेरू उड़ जायेंगे। अपनी माँ और जन्मभूमि स्वर्गसे भी अधिक प्यारी होती है, हे विभीषण लो, मैं अब अपने घर जाता हूँ, तुम्हें छोड़कर भला अब कौन इस भारको उठायेगा? इन्दुके समान मुखवाले ये छह साल इस प्रकार निकल गये, मानो एक ही दिन बीता हो। समुद्रके जलको थाह सकते हैं, वानर सेनाकी भी ताकत तौली जा सकती है, लक्ष्मणके तीरोंको भी

घत्ता

कम्मइ पमाणु जिण-भासियहुँ वयणहुँ णिब्बुइ-गाराहुँ ।
परिमाणु विहीसण लद्धु ण वि णिरुवम-गुणहँ तुहाराहुँ' ॥९॥

[१८]

तो भणइ विहीसणु पणय-सिरु । थुइ-वयण-सहासुग्गिण्ण-गिरु ॥१॥
'जइ रहुवइ विजय-जत्त करहि । तो सोलह वासर परिहरहि ॥२॥
हउँ जाव करेमि पुणण्णविय । उज्झाउरि सव्व सुवण्णमिय' ॥३॥
बल-लक्खण एव परिट्ठविय । अग्गएँ वद्धावा पट्ठविय ॥४॥
पुणु पच्छएँ विज्जाहर-पवर । णहयलु भरन्त णं अम्बुहर ॥५॥
ओवुट्ठु तेहिँ कञ्चण-वरिसु । किउ पुरवरु लङ्काउरि-सरिसु ॥६॥
घरेँ घरेँ मणिकुट्टागार किय । घरेँ घरेँ णं णव-णिहि सङ्कमिय ॥७॥
पुरेँ घोसण तो वि परिब्भमइ । 'सो लेउ लएवएँ जासु मइ' ॥८॥

घत्ता

तं पट्टणु कञ्चण-धण-पउरु वहइ पुरन्दर-णयर-छवि ।
देन्तउ जें अत्थि पर सयलु जणु जसु दिज्जइ सो को वि ण वि ॥९॥

[१९]

गउ लङ्क विहीसणु मिच्च-वलु । सोलहमएँ दिवसेँ पयट्टु वलु ॥१॥
स-विमाणु स-साहणु गयण-वहेँ । दावन्तु णिवाणइँ पियथमहेँ ॥२॥
'एँहु सुन्दरि दीसइ मयरहरु । एँहु मलय-धराहरु सुरहि-तरु ॥३॥
किक्किन्ध-महिन्द-इन्दसइलु । इह तुलिय कुमारेँ कोडि-सिल ॥४॥
हउँ लक्खणु एण पहेण गय । एत्तहेँ खर-दूसण-तिसिर हय ॥५॥
इह सम्बु-कुमारहों खुडिउ सिरु । इह फेडिउ रिसि-उवसग्गु चिरु ॥६॥

मापा जा सकता है, सूर्यकी किरणोंकी थाह ली जा सकती है। जिन भाषित वाणीको भी हम माप सकते हैं, निवृत्तिपरायण लोगोंके शब्दोंकी भी टोह ली जा सकती है, परन्तु हे विभीषण, तुम्हारे अनुपम गुणोंकी थाह लेना कठिन है॥ १-९॥

[१८] यह सुनकर प्रणतसिर विभीषणने स्तुति और मुसकानके स्वरमें निवेदन किया, "हे राम, यदि आप विजय यात्रा कर रहे हैं, तो सोलह दिन और ठहर जायँ। मैं अयोध्या नगरीको फिरसे नयी बनाऊँगा, सबकी सब सोनेकी निर्मित करूँगा।" राम और लक्ष्मणको इस प्रकार रोककर, विभीषणने सबसे पहले निर्माणकर्ता भेज दिये। उसके बाद, बड़े-बड़े विद्याधर भेज दिये, मानो आकाश मेघोंसे भर उठा हो, वहाँ सोनेकी खूब वर्षा हुई। उन्होंने सारी अयोध्या नगरी लंकाके समान बना दी। घर-घरमें मणिमय कूटागार थे, मानो घर-घरमें नवनिधियाँ आकर इकट्ठी हो गयीं। फिर नगरमें यह घोषणा करा दी गयी, "जिसको जो लेना है वह ले ले"। स्वर्ण और धन प्रचुर, वह अयोध्या नगरी इन्द्रनगरकी शोभा धारण कर रही थी। सभी लोग वहाँ देनेवाले ही थे। जिसे दिया जाय, ऐसा एक भी आदमी नहीं था॥ १-९॥

[१९] विभीषणकी सेना लंका वापस चली गयी। सोलहवें दिन रामने अयोध्याके लिए कूच किया। सेना और विमानके साथ आकाशपथमें वे प्रिय सीताको सुन्दर स्थान दिखा रहे थे, "हे सुन्दरी, यह विशाल समुद्र है, यह चन्दन वृक्षोंका मलयपर्वत है, यह किष्किंधा, महेन्द्र और इन्द्रशिला है। यहाँ कुमार लक्ष्मण ने कोटिशिला उठायी थी। मैं और लक्ष्मण इस रास्ते गये थे। यहाँपर खर, दूषण और त्रिसिर मारे गये। यहाँ शम्बुकुमारका सिर काटा गया, यहाँ हमने महामुनिका उपसर्ग दूर किया था,

इह सो वरेसु णिवच्छियउ । जियपोम-जणणु जहिँ अच्छियउ ॥७॥
एँहु देसु असेसु वि चारु-चरिउ । अइवीर-णराहिउ जहिँ धरिउ ॥८॥

घत्ता

तं सुन्दरि एउ जियन्तउरु जहिँ वणमाल समावडिय ।
लक्खिज्जइ लक्खण-पायवहौँ अहिणव वेल्लि णाइँ चडिय ॥९॥

[२०]

रामउरि एह गुण-गारविय आ पूयण-जक्खेँ कारविय ॥१॥
एँहु अरुणु गामु कविलहोँ तणउ । जहिँ गलथल्लाविउ अप्पणउ ॥२॥
एँहु दीसइ सुन्दरि विञ्झइरि । जहिँ वसिकिउ वालिखिल्लु वइरि॥३॥
वइदेहि एउ कुब्बर-णयरु । कल्लाणमाल जहिँ जाउ णरु ॥४॥
एँउ दसउरु जहिँ लक्खणु भमिउ। सीहोयर-सीहु समरेँ दमिउ ॥५॥
एँह सा गम्भीर समावडिय । जहिँ महु कर-पल्लवेँ तुहुँ चडिय ॥६॥
उहु दीसइ सव्वु सुवण्णमउ । णिम्मविउ विहीसणेँ णं णवउ ॥७॥
धुवन्त-धवल-धयवड-पउरु । पिएँ पेक्खु अउज्झाउरि-णयरु ॥८॥

घत्ता

किर जम्म-भूमि जणणीएँ सम अण्णु विहूसिय जिणहरेँहि ।
पुरि वन्दिय सिरेँ स इँ भु व करेँवि अणय-तणय-हरि-हलहरेँहि ॥९॥

यह वह स्थान तुम देख रही हो, जहाँ जितपद्माके पिता रहते हैं। सुन्दर चरितवाला यह वह प्रदेश है जहाँ राजा अतिवीरको पकड़ा गया था। हे सुन्दरी, यह वह जयन्तपुर नगर है, जहाँ वनमाला मिली थी और जो लक्ष्मणरूपी वृक्षपर सुन्दरलताके समान चढ़ गयी थी ॥ १-९ ॥

[२०] यह रही गुणोंसे गौरवान्वित रामनगरी, जिसका निर्माण पूतनायक्षने किया था। यह कपिलका अरुण-नामका गाँव है, जहाँ उसने स्वयं धक्का खाया था। हे सुन्दरी, यह सामने विन्ध्यानगरी दिखाई दे रही है, जहाँ हमने शत्रु बालिखिल्यको अपने अधीन किया था। हे वैदेही, यह कूबरनगर है, जहाँ कल्याणमाला नर रूपमें रह रही थी। यह वह देशपुर है जिसमें लक्ष्मणने भ्रमण किया था, और सिंहोदररूपी सिंहका दमन किया था। यह वह गम्भीर नदी है, जिसमें तुम मेरी हथेलीपर चढ़ी थीं। वह सामने अयोध्यानगरी दिखाई दे रही है, जिसका अभी-अभी विभीषणने स्वर्णसे निर्माण करवाया है। फहराते हुए धवल ध्वजपटोंसे महान् अयोध्यानगरको, हे प्रिये, तुम देखो। एक तो जन्मभूमि माँके समान होती है, दूसरे वह जिनमन्दिरोंसे शोभित थी। सीता, राम और लक्ष्मणने अपने हाथ जोड़कर अयोध्यानगरीकी दूरसे ही वन्दना की ॥ १-९ ॥

●

[७९. एक्कूणासीमो सन्धि]

सीयहें रामहों लक्खणहों मुह-यन्द-णिहालउ भरहु गउ ।
बुद्धिहें ववसायहों विहिहें णं पुण्ण-णिवहु सवडम्मुहउ ॥

[१]

रामागमणें भरहु णीसरियउ । हय-गय-रह-णरिन्द-परियरियउ ॥१॥
अण्णेसहें सत्तुहणु स-वाहणु । स-रहसु साहङ्कारु स-साहणु ॥२॥
छत्त-विमाण-सहासइँ धरियइँ । अम्बरें रवि-किरणइँ अन्तरियइँ ॥३॥
तूरइँ हयइँ कोडि-परिमाणेंहिं । दुन्दुहि दिण्ण गयणें गिव्वाणेंहिं ॥४॥
जणवउ णिरवसेसु संखुब्भइ । रह-गय-तुरएँहिं मग्गु ण लब्भइ ॥५॥
णिवडिय एक्कमेक्क भिडमाणेंहिं । पेल्लावेल्लि जाय जम्पाणेंहिं ॥६॥
कण्णताल-हय-महुअर-विन्दहों । भरहाहिउ उत्तरिउ गइन्दहों ॥७॥
हरि-बल स-महिल पुप्फ-विमाणहों। अवर वि णरवइ णिय-णिय-जाणहों ।८।

घत्ता

केक्कय-सुएँण णमन्तएँण सिरु रहुवइ-चलणन्तरें कियउ ।
दीसइ विहिं रत्तुप्पलहँ णीलुप्पलु मज्झें णाइँ थियउ ॥९॥

[२]

जिह रामहों तिह णमिउ कुमारहों । अन्तेउरहों पओहिर-हारहों ॥१॥
वलेंण वलुद्धरेण हक्कारेंवि । सरहस णिय-भुव-दण्ड पसारेंवि ॥२॥
अवरुण्डिउ भायरु कडुवारउ । मत्थएँ चुम्बिउ पुणु सय-वारउ ॥३॥

उन्नासीवीं सन्धि

तब भरत सीता, राम और लक्ष्मणका मुखचन्द्र देखनेके लिए गये। उन्होंने देखा मानो बुद्धि, व्यवसाय और भाग्यका एक जगह सुन्दर संगम हो गया हो।

[१] रामके आगमनपर भरतने कूच किया। वह अश्व, गज, रथ और राजाओंसे घिरा हुआ था। दूसरी जगह सेना-के साथ शत्रुघ्न भी जा रहा था, खूब अलंकृत और वाहनपर बैठा हुआ। सैकड़ों छत्र और विमान साथ चल रहे थे। उनसे आकाशमें सूर्यकी किरणें ढँक गयीं। करोड़ोंकी संख्यामें नगाड़े बज उठे, आकाशमें भी देवताओंने नगाड़े बजाये। समस्त जनपद क्षुब्ध हो उठा। रथ, अश्व और हाथियोंके कारण रास्ता ही नहीं मिलता था। एक दूसरेसे भिड़कर लोग गिर पड़ते थे। यानोंमें रेलपेल मच गयी। तब राजा भरत कर्ण-तालसे भौंरोंको उड़ाते हुए महागजसे उतर पड़ा। राम और लक्ष्मण भी सीताके साथ अपने पुष्पक विमानसे उतर पड़े, और भी दूसरे राजा, अपने अपने यानोंसे नीचे उतर आये। कैकेयीके पुत्र भरतने नमस्कार करते हुए रामके चरणोंपर अपना सिर रख दिया। उस समय ऐसा लगा, मानो लालकमलोंके बीच नीलकमल रखा हुआ हो॥ १-२॥

[२] जिसप्रकार भरतने रामको प्रणाम किया, उसी प्रकार, उसने कुमार लक्ष्मण और हिलते-डुलते हारवाले अन्तःपुरको भी किया। तब बलोद्धत रामने भरतको पुकारा, और अपने दोनों बाहु फैलाकर छोटे भाईको अंकमें भर लिया और सौ बार

सय-वारउ उच्छङ्गें चडाविउ । सय-वारउ मियहुँ दरिसाविउ ॥४॥
सय-वारउ दिण्णउ आसीसउ । वरिस-सरिस-हरिसंसु-विमीसउ ॥५॥
'भुञ्जि सहोयर रज्जु णिरङ्कुसु । णन्द वद्ध जय जीव चिराउसु ॥६॥
अच्छउ वीर-लच्छि भुव-दण्डएँ । णिवसउ वसुह तुहारएँ खण्डएँ' ॥७॥
एम भणेवि पगासिय-णामें । पुप्फ-विमाणें चडाविउ रामें ॥८॥

घत्ता

भरह-णराहिवु दासरहि लक्खणु वइदेहि णिविट्ठाइँ ।
धम्मु पुण्णु ववसाउ सिय णं मिलेंवि अउज्झ पइट्ठाइँ ॥९॥

[३]

तूरइँ हयइँ णिणाइय-ति-जयइँ । णन्द-सुणन्द-भद्द-जय-विजयइँ ॥१॥
मेह-महइन्द-समुद्द-णिघोसइँ । णन्दिघोस-जयघोस-सुघोसइँ ॥२॥
सिव-संजीवण-जीवणिणाइँ । वद्धण-वद्धमाण-माहेन्दइँ ॥३॥
सुन्दर-सन्ति-सोम-सग्गीयइँ । णन्दावत्त-कण्ण-रमणीयइँ ॥४॥
गहिर-पसण्णइँ पुण्ण-पवित्तइँ । अवराइँ वि बहुविह-वाइत्तइँ ॥५॥
झल्लरि-भम्भा-भेरि-धमाकइँ । मद्दल-णन्दि-मउन्दा-ताकइँ ॥६॥
करडा-करडइँ मउन्दा-ढक्कइँ । काहल-टिविल-ढक्क-पडिढक्कइँ ॥७॥
डक्कियपणव-तणव-दडि-दद्दुर । डमरुअ-गुञ्जा-रुञ्जा वब्बुर ॥८॥

घत्ता

अट्ठारह अक्खोहणिउ रयणीयर-णयरहों आणियउ ।
अवरहुँ तूरहुँ तूरियहुँ कइ कोडिउ किं परियाणियउ ॥९॥

[४]

जय-जय-कारु करन्तेंहिं लोऍहिं । मङ्गल-धवलुच्छाह-पलोऍहिं ॥१॥
अट्ठच-सेसालीस-सहासेंहिं । तोरण-णिवह-छडा-विण्णासेंहिं ॥२॥
दहि-दोवा-दप्पण-अक-कलसेंहिं । मोत्तिय-रङ्गावलि-णव-कणिसेंहिं ॥३॥

उसके माथेको चूमा, सौ बार अपनी गोदमें लिया और सौ बार उसे अपने अनुचरोंको दिखाया। सौ बार उन्होंने आशीर्वाद दिया, आनन्दके आँसुओंसे दोनों वर्षाके समान भीग गये। रामने कहा, "हे भाई, तुम स्वच्छन्द इस राज्यका भोग करो, प्रसन्न रहो फलो-फूलो जियो और बढ़ते रहो, तुम्हारे बाहु-पाशमें लक्ष्मीका निवास हो," यह कहकर प्रसिद्ध नाम रामने उसे अपने पुष्पक विमानमें चढ़ा लिया। राजा भरत, राम, लक्ष्मण और सीताने एक साथ अयोध्यामें इस प्रकार प्रवेश किया मानो धर्म, पुण्य, व्यवसाय और लक्ष्मीने एक साथ प्रवेश किया हो ॥ १–९ ॥

[३] नन्द, सुनन्द, भद्रजय, विजय आदि तीनों लोकोंको निनादित करनेवाले तूर्य बज उठे। मेघ, महेन्द्र तथा समुद्र निर्घोष, नन्दिघोष, जयघोष, सुघोष, शिवसंजीवन, जीवनिनाद, वर्धन, वर्धमान और माहेन्द्र भी। सुन्दर-शान्ति, सोम, संगीतक, नन्दावर्त, कर्ण, रमणीयक, गम्भीर, पुण्यपवित्र आदि और भी दूसरे वाद्य बज उठे। झल्लरि, भम्भा, भेरी, वमाल, मर्दल, नन्दी, मृदंग-ताल, करड़ा-करड़, मृदंग ढक्का, काहल, टिविल, ढका, प्रतिढक्का, ढड्डिय, प्रणव, तणव, दडि, दर्दुर, डमरुक, गुञ्जा, रुञ्जा, बन्धुर आदि वाद्य बजे। निशाचरनगरी लंकासे अट्ठारह अक्षौहिणी सेना लायी गयी। और तूर और तूर्य आदि कई करोड़ थे, उन्हें कौन जान सकता था ॥ १–९ ॥

[४] मंगल धवल उत्साह आदि गानोंके प्रयोग-द्वारा, जय-जयकारकी ध्वनि-द्वारा, अतिशय आरती तथा आशीर्वचनों-द्वारा, तोरण समूह और दृश्योंके निर्माण-द्वारा, दही, दूर्वा, दर्पण, और जल कलशों-द्वारा, मोतियोंकी रांगोली और नये धान्यों-

बम्भण-वयणुग्घोसिय-वेएँहिँ । कण्डिय-अज्जु-रिउ-सामा-भेएँहिँ ॥४॥
णड-कइ-कहय-छत्त-फप्फावेँहिँ । लङ्घिय-वसारूहण-विहावेँहिँ ॥५॥
भट्टेहिँ वयणुच्छाह पढन्तेँहिँ । वायालीस वि सर सुमरन्तेँहिँ ॥६॥
मल्लप्फोडण-सरेँहिँ विचित्तेँहिँ । इन्दयाल-उप्पाइय-चित्तेँहि ॥७॥
मन्द-फेन्दु-वन्देँहिँ कुइन्तेँहिँ । डोम्बेँहिँ वंसारूहणु करन्तहिँ ॥८॥

घत्ता

पुरेँ पइसन्तहोँ राहवहोँ ण कला-विण्णाणइँ केवलइँ ।
दुन्दुहि ताडिय सुरेँहिँ णहेँ अच्छरेँहि मि गीयइँ मङ्गलइँ ॥९॥

[५]

पुरेँ पइसन्तेँ राम-णारायणेँ । जाय वोल्ल वर-णायरिया-यणे ॥१॥
'एँहु सो रामु जासु विहि बीयउ । दीसइ णहेँणावन्तु स-सीयउ ॥२॥
एँहु सो लक्खणु लक्खणवन्तउ । जेण दसाणणु णिहउ भिडन्तउ ॥३॥
एँहु सो वहिणि विहीसण-राणउ । सुव्वइ विणयवन्तु बहु-जाणउ ॥४॥
एँहु सो सहि सुग्गीवु सुणिज्जइ । गिरि-किक्किन्ध-णयरु जो भुञ्जइ ॥५॥
एँहु सो विज्जाहरु भामण्डलु । णं सुर-सामिसालु आहण्डलु ॥६॥
एँहु सो सहि णामेण विराहिउ । दूसणु जेण महाहवेँ साहिउ ॥७॥
एँहु सो हणुउ जेण वणु भग्गउ । रामहोँ दिण्णु रज्जु आवग्गउ ॥८॥
जाम णयरु णाम-ग्गहणालउ । तिण्णि वि ताव पइट्ठइँ राउलु ॥९॥

घत्ता

बलु धवलउ हरि सामलउ वइदेहि सुवण्ण-वण्णु हरइ ।
णं हिमगिरि-णव-जलहरहँ अब्भन्तरेँ विज्जुल विप्फुरइ ॥१०॥

द्वारा, ब्राह्मणोंसे उच्चरित वेदों-द्वारा, ऋक् यजुः और सामवदोंके पाठ द्वारा, नट, कवि, कत्थक, छत्र और भाटों द्वारा, रस्सीपर चढ़नेवाले नटोंके प्रदर्शन-द्वारा, पण्डितों से उच्चरित उत्साह गीतों-द्वारा, बयालीस स्वरों की ध्वनियों-द्वारा, विचित्र मल्लफोड़ स्वरों और इन्द्रताल उत्पाद्य चित्रों-द्वारा, गाते हुए गायकों और नृत्यकारोंके समूह-द्वारा, बाँसुरी बजाते हुए डोमोंके द्वारा प्रवेश करते हुए रामका स्वागत किया गया। रामके नगरमें प्रवेश करते ही केवल कला और विज्ञानका ही प्रदर्शन नहीं हुआ, वरन् आकाशमें देवताओंने दुन्दुभियाँ बजायीं और अप्सराओंने मंगल गीतोंका गान किया ॥ १-९ ॥

[५] राम और लक्ष्मणके नगरमें प्रवेश करनेपर, श्रेष्ठ नागरिकाओंपर भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया हुई। एक बोली, "यह क्या वे राम हैं जो सीतादेवीके साथ आते हुए दूसरे विधाताके समान जान पड़ते हैं, यह क्या लक्षणोंसे विशिष्ट वही लक्ष्मण हैं, जिन्होंने युद्धमें रावणका वध किया, हे बहन, क्या यह वही राजा विभीषण हैं जो विनयशील और बहुत विद्वान् सुने जाते हैं। हे सखी, यह वही सुग्रीव है जो किष्किधा नगरका प्रशासक है। यह वही भामण्डल विद्याधर है, मानो देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्र ही हो। यह नामसे वही विराधित है जिसने महायुद्धमें दूषणपर विजय प्राप्त की। यह वही हनुमान है जिसने वन उजाड़ा, रामको राज्य दिया, और स्वयं सेवक बना," जबतक नागरिकाएँ इस प्रकार नाम ले रही थीं, तबतक उन तीनोंने राजकुलमें प्रवेश किया। लक्ष्मण गोरे थे राम श्याम, और सीतादेवीका रंग सुनहला था। वह ऐसी लगती, मानो हिमगिरि और नये मेघोंके बीच बिजली चमक रही हो ॥ १-१० ॥

[६]

तिण्णि वि गयइँ तेत्थु जहिँ कोसल । पण्ड-भरन्त धण-रयण-मण्डल ॥१॥
साहउ दिण्णउ मणु साहारिय । जिणवर-पडिम जेम जयकारिय ॥२॥
ताएँ वि दिण्णासीस मणोहर । 'जाव महा-समुद्द स-महीहर ॥३॥
धरइ धरत्ति जाव सयरायर । जाव मेरु णहेँ चन्द-दिवायर ॥४॥
जाव दिसा-गइन्द गह-मण्डलु । जाव सुरेँहिँ समाणु आहण्डलु ॥५॥
जाव वहन्ति महाणइ-वत्तइँ । जाव तवन्ति गयणेँ णक्खत्तइँ ॥६॥
ताव पुत्त तुहुँ सिय अणुहुञ्जहि । सोयापुविहेँ पट्टु पउञ्जहि ॥७॥
लक्खणु होउ ति-खण्ड-पहाणउ । भरहु अउज्झा-मण्डलेँ राणउ' ॥८॥

घत्ता

कइकइ-केकय-सुप्पहउ तिण्णि वि पुणु तिहिँ अहिणन्दियउ ।
मेरुहेँ जिण-पडिमाउ जिह सइँ इन्द-पडिन्देँहिँ वन्दियउ ॥९॥

[७]

हरि-हलहरेँहिँ तेत्थु अच्छन्तेँहिँ । बहुएँहिँ वासरेँहिँ गच्छन्तेँहिँ ॥१॥
भरहहोँ राय-लच्छि माणन्तहोँ । तन्तावाय वे वि जाणन्तहोँ ॥२॥
तिविह-सत्ति-चउ-विज्जावन्तहोँ । पञ्च-पयारु मन्तु मन्तन्तहोँ ॥३॥
छग्गुण्णउ असेसु भुञ्जन्तहोँ । तह सत्तङ्गु रज्जु भुञ्जन्तहोँ ॥४॥
बुद्धि-महागुण-अट्ठ वहन्तहोँ । दसमें माएं पय पालन्तहोँ ॥५॥
बारह-मण्डल-चिन्त करन्तहोँ । अट्ठारह तित्थइँ रक्खन्तहोँ ॥६॥
एक्कहिँ दिवसेँ आउ उम्माहउ । कमल-सण्डु थिउ णाइँ हिमाहउ ॥७॥

घत्ता

'ते रह ते गय ते तुरय' ते भिडिय स-किङ्कर भाइ-णर ।
ताउ जणेरिउ सो जि हउँ पर ताउ ण दीसइ एक्कु पर ॥८॥

[६] वे तीनों वहाँ पहुँचे जहाँपर पीन और भरे हुए स्तन मण्डलोंवाली कौशल्या माता थीं। उन्होंने आलिंगन देकर माता के मनको ढाढ़स दिया, और जिनेन्द्र भगवान्‌की तरह उनका जयजयकार किया। उसने भी उन्हें सुन्दर आशीर्वाद दिया, "जबतक महासमुद्र और पहाड़ हैं, जबतक यह धरती सचराचर जीवोंको धारण करती है, जब तक सुमेरुपर्वत है, जबतक आकाशमें सूर्य और चन्द्रमा हैं, जबतक दिग्गज और ग्रह-मण्डल हैं, जबतक देवताओंके साथ इन्द्र हैं, जबतक महानदियाँ प्रवाहशील हैं, जबतक आकाशमें नक्षत्र चमक रहे हैं, तबतक हे पुत्र, तुम राज्यश्रीका भोग करो और सीतादेवीको पटरानी बनाओ, लक्ष्मण त्रिखण्ड धरतीका प्रधान बने, और भरत अयोध्या मण्डलका राजा हो। फिर कैकयी और सुप्रभाका उन तीनोंने इस प्रकार अभिनन्दन किया मानो सुमेरुपर्वतपर जिनप्रतिमाकी इन्द्र और प्रतीन्द्रने वन्दना की हो ॥ १-९ ॥

[७] वहाँ रहते हुए राम और लक्ष्मणके बहुत दिन बीत गये। भरतने बहुत समय तक राज्यलक्ष्मीका उपभोग किया, दोनों ही राज्यतन्त्रको अच्छी तरह समझते थे। तीन शक्तियों और चार विद्याओंको वे जानते थे, पाँच प्रकारके मंत्रोंकी मंत्रणा करते थे। वे षड्‌गुणोंसे युक्त थे। इस प्रकार उन्होंने बहुत समय तक सप्तांग राज्यका उपभोग किया। उन्हें बारह मंडलोंकी चिन्ता बराबर रहती थी। अठारह तीर्थोंकी रक्षा करते थे। पर एक दिन उन्हें उन्माद हो गया, मानो कमलसमूह हिमसे आहत हो उठा हो। वे सोच रहे थे कि वही रथ हैं, वही गज हैं और वही अश्व हैं और वही अनुचर एवं भाई हैं। वही माताएँ हैं वही मैं हूँ। पर एक पिताजी दिखाई नहीं देते ॥ १-८ ॥

[८]

जिह ण ताउ तिह हउ मि ण कालें। पर वामोहिउ मोहण-जालें ॥१॥
रज्जु चिगत्थु चिगत्थइँ छत्तइँ। घरु परियणु धणु पुत्त-कलत्तइँ ॥२॥
धण्णउ ताउ जेण परिहरियइँ। दुग्गइ-गामियाइँ दुच्चरियइँ ॥३॥
हउँ पुणु कु-पुरिसु दुण्णय-वन्तउ। अज्ज वि अच्छमि विसयासत्तउ' ॥४॥
मुणिहेँ पासेँ थिरु लइउ अवग्गहु। 'रामागमणे होमि अ-परिग्गहु ॥५॥
जहिँ जेँ दिवसेँ तिण्णि वि णिद्दिट्ठइँ। जहिँ जेँ दिवसेँ णिय-णयरेँ पइट्ठइँ ॥६॥
तहिँ जेँ कालेँ जं ण गउ तवोवणु। मं वोल्लेसइ को वि अ-सज्जणु ॥७॥
"दुट्ठ-सहाउ कसाएं लइयउ। रामागमेँ जि भरहु पव्वइयउ" ॥८॥

घत्ता

अग्ग-महिसि करेँ जणय-सुय मन्तित्तणु देवि जणद्दणहोँ।
अप्पुणु पालहि सयल महि हउँ रहुवइ जामि तवोवणहोँ ॥९॥

[९]

ताएं कवणु सच्चु किर अप्पिउ। तुम्हहँ धणु महु रज्जु समप्पिउ ॥१॥
तहोँ अविणयहोँ सुद्धि पर मरणें। अहवइ घोर-वीर-तव-चरणें ॥२॥
तेण णिवित्ति भडारा रज्जहोँ। एवहिँ जामि थामि पावज्जहोँ' ॥३॥
तो जिय-आउहाण-सङ्गामें। भरहु चवन्तु णिवारिउ रामें ॥४॥
'अज्जु वि तुहुँ जेँ राउ ते किङ्कर। ते गय ते तुरङ्ग ते रहवर ॥५॥
ते सामन्त अम्हेँ ते मायर। सा समुद्द-परिअन्त-वसुन्धर ॥६॥
छत्तइँ ताइँ तं जेँ सिंहासणु। तं चामीयर-चामर-वासणु ॥७॥
भामण्डलु सुग्गीउ विहीसणु। सयल वि तउ करन्ति घरेँ पेसणु' ॥८॥

[८] "जिस प्रकार कालने पिताजीको नहीं छोड़ा, उसी-प्रकार मुझे भी नहीं छोड़ेगा, फिर भी मैं मोहमें पड़ा हुआ हूँ। राज्यको धिक्कार है, छत्रोंको धिक्कार है, घर परिजन धन और पुत्र-कलत्रोंको धिक्कार है। धन्य हैं वे तात, जिन्होंने दुर्गतिको ले जानेवाले खोटे चरितोंको छोड़ दिया है। मैं ही, कुपुरुष दुर्नयोंसे युक्त और विषयासक्त हूँ। अब मैं मुनिके पास जाकर दीक्षा ग्रहण करूँगा। स्त्रीके विषयमें अब मैं अपरि-ग्रह ग्रहण करूँगा। जिसदिन ये तीनों वनवासके लिए गये, और जिसदिन वनवाससे लौटकर नगरमें आये, उसदिन भी मैंने तपोवनके लिए कूच नहीं किया, कौन नहीं कहेगा कि मैं कितना असज्जन हूँ। मुझ दुष्ट स्वभावको कषायोंने घेर लिया।" इसप्रकार रामके आगमनपर भरतने दीक्षा ग्रहण कर ली। "जनकसुताको अग्रमहिषी बनाकर और लक्ष्मणको मंत्रीपद देकर हे राम, आप धरतीका पालन करें। मैं अब तपोवनके लिए जाता हूँ" ॥ १–८ ॥

[९] उसने कहा, "पिताजीने यह कौन-सा सच कहा था कि तुम्हारे लिए वन और मेरे लिए राज्य। उस अविनयकी शुद्धि केवल मृत्युसे हो सकती है, या फिर घोर तपश्चरणसे। इसलिए हे आदरणीय, राज्यसे मुझे निवृत्ति हो गयी है। अब मैं जाऊँगा और प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा।" तब युद्धमें निशाचरोंको जीतनेवाले रामने भरतको बोलनेसे रोका। उन्होंने कहा— "आज भी तुम राजा हो, तुम्हारे वे अनुचर हैं, वही अश्व, वही गज और रथ श्रेष्ठ हैं। वे ही सामन्त हैं और तुम्हारे भाई हैं, वही समुद्रपर्यन्त धरती है। वही छत्र हैं और वही सिंहा-सन है। वही स्वर्णनिर्मित चमर और व्यजन हैं, भामण्डल सुग्रीव और विभीषण घरमें तुम्हारी आज्ञाका पालन करते हैं।

घत्ता

एव वि जं अवहेरि किय चल-वलय-मुहल-कल-णेउरहों ।
'जिह सक्कहों तिह पडिखलहों' आएसु दिण्णु अन्तेउरहों ॥९॥

[१०]

जं आएसु दिण्णु वर-विलयहुँ । जाणइ-पमुहहुँ गुण-गण-णिलयहुँ ॥१॥
णाह-मणि-किरण-करालिय-गयणहुँ । रमणावासावासिय-मयणहुँ ॥२॥
थण-गयउर-पेल्लाविय-जोहहुँ । रूवोहामिय-सुरवहु-सोहहुँ ॥३॥
सयल-कला-कलाव-कल-कुसलहुँ । मुह-मारुअ-मेलाविय-मसलहुँ ॥४॥
भउह-सरासण-कोयण-वाणहुँ । केस-णिवन्धण-जिय-णिव्वाणहुँ ॥५॥
विब्भाडिय-वम्मह-सोहग्गहुँ । लावण्णम्भ-भरिय-पुरि-मग्गहुँ ॥६॥
तो कल्लाणमाल-वणमालहिँ । गुणवइ-गुणमइ-रयण-गुणमालहिँ ॥७॥
सल्ल-विसल्लासुन्दरि-सोयहिँ । वज्जयण्ण-सोहोयर-धीयहिँ ॥८॥

घत्ता

वुच्चइ भरह-णराहिवइ 'सर-मज्झेँ तरन्त-तरन्ताहुँ ।
देवर थोडी वार वरि अच्छहुँ जल-कील करन्ताहुँ' ॥९॥

[११]

तं पडिवण्णु पइट्ठु महा-सरु । जल-कीलहेँ वि अचलु परमेसरु ॥१॥
कण्णउ सुन्दरीउ चउ-पासेँहिँ । गाढालिङ्गण-चुम्बण-हासेँहिँ ॥२॥
हेला-हाव-भाव-विब्भासेँहिँ । किलिकिंचिय-विच्छित्ति-विलासेँहिँ ॥३॥
मोट्टायिय-कोट्टमिय-वियारेँहिँ । विब्भम-वर-विब्बोअ-पयारेँहिँ ॥४॥
तो वि ण खुहिउ भरहु सइ-वुद्धिउ । अविचलु णं गिरि मेरु परिट्ठिउ ॥५॥
अच्छइ जाव तीरेँ सुह-दंसणु । ताव महा-गउ तिजगविहूसणु ॥६॥

जब भरतने इस प्रकार चंचल चूड़ियों और सुन्दर नूपुरोंसे मुखरित अन्तःपुरकी उपेक्षा की तो रामने आदेश दिया कि जिस प्रकार सम्भव हो उसे रोको ॥१-९॥

[१०] जब गुणोंसे युक्त, जानकी प्रमुख श्रेष्ठ नारियोंको यह आदेश दिया गया, तो वे भरतके पास पहुँचीं। उन्होंने अपने नखमणिकी किरणोंसे आकाशको पीड़ित कर रखा था। उनके कटितटमें जैसे कामदेवका निवास था। स्तनोंसे उन्होंने, बड़े-बड़े योद्धाओंको परास्त कर दिया था। रूपमें सुरवधुओंकी शोभा उनके सामने फीकी थी। समस्त कला-कलापमें वे निपुण थीं। मुखपवनसे वे भ्रमरोंको उड़ा रही थीं। भौंहें धनुष थीं और नेत्र तीर थे। केश रचना में वे देवताओंको भी जीत लेती थीं। उन्होंने कामदेवके भी सौभाग्यको भ्रममें डाल दिया था। उनके सौन्दर्यके जलसे नगरमार्ग पूरित थे। इस प्रकार कल्याण-माला, वनमाला, गुणवती, गुणमहार्घ, गुणमाला, शल्या, विशल्या और सीता, वज्रकर्ण और सिंहोदरकी पुत्रियाँ वहाँ गयीं। उन्होंने नराधिप भरतसे कहा, "हे देवर, सरोवरमें तैरते-तैरते चलो, कुछ समयके लिए जल क्रीड़ा करें ॥१-९॥

[११] उनकी बात मानकर भरतने महासरोवरमें प्रवेश किया। किन्तु वह जलक्रीड़ामें भी अचल था। सुन्दरियोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया, प्रगाढ़ आलिंगन, चुम्बन और हाससे वे उसे रिझा रही थीं। हेला, हाव-भाव और विन्याससे किलकिंचित् विच्छित्ति और विलाससे, मोट्टाविय और कोट्टमिय आदि विकारोंसे, विभ्रम बरबिव्वोक आदि प्रकारोंसे, उसे रिझाया। परन्तु फिर भी भरत क्षुब्ध नहीं हुए। वे अविचल भावसे इस प्रकार उठ खड़े हुए, मानो सुमेरु पर्वत ही उठ खड़ा हुआ हो। शुभदर्शन भरत तीरपर बैठे हुए थे। इतनेमें

जिय आलाण-खम्भु उप्पाडेंवि । मन्दिर-सयइँ अणेयइँ पाडेंवि ॥७॥
परिभमन्तु गउ तं जें महा-सरु । भरहु णिएवि जाउ जाईं-सरु ॥८॥
'परम-मित्तु हहु अण्ण-भवन्तरें । णिवसिय सग्गें बे वि बम्भोत्तरें ॥९॥

घत्ता

पुण्ण-पहावें सम्भविउ इहु णरवइ हउँ पुणु मत्त-गउ' ।
कवलु ण लेइ ण पियइ जलु अत्थक्कएँ थिउ लेप्पमउ ॥१०॥

[१२]

करि सम्भरइ भवन्तरु जावहिँ । पुप्फ-विमाणु चडेप्पिणु तावहिँ ॥१॥
लक्खण-राम पराइय मायर । णं सञ्चारिम चन्द-दिवायर ॥२॥
णवर विसल्लासुन्दरि-सीयएँ । भरह-णराहिवो वि सहुँ सीयएँ ॥३॥
चडिउ महा-गएँ तिहुअणभूसणें । सुरवर-णाहु णाइँ अइरावणें ॥४॥
पुरें पइसन्तें जय-जय-सद्दें । वन्दिण-बम्भण-तूर-णिणद्दें ॥५॥
सो आलाण-खम्भें करें आलिउ । अविरलालि-रिञ्छोलि-वमालिउ ॥६॥
कवलु ण लेइ ण गेण्हइ पाणिउ कुञ्जर-चरिउ ण केण वि जाणिउ ॥७॥
कहिउ करिल्लेंहिँ पहुयणाहहों । 'दुक्करु जीविउ वारण णाहहों' ॥८॥

घत्ता

तं गयवर-वइयरु सुणेंवि उप्पण्ण चिन्त बल-लक्खणहुँ ।
आयउ ताव समोसरणु कुलभूसण-देसविहूसणहुँ ॥९॥

[१३]

रिसि-आगमणु सुणेंवि परमत्थिएँ । गउ रहु-णन्दणु वन्दणहत्तिएँ ॥१॥
गय सत्तुहण-भरह स जणद्दण । स-सुरङ्गम स-गइन्द स-सन्दण ॥२॥
भामण्डल-सुग्गीव-विराहिय । गवय-गवक्ख-सङ्ख रहसाहिय ॥३॥

त्रिजगभूषण महागजने अपना आलान स्तम्भ तोड़-फोड़ डाला। सैकड़ों घरोंको तहस-नहस करता हुआ, घूमता-घामता महासरोवरके निकट पहुँचा। वहाँ भरतको देखकर उसे पूर्वजन्मका स्मरण हो आया कि यह तो मेरा जन्मान्तरका मित्र है और ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें भी मेरे साथ रहा है। यह पुण्यके प्रभावसे ही सम्भव हो सका कि यह राजा है और मैं मत्तगज। यह सोच कर वह एक कौर नहीं खाता, और न पानी पीता, सहसा मूर्ति के समान जड़ हो गया ॥१-१०॥

[१२] महागज त्रिजगभूषण जब पूर्वजन्मकी याद कर रहा था, तभी पुष्पक विमानमें बैठकर राम और लक्ष्मण दोनों भाई आये, मानो गतिशील सूर्य और चन्द्रमा हों। राजा भरत भी विशल्या सुन्दरी और सीता देवीके साथ उस महागजपर इस प्रकार बैठ गया मानो इन्द्र ही ऐरावतपर बैठ गया हो। जय-जय शब्दके साथ नगरमें प्रवेश करते ही चारणों, वामनों और नगाड़ोंकी ध्वनि होने लगी। महागजको आलान-स्तम्भसे बाँध दिया, भ्रमरमाला उसके चारों ओर कलकल आवाज कर रही थी। परन्तु वह न कौर ग्रहण करता था और न पानी। उस कुंजरके चरितको कोई भी नहीं समझ पा रहा था। अन्तमें अनुचरोंने जाकर रामसे कहा, "गजराजका अब जीना कठिन है।" गजवरके व्रताचरणको सुनकर राम-लक्ष्मणको बहुत भारी चिन्ता हो गयी। इसी बीच कुलभूषण और देशभूषण महाराजका समवसरण वहाँ आया ॥१-९॥

[१३] महामुनिका आगमन सुनकर राम अत्यन्त आदरके साथ उनकी वन्दना-भक्तिके लिए गये। शत्रुघ्न, भरत और लक्ष्मण भी गये। अपने अश्वों, रथों और गजोंके साथ भामण्डल, सुग्रीव, विराधित और हर्षातिरेकसे भरे गवय,

स-विहीसण णल-णीलङ्गङ्गय । तार-तरङ्ग-रम्भ-पवणञ्जय ॥४॥
कोसल-कइकइ-केक्कय-सुप्पह । सन्तेउर वइदेहि विणिग्गय ॥५॥
साहुहुँ वन्दणहत्ति करेप्पिणु । दस-पयार जिण-धम्मु सुणेप्पिणु ॥६॥
पुच्छिउ जेट्ठ-महारिसि रामें । 'एहु करि तिजगविहूसणु णामें ॥७॥
कवलु ण लेइ ण ढुक्कइ सलिलहों जेम महारिसिन्दु कलि-कलिलहों'॥८॥

घत्ता

कुञ्जर-भरत-भवन्तरइँ अक्खियइँ असेसइँ मुणिवरें॥ण।
केक्कइ-णन्दणु-पव्वइउ सामन्त-सहासें उत्तरें॥ण ॥९॥

[१४]

विक्कम-णय-विणय-पसाहिएण । सामन्त-सहासें साहिएण ॥१॥
थिउ भरहु महारिसि-रूवु लेवि । मणि-रयणाहरणइँ परिहरेवि ॥२॥
तहिँ जुवइ-सएँहिँ सहुँ केक्कया वि । थिय केसुप्पाडु करेवि सा वि ॥३॥
सो तिजगविहूसणु मरेँवि णाउ । बम्हुत्तरेँ सग्गेँ सुरिन्दु जाउ ॥४॥
भरहाहिवो वि उप्पण्ण-णाणु । बहु-दिवसेँहिँ गउ लोगावसाणु ॥५॥
अहिसित्तु रामु विज्जाहरेँहिँ । भामण्डल-किक्किन्धेसरेँहिँ ॥६॥
णल-णील-विहीसण-अङ्गएहिँ । दहिमुह-महिन्द-पवणङ्गएहिँ ॥७॥
चन्दोयरसुय-जम्बुणएहिँ । अवरेहि मि भवेँहिँ सउण्णएहिँ ॥८॥

घत्ता

बद्धु पट्टु रहु-णन्दणहों कञ्चण-कलसेँहिँ अहिसेउ किउ ।
लक्खणु चक्क-रयण-सहिउ धर स-धर स इं भुञ्जन्तु थिउ ॥९॥

●

गवाक्ष और शंख, विभीषण, नल, नील, अंगद, तार, तरंग, रंभ, पवनसुत, कौशल्या, कैकेयी, केकय, सुप्रभा और अन्तःपुरके साथ सीता भी वहाँ पहुँचीं। सबने वन्दना-भक्ति की और दस प्रकारका धर्म सुना। रामने तब बड़े महामुनिसे पूछा, "यह त्रिजगविभूषण महागज न तो आहार ग्रहण करता है और न जल, वैसे ही जैसे महामुनि पातकके कणको भी नहीं लेते। मुनिवरने भरत और उस महागजके सारे जन्मान्तर बता दिये। उन्हें सुनकर कैकेयीपुत्र भरतने हजारों सामन्तोंके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली ॥१-९॥

[१४] जब विक्रम नय और पराक्रमसे प्रसाधित हजारों साधक सामन्तोंके साथ भरतने मणि रत्नोंके समस्त आभूषण छोड़ दिये और महामुनिका रूप ग्रहण कर लिया तो सैकड़ों युवतियोंके साथ कैकेयीने भी केश लोंच कर दीक्षा ग्रहण कर ली। वह त्रिजगविभूषण महागज भी मर कर ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें देवेन्द्र बन गया। राजा भरतको ज्ञान उत्पन्न हो गया और बहुत दिनोंके बाद, उनके इस संसार का अन्त हो गया। उसके अनन्तर भामण्डल, किष्किन्धाराज, नल, नील, विभीषण, अंगद, दधिमुख, महेन्द्र, पवनसुत, चन्द्रोदरसुत, जम्बुव आदि दूसरे योद्धाओं और विद्याधरोंने रामका राज्याभिषेक किया। रघुनन्दनको राज्यपट्ट बाँध दिया गया, और स्वर्ण कलशों से उनका अभिषेक हुआ। लक्ष्मण भी अपने चक्र रत्नके साथ धरतीका भोग करने लगे ॥१-२॥

●

[८०. असीइमो संधि]

[१]

रहुवइ रज्जु करन्तु थिउ गउ भरहु तवोवणु ।
दिण्ण विहंजें वि सयल महि सामन्तहुँ जीवणु ॥

वसुमइ ति-खण्ड-मण्डिय हरिहें । पायालंकारु चन्दोयरिहें ॥१॥
धण-कणय-समिद्धु पवर-पवरु । सुग्गीवहों गिरि-किक्किन्ध-पुरु ॥२॥
ससि-फलिह-किरिय-जस-सासणहों । लङ्काउरि अचल विहीसणहों ॥३॥
वण-भङ्गहों मउ-चूडामणिहें । सिरिपव्वय-मण्डलु पावणिहें ॥४॥
रहणेउर-पुरु भामण्डलहों । कइ-दीवु दिण्णु णीलहों णलहों ॥५॥
माहिन्दि महिन्दहों दुज्जयहों । आइच्च-णयरु पवणञ्जयहों ॥६॥
अवराइ मि अवरहुँ पट्टणइँ । घर-सिहर-रविन्दु-विहट्टणइँ ॥७॥
बलु जीवणु देइ विओसइ वि । 'जो णरवइ हूयउ होसइ वि ॥८॥
सो सयलु वि महुँ अब्भत्थियउ । मा होउ को वि जगें दुत्थियउ ॥९॥

घत्ता

णाएं भाएं दसमएण पय परिपालेज्जहों ।
देवहुँ सवणहुँ बम्भणहुँ मं पीड करेज्जहों '॥१०॥

[२]

पुणु पुणु अब्भत्थइ दासरहि । 'सो णरवइ जो पालेइ महि ॥१॥
अणुरत्तु पयउ णय विणय-परु । सो अविचलु रज्जु करेइ णरु ॥२॥
जो पहुँ पुणु देव-भोग हरइ । थर-थावर-वित्ति छेउ करइ ॥३॥
सो खयहों जाइ तिहिं वासरेंहिं । तिहिं मासहिं तिहिं संवच्छरेंहिं ॥४॥
जइ कह वि थुक्कु तहों अवसरहों । तो अकुसलु अण्ण-भवन्तरहों' ॥५॥

अस्सीवीं सन्धि

रघुपति राजगद्दी पर बैठे। भरत तपोवनके लिए चल दिये। रामने आजीविकाके लिए सामन्तों को सारी धरती बाँट दी।

[१] लक्ष्मण के लिए तीन खण्ड धरती। चन्दोदरके लिए पाताललंका। धन-धान्यसे समृद्ध विशाल किष्किन्धा नगर सुग्रीवके लिए। चन्द्रकान्तमणि के शिलाफलक पर जिसका यश लिखा गया है उस विभीषण को लंकापुरी का अचल शासन दिया गया। पवित्र श्रीपर्वतमण्डल सहित रथनूपुर नगर योद्धाओं में चूडामणि भामण्डल के लिए और कई द्वीप नल-नील के लिए दिये गये। दुर्जेय महेन्द्रके लिए माहेन्द्रपुरी। पवनसुत के लिए आदित्यनगर। दूसरों-दूसरोंके लिए भी ऐसे ही नगर प्रदान किये जिनके गृहोंके शिखरोंसे आकाशमें सूर्य-चन्द्र रगड़ खाते थे। रामने इस प्रकार लोगोंको जीवनदान दिया। उन्होंने यह घोषणा भी की—"जो भी राजा हुआ है या होगा, उससे मैं (राम) यही प्रार्थना करता हूँ कि दुनियामें किसीके प्रति कठोर नहीं होना चाहिए। "न्यायसे दसवाँ अंश लेकर प्रजाका पालन करना चाहिए। देवताओं, श्रमणों और ब्राह्मणों को पीड़ा कभी मत पहुँचाओ"॥१-१०॥

[२] रामने फिर अभ्यर्थना की, "राजा वही है, जो धरतीका पालन करता है। जो प्रजासे प्रेम रखता है, नय और विनयमें आस्था रखता है, वही अविचल रूपसे अपना राज्य करता है। जो राजा देवभागका अपहरण करता है, दोहली भूमिदानका अन्त करता है, वह तीन ही दिनमें विनाशको प्राप्त होता है, तीन दिनमें नहीं तो तीन माहमें, तीन सालमें, अवश्य उसका नाश होता है। यदि इतने समयमें भी बच गया तो दूसरे जन्म में अवश्य उसका अकल्याण होगा।" इस प्रकार

सामन्त णिअन्तेंवि राहवेंण । सत्तुहणु वुत्तु जीयाहवेंण ॥६॥
'ण पहुच्चइ काइँ एह पिहिमि । सामिथिहेँ तुज्झु मज्झु तिहि मि ॥७॥
पयडिजइ तो इ मज्झें जणहों । कइ मण्डलु जं भावइ मणहों' ॥८॥

घत्ता

वुच्चइ सुप्पह-णन्दणेंण 'जइ महु दय किज्जइ ।
तो वरि महुरायहों तणिय महुराउरि दिज्जइ' ॥९॥

[३]

तो मणें चिन्ताविउ दासरहि । 'दुग्गेज्झ महुर किह पइसरहि ॥१॥
दुम्महु महु महु वि असज्झु रणें । अज्जु वि रावणु णउ मुउ जें मणें ॥२॥
भय-भावि-भाणु-भा-भासुरेंण । जसु दिण्णु सूलु चमरासुरेण ॥३॥
सो महुर-णराहिउ केण जिउ । फणवइहें फणामणि केण हिउ ॥४॥
तुहुँ अज्जु वि बालु कालु कवणु । तियसहु मि भयङ्करु होइ रणु ॥५॥
दुद्दम-दणु-देह-वियारणहुँ । किह अब्भु समोड्डहि पहरणहुँ' ॥६॥
पणवेप्पिणु पभणइ सत्तुहणु । 'हउँ देव णिरुत्तउ सत्तु-हणु ॥७॥
जइ महुर-णराहिउ णउ हणमि । तो रहुवइ पइ मि ण जय भणमि ॥८॥

घत्ता

पइसइ जइ वि सरणु जमहों अहवइ जंम-वप्पहों ।
जीय-महाविसु अवहरमि महुराहिव-सप्पहों' ॥९॥

[४]

गज्जन्तु णिवारिउ सुप्पहएँ । 'किं पुत्त पइज्ञा सम्पयएँ ॥१॥
वोल्लिज्जइ तं जं णिव्वहइ । भड-वोक्कहिँ सुहडु ण जउ लहइ ॥२॥
किं साहसु दिट्ठु ण भायरहुँ । किउ विहिँ जें विणासु णिसायरहुँ ॥३॥
किण्ण सुणिउ णिरुवम-गुण-भरिउ । अणरण्णाणन्तवीर-चरिउ ॥४॥

सामन्तोंको स्थापित कर युद्धविजेता रामने शत्रुघ्नसे कहा, "क्या यह धरती, तुम्हें, मुझे और लक्ष्मणको पर्याप्त नहीं जान पड़ती? हमें अपने बीचमें अपनी बात प्रकट करनी चाहिए और जिसके मनमें जो मण्डल पसन्द आये वह उसे ले ले। यह सुनकर सुप्रभाके पुत्र शत्रुघ्नने कहा, "यदि मुझपर दया करते हैं, तो मुझे मधुराजकी मथुरा नगरी प्रदान करें" ॥१-९॥

[३] यह सुनकर रामने अपनी चिन्ता बतायी, "मथुरा नगरी दुर्ग्राह्य है, उसमें प्रवेश करोगे कैसे ? वहाँका राजा मधु युद्धमें मेरे लिए भी असाध्य है। उसकी दृष्टिसे रावण आज भी नहीं मरा। प्रलय सूर्यके समान चमकनेवाले चमरासुरने उसे एक शूल दिया है। उस राजा मधुको कौन जीत सकता है, नागके फणामणिको कौन छीन सकता है। तुम अभी बच्चे हो। तुम्हारी उम्र ही क्या है अब। वह युद्धमें देवताओंके लिए भयंकर हो उठता है। दुर्दमदानवोंको देहका विदारण करनेमें समर्थ अस्त्रोंको तुम किस प्रकार झेलोगे।" यह सुन कर शत्रुघ्नने प्रमाणपूर्वक रामसे निवेदन किया, "हे देव, मैं निश्चय ही शत्रुघ्न हूँ। यदि मैं मथुरापति मधुको नहीं मार सका तो आपकी जय भी नहीं बोलूँगा। यदि वह यम तो क्या, उसके बापकी भी शरणमें जायगा तो उस मधुराधिप रूपी साँपके जीवनरूपी विषको निकाल लूँगा" ॥१-९॥

[४] तब सुप्रभाने उसे डींग हाँकनेसे रोकते हुए कहा, "हे पुत्र, इस समय प्रतिज्ञा करनेसे क्या लाभ ? वह बोलना चाहिए जो निभ जाय, बढ़-चढ़कर बात करनेसे सुभटको जय प्राप्त नहीं होती। क्या तुमने अपने भाइयोंका साहस नहीं देखा ? दोनोंने मिलकर, निशाचरोंका नाश कर दिया, क्या तुमने अनन्य गुणोंसे विशिष्ट, अणरण्य और अनन्तवीर्यका चरित

तउ दसरह-मरहहिं घोरु किउ । इक्खुक्क-वंसु एँहु एम थिउ ॥५॥
तुहुँ अवर करेसहि अप्पणउ । तो वरि जसु रक्खिउ अप्पणउ ॥६॥
जइ महु उप्पण्णु मणोरहेँण । जइ जणिउ जणेरें दमरहेँण ॥७॥
तो पउ वि म देहि परम्मुहउ । पडिवक्खु जिणेसहि सम्मुहउ ॥८॥

घत्ता

केउ-सुमाकालङ्करिय महु-राय-णिवासिणि ।
पुत्त पयत्तें भुञ्जें तुहुँ तं महुर-विलासिणि' ॥९॥

[५]

आसीस दिण्ण जं सुप्पहएँ । वद्धारिय-णिय-गुण-सम्पयएँ ॥१॥
तो स-सरु सरासणु राहवेण । दिज्जइ णिव्वूढ-महाहवेण ॥२॥
लक्खणेंण वि घणुहरु अप्पणउ । दससिर-सिर-कमलुक्कप्पणउ ॥३॥
णामेण कियन्तवत्तु पवलु । सेणावइ दिण्णु समत्त-वलु ॥४॥
सामन्तहँ लक्खें परियरिउ । सत्तुहणु अउज्झहेँ णीसरिउ ॥५॥
सु-णिमित्तइँ हूअइँ अन्ताहुँ । सव्वइँ मिलन्ति सियवन्ताहुँ ॥६॥
उक्खन्धें दूरुज्झिय-सिवहों । गउ उप्परें महुर-णराहिवहों ॥७॥
तो मन्तिहिं पभणिउ सत्तुहणु । 'जय णन्द वद्ध वद्धु-सत्तु-हणु ॥८॥

घत्ता

महु-मत्तहों महुराहिवहों वर-पुरिम गविट्ठहों ।
अज्जु भडारा छ-द्दिवस उज्जाणु पइट्ठहों ॥९॥

[६]

करें कम्पाइ जाव ण सूलु तहों । लइ ताव महुर महुराहिवहों' ॥१॥
वयणेण तेण रहसुच्छलिउ । पडिवण्णएँ अद्ध-रत्तें चलिउ ॥२॥
पुरें वेढिएँ वारइँ रुद्धाइँ । भय-विहलइँ संसएँ छुद्धाइँ ॥३॥

नहीं सुना। तुम्हारे दशरथ और भरतने बहुत बड़े काम किये, तब इस इक्ष्वाकु वंशकी स्थापना हो सकी, अगर तुम इतनी बड़ी घोषणा करते हो, तो जाओ अपने यशकी रक्षा करो। यदि तुम मुझसे उत्पन्न हुए हो और पिता दशरथसे जनित हो, तो पीछे पग मत देना, सामने-सामने शत्रुको जीतना। हे पुत्र, तुम राजा मधुकी सुन्दर शोभित मथुरा नगरीका विलासिनी स्त्रीकी तरह प्रयत्नपूर्वक भोग करना। वह मथुरा नगरी, ध्वजाओं रूपी मालासे अलंकृत है, मधु राजा (इस नामका राजा, और कामदेव) से अधिष्ठित है ॥१-९॥

[५] अपनी गुण-सम्पदामें बढ़ी-चढ़ी सुप्रभाने जब शत्रुघ्न को आशीर्वाद दिया, तो अनेक युद्धोंके विजेता रामने उसे अपना धनुष तीर दे दिया। लक्ष्मणने भी रावणके दसों सिरों-को काटनेवाला अपना धनुष उसे प्रदान कर दिया। कृतान्तपत्र नामक प्रसिद्ध सेनापति और सामन्त सेना भी उसके साथ कर दी। लाखों सामन्तोंसे घिरे हुए शत्रुघ्नने इस प्रकार अयोध्यासे बाहर कूच किया। जाते हुए उसे खूब शकुन हुए, जो श्रीमन्त होते हैं उन्हें सभी बातें मिलती हैं। सेनाके साथ वह कल्याणसे दूर नराधिप मधुपर जा पहुँचा। तब मन्त्रियोंने शत्रुघ्नसे कहा, "हे अनेक शत्रुओंका हनन करनेवाले, आपकी जय हो, आप फूलें-फलें।" उसने गुप्तचर सामन्तोंको आदेश दिया, "जाओ मधुमत्त मथुराधिपको ढूँढ़ निकालो। आदरणीय वह आजसे छह दिनके लिए उद्यानमें प्रविष्ट हुआ है" ॥१-९॥

[६] "जब तक शूल उसके हाथ नहीं लगता, तबतक मथुराधिपको पकड़ लो।" इन शब्दोंसे योद्धा उछल पड़े और आधी रात होनेपर उन्होंने कूच कर दिया। उन्होंने नगरको घेर लिया, दरवाजे रोक लिये, सब लोग डरसे विकल होकर

किउ कलयलु तूरइँ आहयइँ । विरसियइँ अमङ्क-सङ्ख-सयइँ ॥४॥
चयरट्ट-महागइ-गामिणिहिँ । परिगलिय-गब्भ-रिउ-कामिणिहिँ ॥५॥
दिढ-लोह-कवाडइँ फाडियइँ । वर-सिहर-सहासइँ मोडियइँ ॥६॥
णर-णायामर-दप्प-हरणइँ । लइयइँ सावरणइँ पहरणइँ ॥७॥
सिहि-जाला-माला-लोवियइँ । घरेँ घरेँ जोएँवि मणि-दीवियइँ ॥८॥

घत्ता

सत्तुहणहोँ पणमिय-सिरेँ हिँ सामन्तेँ हिँ सीसइ ।
'पट्टणेँ जिणवर-धम्मेँ जिह मडु कहि मि ण दीसइ' ॥९॥

[७]

सत्तुहणागमेँ पवणञ्जयहोँ । महु-पुत्तहोँ लवणमहण्णवहोँ ॥१॥
उप्पण्णु रोसु रहवरेँ चडिउ । सण्णाहु लइउ पर-वलेँ भिडिउ ॥२॥
किउ कलयलु तूर-रवब्भइउ । सरवरेँ हिँ कियन्तवत्तु छइउ ॥३॥
तेण वि आरामिय-सन्दणहोँ । धय-दण्डु छिण्णु महु-णन्दणहोँ ॥४॥
धणु ताडिउ पाडिउ आहयणेँ । दुव्वाएं णं मेहागमणेँ ॥५॥
तेण वि कियन्तवत्तहोँ तणउ । सहुँ चिन्धेँ छिण्णु सरासणउ ॥६॥
तेँ दूरु वरुज्झिय-पाण-भय । धणुवेय-भेय-पर-पारु गय ॥७॥
कप्पिणय-सुरूव-कप्परिय-कवय (?) कोड्डाविय-सारहि पहय-हय ॥८॥

घत्ता

बिहि मि परोप्परु वि-रहु किउ थिय बे वि गइन्देँ हिँ ।
साहुक्कारिय गयण-यलेँ जम-धणय-सुरिन्देँ हिँ ॥९॥

क्षुब्ध हो उठे। कल-कल होने लगा, नगाड़े बज उठे। असंख्य शंख फूंक दिये गये। हंसके समान सुन्दर चालवाली शत्रु-स्त्रियोंके गर्भ गिरने लगे। मजबूत लोहेके किवाड़ तोड़ दिये गये। घरोंके सैकड़ों शिखर मोड़ दिये गये। आगकी ज्वालमाला के समान आलोकित मणिदीपोंसे घरोंकी तलाशी लेकर, उन्होंने मनुष्य, नाग और देवताओंके दर्पको कुचलनेवाले अस्त्र अपने कब्जेमें ले लिये। उसके अनन्तर शत्रुघ्नको प्रणामकर सामन्तोंने सूचित किया, "जिनधर्मके समान इस नगरमें मुझे मधु (शराब, राजा) कहीं भी दिखाई नहीं दिया" ॥१-९॥

[७] इतनेमें वायुदेव नामके विद्याधरको जीतनेवाले मधु-पुत्र लवणमहार्णवने जब देखा कि शत्रुघ्न आ गया है तो वह गुस्सेसे पागल हो उठा। वह कवच पहन और रथपर चढ़कर शत्रुसेनासे जा भिड़ा। तूर्य ध्वनिसे उसने हल्ला मचा दिया। बड़े-बड़े तीरोंसे उसने सेनापति कृतान्तवक्त्रको ढँक दिया। उसने भी रथ सम्हालकर मधुपुत्र लवणमहार्णवके ध्वजदंडके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उसका धनुष तोड़कर, उसे धरतीपर इस प्रकार गिरा दिया, मानो मेघघटाके समय तूफान आ गया हो। तब लवणमहार्णवने भी कृतान्तवक्त्रका धनुष ध्वजसहित छिन्न-भिन्न कर दिया। दोनोंने ही अपने प्राणोंका डर दूरसे छोड़ दिया था, दोनों ही धनुर्वेद विद्याकी अन्तिम सीमापर पहुँच चुके थे। कर्णिका खुरपी कण्णरिय कवच टूट-फूट गये। सारथि लोट-पोट हो गया, अश्व आहत हो उठे। दोनोंने एक-दूसरेको रथ विहीन कर दिया। दोनों हाथियोंपर सवार हो गये। आकाशमें यम, धनद और इन्द्रने उन्हें साधुवाद दिया ॥१-९॥

[८]

पचोइया गइन्दया । मिलाविवालि-विन्दया ॥१॥
खयग्गि-पुञ्ज-दुस्सहा । गिरि व्व तुङ्ग-विग्गहा ॥२॥
वलाहय व्व गज्जिया । जियारि सारि-सज्जया ॥३॥
महल्ल-गिल्ल-गण्डया । धुणन्त-पुच्छ-दण्डया ॥४॥
करग्गि-खित्त-अम्बरा । कयम्बुवाह-डम्बरा ॥५॥
स-ढक्क दुक्क दुज्जया । झणज्झणन्त-गेज्जया ॥६॥
विवक्ख-तिक्ख-कण्टया । टणट्टणन्त-घण्टया ॥७॥
विसाण-भिण्ण-दिम्मुहा । रयग्गि-पुक्खराउहा ॥८॥

घत्ता

ताव कियन्तवत्त-भडेंण रिउ आहउ मत्तिएँ ।
पवणरथवणइँ दावियइँ णं सूरहों रत्तिएँ ॥९॥

[९]

जं लवणमहण्णउ णिहउ रणें । तं महुर-णराहिउ कुइउ मणें ॥१॥
आरुहिउ महा-रहें जुप्पि हय । उब्भविय-धवल-धुवन्त-धय ॥२॥
दुद्दम-णरिन्द-णिद्दारणहुँ । रहु भरिउ अणन्तहुँ पहरणहुँ ॥३॥
हय समर-भेरि अमरिस-चडिउ । स-रहसु कियन्तवत्तहों भिडिउ ॥४॥
'महु तणउ तणउ जिह णिहउ रणें तिह पहरु पहरु दिढु होहि मणें' ॥५॥
तहिँ अवसरें अन्तरें थिउ स-धणु । सइँ दसरह-णन्दणु सत्तहणु ॥६॥
ते भिडिय परोप्परु कुइय-मण । णं बे वि पुरन्दर-दहवयण ॥७॥
महि-कारणें परिवड्ढन्त-कलि णं भरह णराहिव-बाहुबलि ॥८॥

[८] महागजोंको उन्होंने प्रेरित कर दिया। भ्रमरमाला उनपर गूँज रही थी। वे मलयाग्निके समूहके समान दुःसह थे, पहाड़के समान विशालकाय थे, मेघोंके समान गरज रहे थे, शत्रुको जीतनेवाले, वे झूलसे सज्जित थे। मदसे उनके गंड-स्थल गीले थे। वे अपनी पूँछ हिला-डुला रहे थे। सूँडोंसे उन्होंने आसमानको छू लिया था। उन्होंने मेघोंके आटोपकी रचना-सी कर दी थी। गरजते हुए अजेय वे पहुँचे। झन-झनकी गीत-ध्वनि गूँज रही थी। तीखे तीरोंसे वे आहत हो रहे थे, घण्टोंकी टन-टन आवाज हो रही थी। दाँतोंसे उन्होंने दिशाओं-को विदीर्ण कर दिया था। दाँत, पैर और हाथ, उनके अस्त्र थे ॥८॥ इतनेमें कृतान्तवक्त्र सेनापतिने युद्धमें शक्तिसे शत्रुको ऐसा आहत कर दिया, मानो रातने सूर्यको अस्तकालीन पतन दिखाया हो ॥१-९॥

[९] लवणमहार्णवके इस प्रकार युद्धमें मारे जानेपर, राजा मधु क्रुद्ध हो उठा। वह महारथमें बैठ गया, अश्व जोत दिये गये। सफेद स्वच्छ पताका फहरा रही थी। दुर्दम राजाओं का दमन करनेवाले अनन्त अस्त्रोंसे रथ भर दिया गया। रण-की भेरी बज उठी। आवेशसे भरा हुआ राजा मधु वेगके साथ कृतान्तवक्त्रसे जा भिड़ा। उसने कहा, "मेरे बेटेको जिस प्रकार तुमने युद्धमें आहत किया है, आओ अब वैसे ही मुझपर प्रहार करो, अपना दिल मजबूत रखो।" ठीक इसी अवसरपर दशरथनन्दन शत्रुघ्न अपना धनुष लेकर दोनोंके बीचमें आकर खड़ा हो गया। कुपित मन, उन दोनोंमें जमकर लड़ाई होने लगी, मानो दोनों ही इन्द्र और दशवदन हों, मानो धरतीके लिए भरत और बाहुबलिमें लड़ाई हो रही हो।

घत्ता

विहि मि णिरन्तर-बावरणेँ सर-जालु पहावइ ।
विञ्झहोँ सज्झहोँ मज्झेँ थिउ घण-डम्बरु णावइ ॥९॥

[१०]

अवरोप्परु बाणेँहिँ छाइयउ । अवरोप्परु कह वि ण घाइयउ ॥१॥
अवरोप्परु कवयइँ ताडियइँ । अवरोप्परु चिन्धइँ फाडियइँ ॥२॥
अवरोप्परु छत्तइँ छिण्णाइँ । अवरोप्परु अङ्गइँ भिण्णाइँ ॥३॥
अवरोप्परु हयइँ सरासणाइँ । जल-थलइँ वि आयइँ स-स्वणाइँ ॥४॥
अवरोप्परु सारहि णिट्ठविय । स-तुरङ्गम जमउरि पट्ठविय ॥५॥
अवरोप्परु खण्डिय पवर रह । थिय मत्त-गइन्देँहिँ दुव्विसह ॥६॥
ते महुर-णराहिव-सत्तुहण । णं णहयल-लक्खण स-घण घण ॥७॥
णं केसरि गिरि-सिहरेँहिँ चडिय । णं रावण-राम समावडिय ॥८॥

घत्ता

बे वि स-पहरण सामरिस करिवरेँहिँ वलग्गा ।
मलय-महिन्द-महीहरेँहिँ णं वण-यव लग्गा ॥९॥

[११]

समुद्धाइया सिन्धुरा कुद्ध-लुद्धा । वलुत्ताल-दुक्काल-काल व्व कुद्धा ॥१॥
विमुक्कङ्कुसा उम्मुहा उद्ध-सोण्डा । स-सिन्दूर-कुम्भत्थला गिल्ल-गण्डा ॥२॥
मयम्भेंहिँ सिप्पन्त-पाय-प्पएसा । मिलन्तालि-माला-णिरुम्भी-कयासा ॥३
विसाणप्पहा-पण्डुरिज्जन्त-देहा । वलायावली-दिण्ण-सोह व्व मेहा ॥४॥
चलन्तेहि सञ्चालिओ सेस-णाओ । भमन्तेहिँ पब्भामिओ भूमि-माओ ॥५॥
गिरिन्दा समुद्दावलीभाव जाया । गइन्देसु तेसुट्ठिया बे वि राया ॥६॥

दोनोंके निरन्तर प्रहारसे तीरजाल ऐसा प्रवाहित हो उठा मानो हिमालय और विन्ध्याचलके बीचमें स्थित मेघ-प्रवाह हो ॥१-९॥

[१०] एक दूसरेने एक दूसरेको तीरोंसे ढँक दिया, परन्तु किसी प्रकार उन्हें आघात नहीं पहुँचा। एक दूसरेके कवच प्रताड़ित हो रहे थे, एक-दूसरेके ध्वज नष्ट कर रहे थे। एक-दूसरेके अंग छिन्न-भिन्न हो रहे थे, एक-दूसरेके धनुष आहत थे, जल-थल भी घावोंसे सहित थे। एक दूसरेने एक दूसरेके साथीको घायल कर दिया और अश्व सहित यमलोक भेज दिया, एक दूसरेके प्रवर रथ खण्डित हो गये। अब वे मतवाले हाथियोंपर बैठे हुए असह्य हो उठे। राजा मधु और शत्रुघ्न ऐसे लग रहे थे, मानो आकाशका अतिक्रम करनेवाले महामेघ हों, मानो दो सिंह गिरिशिखरपर चढ़ गये हों, मानो राम और रावणमें भिड़न्त हो गयी हो। दोनों ईर्ष्यासे भरे थे, दोनोंके पास अस्त्र थे, दोनोंके हाथमें तलवारें थीं। ऐसा जान पड़ता था कि मलय और महेन्द्र महीधरोंमें दावानल लग गया हो ॥१-९॥

[११] युद्धके लोभी महागज दौड़ पड़े। वे बलोद्धत महाकालकी तरह क्रुद्ध थे। विमुक्त अंकुश एकदम उन्मुख और सूँड उठाये हुए थे वे। उनके गीले गालोंवाले मस्तकपर सिन्दूर लगा था। अपने मदजलसे वे पासके वृक्षोंको सींच रहे थे, भ्रमरमालाओंने दिशाओंको नीरन्ध्र बना दिया था। दाँतोंकी कान्तिसे उनका शरीर ऐसा सफेद दिखाई दे रहा था, मानो बगुलोंकी कतारके साथ मेघमाला हो। उनके चलते ही शेष-नाग डिग गया। जब वे घूमते तो धरतीके भाग घूम जाते। बड़े-बड़े पहाड़ोंकी जगह समुद्र निकल आते। ऐसे उन महागजों

महा-मीसणा भू-कया-मङ्गुरच्छा । पमुक्केक्कमेक्काउहा विज्जु-दच्छा ॥७॥
करिन्देण ओहामिओ वारणिन्दो । कुमारेण ओहामिओ माहुरिन्दो ॥८॥

घत्ता

महु णाराय-कडन्तरिउ रुहिरारुणु गयवरेँ ।
पग्गुणेँ फुल्ल-पलासु जिह लक्खिज्जइ गिरिवरेँ ॥९॥

[१२]

अवसाणेँ कालु जं ढुक्कियउ । जं रहु-सुउ जिणेँवि ण सक्कियउ ॥१॥
जं सूलु ण दाहिण-करेँ चडिउ । जं पुत्तहोँ मरणु समावडिउ ॥२॥
तं परम-विसाउ आउ महुहेँ । 'मइँ ण किय पुज्ज तिहुअण-पहुहेँ ॥३॥
पञ्चेन्दिय दुद्दम दमिय ण वि । धम्म-क्रिय एक्क वि ण किय क वि ॥४॥
मइँ पावेँ पावासत्तएँण । णउ वन्दिय देव जियन्तएँण ॥५॥
संजोउ सव्वु को कहोँ तणउ । णिप्फलु जम्मु गउ महु तणउ ॥६॥
वरि एवहिँ सल्लेहणु करमि । वय पञ्च महा-दुद्धर धरमि' ॥७॥
तो एम भणेँवि णिग्गन्थु थिउ । सइँ हत्थेँ केसुप्पाडु किउ ॥८॥

घत्ता

'एक्कु जि जीउ महु तणउ सव्वहोँ परिहारउ ।
एणु जेँ तवोवणु जिणु सरणु गयवरु सन्थारउ' ॥९॥

[१३]

जे भव्व-जणहोँ सुह-वसुहारा । पुणु घोसिय पञ्च णमोक्कारा ॥१॥
अरहन्तहुँ केरा सत्त सरा । जे सव्वहुँ सोक्खहुँ पवमंपरा ॥२॥
पुणु सिद्धहुँ केरा पञ्च सरा । जे सासय-पुरवर-सिद्धियरा ॥३॥

पर वे दोनों राजा आरूढ़ हो गये। दोनों ही महाभयंकर थे। उनकी आँखें भूलतासे भकुर हो रही थीं, बिजलीकी तरह चमकते हुए वे एक दूसरेपर अस्त्रोंका निक्षेप कर रहे थे। महागजने वारणेन्द्रको परास्त किया और कुमारने राजा मधुको। तीरोंसे आहत, लोहू-लुहान मधु राजा गजवरपर ऐसा लग रहा था मानो फागुनके माहमें पहाड़पर पलाशका फूल खिला हो ॥१-९॥

[१२] अन्तिम समय जैसे काल आ पहुँचता है और मनुष्य कुछ नहीं कर पाता, उसी प्रकार राजा मधु रघुसुत शत्रुघ्नको नहीं जीत सका, जब पुत्र भी बेमौत मारा गया और शूल भी हाथमें नहीं आया तो इससे राजा मधुको गहरा विषाद हुआ, वह अपने आपमें सोचने लगा, 'मैंने त्रिभुवनके स्वामीकी पूजा नहीं की, मैंने दुर्दम पाँच इन्द्रियोंका दमन नहीं किया, कभी मैंने एक भी धर्म-क्रिया नहीं की, पापोंमें आसक्त मैंने जीते जी जिनदेवकी वन्दना नहीं की। यह संसार एक संयोग है, इसमें कौन किसका होता है, मेरा समूचा जीवन व्यर्थ गया, बस अब तो मैं सल्लेखना करूँगा, महान् कठोर पाँच महाव्रतोंको धारण करूँगा। यह कह कर उसने सब परिग्रह छोड़ दिया, उसने अपने हाथोंसे केशलोंच कर लिया। मेरा एक अकेला यह जीव है और सब कुछ दूसरा क्या है? यह रण मेरे लिए तपोवन है। मैं जिन भगवान्‌की शरणमें हूँ, गजवर ही मेरे लिए उपाश्रय है ॥१-९॥

[१३] जो भव्यजनोंके लिए धर्मकी शुभधारा है, उसने ऐसे पाँच णमोकार मन्त्रका उच्चारण किया, अरहन्तभगवान्‌के सात उन वर्णोंका उच्चारण किया जो सब सुखोंके आदि निर्माता हैं। फिर उसने सिद्ध भगवान्‌के पाँच वर्णोंका उच्चारण किया

आयरियहुँ केरा सच्च सरा । जे परमाचार-विचार-परा ॥४॥
सज्झायज्झाय-णमोक्करणा । णय साहुहुँ भव-भय-परिहरणा ॥५॥
इय पञ्चतीस परमक्खरइँ । सुय-पारावार-परम्परइँ ॥६॥
विस-विसम-विसय-णिद्दाडणइँ । सिवउरि-कवाड-उग्घाडणइँ ॥७॥
महु सुह-गइ देन्तु मणन्तु थिउ । कुञ्जरहों जें उप्परें कालु किउ ॥८॥

घत्ता

कुसुमइँ सुरेंहि विसज्जियइँ किउ साहुक्कारु ।
महुर सं इं भुञ्जन्तु थिउ सत्तुहणु कुमारु ॥९॥

●

[८१. एकासीइमो संधि]

वणु सेविउ सायरु कड्डियउ णिहउ दसाणणु रणपॅङ्गे ।
अवसाण-कालॅं पुणु राहवेंण वज्झिय सीय विरूवएँण ॥

[१]

कोयहुँ कन्दॅण तॅण तॅण तॅण चिरॅं ।
राहव-चन्दॅण तॅण तॅण तॅण चिरॅं ॥
पाण-पियल्लिया तॅण तॅण तॅण चिरॅं ।
जिह वणॅं घल्लिया तॅण तॅण तॅण चिरॅं ॥जंभेट्टिया ॥१॥
रामहों रामाकिड्डिय-गयहों । अमिय-रसोवम-भोगासयहों ॥२॥

जो शाश्वत सिद्धिको देते हैं, फिर उसने आचार्यके सात वर्णों-का उच्चारण किया जो परम आचरणके विचारक हैं, फिर उसने उपाध्यायके नौ वर्णोंका उच्चारण किया और सर्वसाधुओं-के नौ वर्णोंका उच्चारण किया जो संसारके भयको दूर करते हैं। इस प्रकार पैंतीस अक्षर जो शास्त्र रूपी समुद्रकी परम्पराएँ बनाते हैं, जो विषके समान विषम विषयोंका नाश करते हैं और जो मोक्ष नगरीके द्वारोंका उद्घाटन करते हैं, वे मुझे शुभ-गति प्रदान करें, यह कहकर वह आत्मध्यानमें स्थित हो गया। उसका शरीरान्त गजवरपर ही हो गया। देवताओंने सुमन बरसाये और साधुवाद किया, कुमार शत्रुघ्न भी मथुरा नगरी-का स्वयं उपभोग करने लगा ॥१-९॥

●

इक्यासीवीं सन्धि

राम जब अनुरक्त थे तो उन्होंने वनवास स्वीकार किया, समुद्र लाँघा और रावणका वध किया, परन्तु अन्तमें वही राम विरक्त हो उठे और सीता देवी का परित्याग कर दिया।

[१] सच बात तो यह है कि उनका मन विरक्त हो उठा था, फिर भी सीताका परित्याग किया लोकापवादके बहाने। राघवने मनकी विरक्तिके कारण ही सीताका परित्याग किया। इसी विरक्त चित्तके कारण उन्होंने अपनी प्राणप्यारी सीता देवीका परित्याग किया। यह वही विरक्त मन था कि सीता देवीको इस प्रकार वनमें निर्वासित कर दिया। एक दिन सौन्दर्य विधात्री सीता देवी रामके पास पहुँची जब रामके पास जो अद्भुत

एक्कहिँ दिवसेँ मणोहर-गारी । पासेँ परिट्ठिय सीय भडारी ॥१॥
जाणिय-णिरवसेस-परमत्थी । पभणइ पणय-कियञ्जलि-हत्थी ॥२॥
'णाह णाह जग-मोहण-सत्तिहिँ । सुहणउ अज्जु दिट्ठु मइँ रत्तिहिँ ॥३॥
पुप्फ-विमाणहोँ पडेँ वि पहिट्ठउ । सरह-जुअलु महु वयणेँ पइट्ठउ' ॥४॥
तो सज्जण-मण-णयणाणन्दें । हसिउ स-विब्भमु राहवचन्दें ॥७॥
'तुह होसन्ति पुत्त परमेसरि । परणर-वरणर-वारण-केसरि ॥८॥
णवर एक्कु महु हियएं चडियउ । सुन्दरि सरह-जुअलु जं पडियउ ॥९॥

घत्ता

तो अण्णेंहिँ दिवसेंहिँ थोवएँहिँ सीयहेँ गुरुहाराइँ ।
'सहि णीसरु' णं वण देवयएँ पट्ठवियइँ हक्काराइँ ॥१०॥

[२]

॥जंभेट्टिया॥ रहुवइ-घरिणिया जिह वणें करिणिया ।
मल्हण-लीकिया कीलण-सीलिया ॥१॥
वलु बोल्लावइ णरवर-केसरि । 'को दोहलउ अक्खु परमेसरि' ॥२॥
विहसिय वियसिय-पङ्कय-वयणी । दन्त-दित्ति-उज्जोइय-गयणी ॥३॥
'बल भवकामल-केवल-णाहहोँ । जाणमि पुज्ज रयमि जिणणाहहोँ' ॥४॥
पिय-वयणेण तेण साणन्दें । परम पुज्ज किय राहव-चन्दें ॥५॥
दिव्व-महिन्द-कुसुम-णन्दण-वणेँ । तरल-तमाल-ताल-ताली-घणेँ ॥६॥
चन्दण-वउल-तिलय-कुसुमाउलेँ । कल-कोइल-कुल-कलयल-सङ्कुले ॥७॥
दाडिम-पवणन्दोलिय-सहयरेँ । भमिर-भमर-झङ्कार-मणोहरेँ ॥८॥
धय-तोरण-विमाण-किय-मण्डवेँ । फेन्द-वन्द-सङ्कन्दिय-तण्डवेँ ॥९॥

रसोंका उपभोग करनेमें गहरी अभिरुचि रखते थे और जो शरीरसे रमणियोंके रमणमें निपुण और समर्थ थे। सीता देवी निरवशेष भावसे परमार्थको जानती थीं, फिर भी उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर रामसे पूछा, "हे स्वामी, हे स्वामी, जगको मोहने-में समर्थ, आजकी रातमें मैंने एक सपना देखा है कि पुष्पक विमानसे गिरकर एक सरह (हाथीका बच्चा) जोड़ा मेरे मुँहमें घुस गया है"। यह सुनकर सज्जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्द देने वाले रामने विलासके साथ हँसकर कहा, "परमेश्वरी, शत्रु और श्रेष्ठ नररूपी गजोंके लिए सिंहके समान दो वीर पुत्रोंको तुम जन्म दोगी, और जो सरह युगल गिर गया है, उसका अर्थ है कि वे दोनों मेरे हृदयको जीत लेंगे।" उसके बाद थोड़े ही दिनोंमें सीता देवीके अंग भारी हो गये। और मानो वनदेवीने आकर, 'हे सखी चलो', यह हाँक मचा दी ॥१-१०॥

[२] रामकी गृहिणी, सीता, जैसे वनमें हथिनी! मल्हाती हुई और क्रीड़ाएँ करती हुई। नरश्रेष्ठ रामने पूछा, "हे देवी बताओ तुम्हें कौन सा दोहला है,"। यह सुनकर सीता देवीका मन खिल गया। दाँतोंकी चमकसे आसमान चमक उठा। हँसते हुए वह बोलीं,"मैं एकमात्र जिन भगवान्‌की पूजा करना चाहती हूँ जो धवल निर्मल और पवित्र हैं,।" तब रामने अपनी प्रिय पत्नीकी इच्छाके अनुसार रामके (नंदनवनमें) जिन भगवान्‌की सानंद परम पूजा की। नंदनवनमें बड़े-बड़े वृक्ष थे, ताल तमाल और ताली वृक्षोंसे सघन, चन्दन, मोलश्री और तिलक पुष्पोंसे आकुल, सुन्दर कोयलोंकी कल-कल ध्वनिसे संकुल। दक्षिण पवनसे जिसमें वृक्ष आन्दोलित थे, और घूमते हुए भौंरोंकी झंकारसे मनोहर। जिसमें ध्वज, तोरण और विमानों से मंडप बने हुए थे, नृत्यकारों ने अपने नृत्यसे समा बाँध रखा था। ऐसे

घत्ता

तहिँ तेहएँ उववणेँ पइसरेँवि जय-जय-सद्दँ पुज्ज किय ।
जिह जिणवर-धम्महोँ जीव-दय आणइ रामहोँ पासेँ थिय ॥१०॥

[३]

॥ जंभेट्टिया ॥ ताव विणीयहे फन्दइ सीयहे ।
दुक्खुक्कोयणु दाहिणु लोयणु ॥१॥
'फुरेँवि आसि पइँ पर-दुग्गेज्झहेँ । तिण्णि मि णीसारियइँ अउज्झहेँ ॥२॥
थियइँ विदेसेँ देसु भमन्तइँ । दुस्सह-दुक्ख-परम्पर-पत्तइँ ॥३॥
रण-रक्खसेँण गिलेँवि उग्गिलियइँ । कह वि कह वि पिय-गोत्तहो मिलियइँ ॥४॥
एवहिँ एउ ण जाणहुँ इक्खणु । काइँ करेसइ फुरेँवि अ-लक्खणु' ॥५॥
तो एत्थन्तरेँ साहुक्कारेँ । आइय पय असेस कूवारेँ ॥६॥
'अहोँ रायाहिराय परमेसर । णिम्मल-रहुकुल-णहयल-ससहर ॥७॥
दुद्दम-दणुअ-देह-भय-मद्दण तिहुअण-जण-मण-णयणाणन्दण ॥८॥
अइ अवराहु णाहिँ पर-धारा । तो पट्टणु विणासइ सयला ॥९॥

घत्ता

पर-पुरिसु रमेवि दुम्महिलउ देन्ति पडुत्तर पइ-यणहोँ ।
"किं रामु ण भुञ्जइ जणय-सुअ वरिसु वसेँवि घरेँ रावणहोँ" ॥१०॥

[४]

॥ जंभेट्टिया ॥ पय-परिवाएणं मोक्कार-वाएणं ।
णं सिरेँ आहउ रहुवइ-णाहउ ॥१॥
चिन्तइ मउलिय-वयण-सरोरुहु । वसुह णिहन्तु अन्तु हेट्ठा-मुहु ॥२॥
'विणु पर-तत्तिएँ को वि ण जीवइ । सइँ विणट्ठु अण्णाइँ पदीवइ ॥३॥

उस सुहावने उपवनमें प्रवेश करके उन्होंने 'जय जय' शब्दके साथ पूजा की। रामके समीप सीता देवी उसी प्रकार स्थित थीं जैसे जिनधर्ममें जीवदया प्रतिष्ठित है ॥१-१०॥

[३] ठीक इसी समय फड़क उठी सीता देवीकी दुःख उत्पन्न करने वाली दायीं आँख! वह अपने मनमें सोचती है कि एक बार पहले जब यह आँख फड़की थी तब इसने हम तीनोंका शत्रुसे अनाक्रान्त अयोध्यासे निर्वासन किया था, और तब विदेशमें देश-देश भटकते हुए असह्य दुःख झेलते रहे। उसके बाद युद्धका राक्षस हमें निगल ही चुका था कि उसने किसी तरह हमें उगल दिया और हम अपने कुटुम्बसे मिल सके। लेकिन इस समय फिर आँख फड़क रही है, नहीं मालूम क्या होगा? ठीक इसी समय वृक्षकी डालें अपने हाथमें लेकर प्रजा राज-भवनके द्वारपर आयी। उसने कहा, "हे परम परमेश्वर राम, आप रघुकुल रूपी पवित्र आकाशमें चन्द्रमाके समान हैं; फिर भी यदि आप स्वयं इस अपराधका अपने मनमें विचार नहीं करते तो यह अयोध्या नगर आपसे निवेदन करना चाहेगा। खोटी स्त्रियाँ खुले आम दूसरे पुरुषोंसे रमण कर रहीं हैं; और पूछने पर उनका उत्तर होता है कि क्या सीता देवी वर्षों तक रावणके घर पर नहीं रहीं और क्या उसने सीता देवीका उपभोग नहीं किया होगा।" ॥१-१०॥

[४] प्रजाके इन दुष्ट शब्दोंको सुनकर रामको लगा जैसे मोंगरोंकी चोट उनके सिरपर पड़ी हो। उनका मुख कमल मुरझा गया। वह विचारमें पड़ गये नीचा मुख किये, वे धरती देख रहे थे और सोच रहे थे कि दूसरोंकी चिन्ताके बिना संसारमें कोई नहीं जी सकता; आदमी स्वयं नष्ट होता है

कोव सहावें दुप्परिपालउ । विसम-चित्तु पर-छिद्द-णिहालउ ॥४॥
भीम-भुअङ्गु भुअङ्गागारउ । पगुण-गुणुज्झिउ अवगुण-गारउ ॥५॥
कह सह जइ णरवइ णउ भावइ । अवसें किं पि कलङ्कउ लावइ ॥६॥
होइ हुआसणो व्व अविणीयउ । णिम्बु व सुट्ठु अणिच्छिय-सीयउ ॥७॥
चन्दु व दोस-गाहि सइ स-रयउ । सूरु व कर-चण्डउ दूर-त्थउ ॥८॥
वाणु व कोह-फलु गुण-मुक्कउ । विन्धणसीलउ धम्महों चुक्कउ ॥९॥

घत्ता

जइ कइ वि णिरङ्कुस होइ पय तो हत्थि-हडहँ अणुहरइ ।
जो कवलु देइ जलु दक्खवइ तासु जें जीविउ अवहरइ ॥१०॥

[५]

॥ जंभेट्टिया ॥ अह खल-महिलहे णइ जिह कुडिलहे ।
को पत्तिज्जइ जइ वि मरिज्जइ ॥१॥
अण्णु णिएइ अणु अणु बोल्लावइ । चिन्तइ अण्णु अण्णु मणें भावइ ॥२॥
हियवइ णिवसइ विसु हालाहलु । अमिउ वयणें दिट्ठिहें जमु केवलु ॥३॥
महिलहें तणउ चरिउ को जाणइ । उभय-तडइँ जिह खणइ महा-णइ ॥४॥
चन्द-कल व सव्वोवरि वङ्की । दोस-गगाहिणि सइँ स-कलङ्की ॥५॥
णव-विज्जुलिय व चञ्चल-देही । गोरस-मन्थ व कारिम-णेही ॥६॥
वाणिय-कक कवडड्डिय-माणी । अडइ व गरुआसङ्का-थाणी ॥७॥

और दूसरेको उत्तेजित करता है; लोक स्वभावसे ही अपरिपालनीय है, उसका मन विषम होता है, वह हमेशा दूसरोंकी बुराई देखता है, महासर्पकी तरह वह भयंकररूपसे वक्र होता है, महागुणोंसे दूर, दूसरोंका बुरा करनेवाला। लोगोंको कवि, यति सती और राजा अच्छे नहीं लगते, वे उनमें कोई न कोई कलंक अवश्य लगा देते हैं, लोग आगके समान अविनीत, और ग्रीष्मकालकी तरह सीय (ठंड और सीता देवी) को पसन्द नहीं करते। वे चन्द्रमाके समान केवल दोष ग्रहण करते हैं, उसीकी तरह क्षयशील और आकाशके समान शून्यमें विचरण करनेवाले तीर फलककी तरह, उनमें लोह (लोहा और लोभ) होता है; वे गुणों (गुण और डोरी) से मुक्त होते हैं, विध्वंसशील और धर्मसे हीन। जनता यदि किसी कारण निरंकुश हो उठे तो वह हाथियोंके समूहकी तरह आचरण करती है; जो उसे भोजन और जल देता है, वह उसीको जानसे मार डालती है। ॥१-१०॥

[५] या नदीकी तरह कुटिल महिलाका कौन विश्वास कर सकता है? भले ही दुष्ट महिला मर जाय, पर वह देखती किसी को है और ध्यान करती है किसी दूसरेका। पसन्द करती है किसी दूसरेको। उसके मनमें जहर होता है, शब्दोंमें अमृत और दृष्टिमें यम होता है, स्त्रीके चरितको कौन जानता है, वह महानदीकी तरह दोनों कूलोंको खोद डालती है। चन्द्रकलाके समान सबपर टेढ़ी नजर रखती है, दोष ग्रहण करती है, स्वयं कलंकिनी होती है, नयी बिजलीकी तरह वह चंचल होती है, गोरस मन्थनकी तरह कालिमासे स्नेह करती है, सेठोंके समान कपट और मान रखती है, अटवीके समान आशंकाओंसे भरी

णिहि व पमत्तें परिरक्खेवी । गुळहिय-खीरि व कहों वि ण देवी'।।८।।
अप्पाणेण जें अप्पउ वोहिउ । 'वरि भव सीय म खोउ विरोहिउ ।।९।।

घत्ता

णिय-णेह-णिवद्धउ आवडइ जइ वि महा-सइ मड्डु मणहों ।
को फेडेंवि सक्कइ कल्लणउ जं घरें णिवसिय रावणहों' ।।१०।।

[६]

।। जंभेट्टिया ।। ताव जणद्दणु णाइँ हुआसणु ।
घिएँण व सित्तउ झत्ति पलित्तउ ।।१।।
कड्ढिउ सूरहासु करें णिम्मलु । विज्जु-विलासु जलणु जालुज्जलु ।।२।।
'दुज्जण-मइयवट्टु हउँ अच्छमि । जो जम्पइ तहों पलउ समिच्छमि ।।३।।
जं किउ खरहों महा-खल-खुद्दहों । जं किउ रणें रावणहों रउद्दहों ।।४।।
तं करेमि दुज्जणहँ हयासहँ । कुडिल-भुअङ्ग-भङ्ग-सङ्कासहँ ।।५।।
जो चल्लावइ सीय महा-सइ । णाम-ग्गहणें जाहें दुहु णासइ ।।६।।
जा सुरवरेंहिं पइज्जय वुच्चइ । जाहें पसाएं वसुमइ पच्चइ ।।७।।
जाहें पहावें रहु-कुलु णन्दइ । पलयहों पिसुणु जाउ जो णिन्दइ ।।८।।
जाहें पाय-पंसु वि वन्दिज्जइ । ताहें कलङ्कु केम लाइज्जइ ।।९।।

घत्ता

जो रूसइ सीय-महासइहें सो मुहु भग्गएँ थाउ खलु ।
तहों पावहों विरसु रसन्ताहों खुडमि स-हत्थें सिर-कमलु' ।।१०।।

हुई होती है, निधिके समान वह प्रयत्नोंसे संरक्षणीय है; गुड़ और घीकी खीरकी भाँति वह किसीको भी देने योग्य नहीं है।" रामने इस प्रकार जब अपने आपको सम्बोधित किया तो उन्हें लगा कि सीता चली जाय, परन्तु प्रजाका विरोध करना ठीक नहीं। सीतादेवी, यद्यपि घोर संकटमें भी अपने स्नेहसूत्रमें बँधी रही है और मेरा मन कहता है कि वह महासती है, फिर भी इस प्रवादको कौन मिटा सकता है कि सीता रावणके घर रही ॥१-१०॥

[६] तब जनार्दन एकदम उबल पड़ा, मानो घी पड़नेसे आग भड़क उठी हो। उसने अपनी पवित्र सूर्यहास तलवार निकाल ली जो बिजलीके विलास या लपटोंसे चमकती हुई आगके समान थी। उसने कहा, "मैं दुष्टोंका अहंकार चूर-चूर कर दूँगा, जो बुरी बात कहेगा उसके लिए मैं प्रलय हूँ ? महान् दुष्ट क्षुद्र खरके साथ मैंने जो कुछ किया और रावणके साथ भयंकर युद्धमें किया वही मैं उन दुष्टोंके साथ करूँगा, जो कुटिल भुजंगोंके समान वक्र अंगवाले हैं, जिसका नाम लेनेसे दुःख नष्ट हो जाता है, देवताओंने जिसके पातिव्रत्यकी घोषणा की, जिसके प्रसादसे यह धरती आश्वस्त है जिसके कारण ही रघुनन्दन सानन्द हैं, उस सीतादेवीकी जो निन्दा करेगा, मैं उसके लिए यमका दूत हूँ। लोग जिसके चरणोंकी धूलकी वन्दना करते हैं, उसे कौन कलंक लगाया जा सकता है ? महासती सीतादेवीके प्रति जो दुष्ट सन्देह रखता है वह मेरे सामने आकर खड़ा हो, उसका सिर रूपी कमल मैं अपने हाथसे खोंट लूँगा" ॥ १-१० ॥

[७]

॥ जंभेट्टिया ॥ चरिउ जणद्दणु रहुवइ-णाहेँणं ।
जउणा-वाहु व गङ्गा-वाहेँणं ॥१॥
'जइ समुद्द णिय-समयहोँ चुक्कइ । तो तहोँ को सवडम्मुहु ढुक्कइ ॥२॥
जइ वि डहन्ति णिमित्तें कन्दहँ । तो वि ण रूसइ विञ्झु पुलिन्दहँ ॥३॥
चन्दणु छिज्जइ भिज्जइ घासइ । तो इ ण णियय-गन्धु तहोँ णासइ ॥४॥
दन्तु दलिज्जइ पावइ कप्पणु । तो वि ण मुअइ णियय-धवलत्तणु ॥५॥
पय णरवइहिं णएण लएवी । दुम्मुह जइ वि तो वि पालेवी' ॥६॥
तो विण्णविउ कुमारें राहवु । 'अहोँ परमेसर परम-पराहवु ॥७॥
जं अणवउ णिय-णाहु ण पुच्छइ । कहु-पसरु राय-उलु दुगुञ्छइ ॥८॥
रहु-कउत्थ-अणरण्ण-विरामेंहिं । दसरह-भरह-णराहिव-रामेंहिं ॥९॥

घत्ता

इक्खुक्क-वंसें उप्पण्णएँहिं सव्वेंहिं पालिउ पुरु अचलु ।
तहोँ पय-उवयारें-महद्दुमहोँ लद्धु भडारा परम-फलु' ॥१०॥

[८]

॥ जंभेट्टिया ॥ हरि बुज्झाविउ केम वि रामेंणं ।
हलु वि ण मावइ सीयहेँ णामेणं ॥१॥
'एत्थु वच्छ अवहेरि करेवी । जणय-तणय वणें कहि मि थवेवी ॥२॥
जीवउ मरउ काइँ किर तत्तिए । किं दिणमणि सहुँ णिवसइ रत्तिएँ ॥३॥
मं रहु-कुलें कलङ्कु उप्पज्जउ । तिहुअणें अयस-पडहु मं वज्जउ' ॥४॥
आउ णिरुत्तरु कइकइ-णन्दणु । लहु सेणाणी ढोइउ सन्दणु ॥५॥
देवि चडाविय णिय-परिएसहोँ । पेक्खन्तहोँ पुरवरहोँ असेसहोँ ॥६॥

[७] तब रामने लक्ष्मणको पकड़ लिया, वैसे ही जैसे यमुनाके प्रवाहको गंगाका प्रवाह रोक लेता है। यदि समुद्र अपनी मर्यादा तोड़ दे, तो कौन उसके सम्मुख ठहर सकता है। यद्यपि कोल, शबर प्रतिदिन कन्द-मूल उखाड़ा करते हैं, फिर भी विन्ध्याचल क्रोध नहीं करता। लोग चन्दनको काटते हैं, टुकड़े-टुकड़े करते हैं, घिसते हैं, फिर भी अपनी धवलता नहीं छोड़ता, जब राजा लोग प्रजाको न्यायसे अंगीकार कर लेते हैं, वह बुरा-भला भी कहे, तब भी वे उसका पालन करते हैं।" यह सुनकर कुमार लक्ष्मणने राघवसे प्रतिवेदन किया—"अरे परमेश्वर, यह बहुत बड़े अपमानकी बात है, जो जनपद अपने ही स्वामीकी इज्जत नहीं करता, प्रसिद्ध यशवाले राजकुलकी ही निन्दा करता है। रघु, काकुत्स्थ, अणरण्ण, विराम, दशरथ, भरत और राम आदि—जो भी महापुरुष इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए हैं उन सबने इस महानगरीका प्रतिपालन किया है। हे आदरणीय, उनके उस प्रजोपकाररूपी वृक्षका परमफल हमने पा लिया ॥१-१०॥

[८] इस प्रकार रामने किसी तरह लक्ष्मणको समझा-बुझा लिया। परन्तु अब उन्हें सीताका नाम तक अच्छा नहीं लगता था। उन्होंने कहा, "हे भाई, तुम इसे दूर करो, जनकतनयाको कहीं भी वनमें छोड़ आओ। चाहे वह मरे या जिये, उससे अब क्या? क्या दिनमणिके साथ रात रह सकती है। रघुकुलमें कलंक मत लगने दो, त्रिभुवनमें कहीं अयशका डंका न पिट जाय।" यह सुनकर कैकेयीका पुत्र लक्ष्मण निरुत्तर हो गया। वह सेनानी शीघ्र रथ ले आया। अपनी-अपनी सीमामें स्थित अशेष नागरिकोंके देखते-देखते उसने देवी सीताको रथपर

धाहाविउ कोसलएँ सुमित्तएँ । सुप्पहाएँ सोआउर-चित्तएँ ॥७॥
णायरिया-यणेण उक्कण्ठें । 'केव विओइय दइवें दुट्ठें ॥८॥
घरु विणट्ठु खल-पिसुणहुँ छन्दें । धि-धि अजुत्तु किउ राहवचन्दें ॥९॥

घत्ता

किं माणुस-जम्में लद्धएँण इट्ठ-विओय-परम्परेंण ।
वरि जाय णारि वणें वेल्लडिय जा णवि मुच्चइ तरुवरेंण' ॥१०॥

[९]

॥ जंभेट्टिया ॥ ताव तुरङ्गेंहिं णिउ रहु तेत्तहे ।
विषण महाडइ दारुण जेत्तहे ॥१॥
जेत्थु सज्जज्जुणा धाइ-धव-धम्मणा । ताल-हिन्ताल-ताली-तमालञ्जणा ॥२॥
खिज्जिणी चम्पयं चूअ-चवि-चन्दणा । वंसु विसु वउलं वउल-वड-वन्दणा ॥३॥
तिमिर-सल्लइ तरल-तालूर-तामिच्छयं । सिम्बली सल्लइ सेलु सत्तच्छयं ॥४॥
णाग-पुण्णाग-णारङ्ग-णोमालियं । कुन्द-कोरण्ट-कप्पूर-कक्कोलयं ॥५॥
सरल-समि-सामरी-साल-सिणि-सीसवं । पाडली फोफली केअई वाहवं ॥६॥
माहवी-मड्ड-मालूर-वहुमोक्खयं । सिन्दि-सिन्दूर-मन्दार-मट्टुक्खयं ॥७॥
णिम्ब-कोसम्ब-जम्बीर-जम्बू वरं । खिज्जूणी राइणा तोरणी तुम्बरं ॥८॥
णालिकेरी करीरी करञ्जाकणं । दाडिमी देवदारु-क्कयंवासणं ॥९॥

घत्ता

जं जेण जेम्ब कम्मउ कियउ तं तहों तेम्ब समावडइ ।
किं रक्खहों टालें वि जणय-सुअ दइवें णिज्जइ तं अडइ ॥१०॥

[१०]

॥ जंभेट्टिया ॥ सइहेँ वि होन्तिहे लक्खणु काइउ ।
सव्वहों विलसइ कम्मु पुराइउ ॥१॥
जत्थ दंस-मसयं भयङ्करं । सीह-सरहयं णक्कु-सूयरं ॥२॥
णाय-णउलयं कायकोलुहं । हत्थि-अजयरं दव-महीरुहं ॥३॥

चढ़ा लिया। कौशल्या और सुमित्रा शोकसे व्याकुल होकर रो पड़ीं। नगरकी स्त्रियाँ भी उत्कंठित होकर कह उठीं, "दुष्ट दैवने यह कैसा वियोग कराया। दुष्ट चुगलखोरों के कपट से घर नष्ट हो गया। रामचन्द्र ने धिक्कार योग्य अयुक्त किया। उस मनुष्य-जन्मको पाकर क्या करें, जिनमें प्रिय-वियोगकी परम्परा-सी बँध जाती है। इससे अच्छा तो यह है कि हम किसी वनकी लता बन जायँ, कमसे कम उसका वृक्षसे वियोग तो नहीं होता"॥१-१०॥

[६] थोड़ी देरमें अश्व अपने रथको वहाँ ले गये, जहाँपर भयंकर घना जंगल था। उसमें सज्जन, अर्जुन, धाय, धव, धामन, ताल, हिंताल, ताली, तमाल, अंजन, इमली, चम्पक, आम्र, चवि, चन्दन, बाँस, विष, बेंत, बकुल, वट, वन्दन, तिमिर, तरल, तालूर, ताम्राक्ष, सिंभली, सल्लकी, सेल, सप्तच्छद, नाग, पुंनाग, नारंग, नोमालिय, कुंद, कोरंद, कपूर, कक्कोल, सरल, समी, सामरी, साल, शिनि, शीशा, पाडली, पोडली, पोफली, केतकी, वाहव, माधवी, मडवा, मालूर, बहुमोक्ष, सिन्दी, सिन्दूर, मंदार, महुआ, नीम, कोसम, जम्बीर, जामुन, खिंखणी, राइणी, तोरिणी, तुम्बर, नारियल, करीरी, करंजाल, दामिणी, देवदार, कृतवासन आदि वृक्ष थे। जो जैसा कर्म करता है, उसका उसे वैसा ही फल मिलता है। यदि ऐसा नहीं है, तो फिर, सीता देवी को राज्य से हकालकर दैवने अटवीमें कैसे निर्वासित कर दिया॥१-१०॥

[१] सती होते हुए भी उसे लांछन लगा दिया, इससे साफ़ है कि सबको पूर्व जन्ममें किये कर्म भोगने पड़ते हैं। सारथिने उस भयंकर अटवीमें सीतादेवी को छोड़ दिया। उसमें भयंकर डास और मच्छर थे, सिंह, शरभ, मगर और सुअर थे। नाग, बकुल, काक, उल्लू, हाथी, अजगर और दवके पेड़

दब्भ-सीर-कुस-कास-सुअयं । पवण-पडिय-तरु-पण्ण-पुअयं ॥४॥
बिडव-णिहस-खुण्णुग्ग-मच्छियं । किमि-पिपोलि-उद्देहि-विच्छियं ॥५॥
हीर-खुण्ट-कण्टय-णिरन्तरं । सिल-खडक्क-पत्थर-णिरन्तरं ॥६॥
तहिं महा-वणे परम-दारुणे । सीह-पहय-गय-सोणियारुणे ॥७॥
अच्छहल्ल-पइडल्ल-भीसणे । सिव-सियाल-अलियल्लि-मी(?णी)सणे ॥८
मुक्क तेत्थु सूएण जाणई । 'मज्झु ण दोसु रहुवइ जें जाणई ॥९॥

घत्ता

वरि विसु हालाहउ भक्खियउ वरि जम-लोउ णिहालियउ ।
पर-पेसण-मायणु दुह-णिलउ सेवा-धम्मु ण पालियउ ॥१०॥

[११]

॥ जम्भेट्टिया ॥ दुप्परिपाकउ ओलिय-संसउ ।
आण-वडिच्छउ विछिय-संसउ ॥१॥
सेवा-धम्मु होइ दुज्जाणउ । पहु-पेक्खेवउ वग्ग-समाणउ ॥२॥
भोयणें सयणें मन्तें एक्कन्तएँ । मण्डल-जोणि-महण्णव-चिन्तएँ ॥३॥
जहिं अत्थाणु णिबन्धइ राणउ । तहिं पाइक्कु जइ वि पोराणउ ॥४॥
णउ बइसणउ ण बद्धउ जीवणु । ण करेवउ कयावि णिट्ठीवणु ॥५॥
पाय-पसारणु हत्थप्फालणु । उब्भालवणु सम्मुह-णिहालणु ॥६॥
हसणु भसणु पर-आसण-पेल्लणु । गत्त-भङ्गु मुह-जम्भा-मेल्लणु ॥७॥
णउ णियडएँ ण दूरें बइसेवउ । रत्त विरत्त-चित्तु जाणेवउ ॥८॥
अग्गल पच्छल परिहरिएव्वी । जिह दूसइ तिह सेव करेवी ॥९॥

थे। दर्भ, सीर, कुस, कास और मूँज थी। हवासे गिरे हुए बहुत-से पेड़-पत्तोंके ढेर पड़े हुए थे। पेड़ोंके घर्षणसे आग लग रही थी। कीड़ों, चीटियों और दीमकोंसे वह अटवी भरी हुई थी। डाभ, ठूँठ और काँटोंसे वह बिछी हुई थी। शिला पत्थर और चट्टान के ही उसमें बिस्तर थे। महाभयंकर जंगलमें, जो सिंहोंसे आहत गजरक्तसे लाल-लाल हो रहा था, जो रीछ और पानी वाले साँपों से भीषण था, शिव, शृगाल, बाघ से भयंकर था, सारथिने सीताको छोड़ दिया और कहा, "हे देवी, राम ही जान सकते हैं, इसमें मेरा दोष नहीं है। हलाहल विष पी लेना अच्छा, यमकी दुनिया में चला जाना अच्छा, परन्तु ऐसे सेवाधर्मका पालन करना अच्छा नहीं जिसमें दूसरोंकी आज्ञाओंका दुखदायी पात्र बनना पड़ता है ॥१-१०॥

[११] उसमें हमेशा प्राणोंका डर बना रहता है, दूसरोंकी आज्ञाका सम्मान करना पड़ता है, अपना मस्तक बिका होता है। सचमुच सेवाधर्म पालन करना बड़ा कठिन है, सेवाधर्म खोटे यानकी भाँति होता है। इसमें राजा बाधके समान देखता है। भोजन, शयन, मन्त्रणा, मण्डल, योनि और समुद्रकी चिन्तामें राजा सेवककी ओर ही देखता है। जहाँ राजदरबार बैठा होता है, वहाँ भी सेवक चाहे जितना पुराना हो, वह बैठ नहीं सकता, उसका जीवन बड़ा नहीं होता, वह थूक तक नहीं सकता, पैर पसारना, हाथ ऊँचे करना, चलना, सब ओर देखना, हँसना, बोलना, दूसरेका आसन ले जाना-आना, शरीर मोड़ना, जँभाई लेना भी उसके लिए दूभर होता है। न वह स्वामीके निकट रह सकता है और न दूर। वह उसके रक्त-विरक्त हृदयको पहचान लेता है। आगा-पीछा छोड़

घत्ता

पणवेप्पिणु वम्फइ वड्डिमहें सिद्ध विण्णिणइ जिण्वाहों ।
सोक्खहों अणुदिणु पेसणु करेंवि णवरि ण एक्कु वि सेवाहों' ॥१०॥

[१२]

॥ जंभेट्टिया ॥ एम भणेप्पिणु रहु पल्लट्टिउ ।
समुहु अउज्झहें सूउ पयट्टिउ ॥१॥
वार-वार तहें दिण्णु विसेसणु । 'जामि माएँ महु एत्तिउ पेसणु' ॥२॥
जं असहेज्जी मुक्क वणन्तरें । मुक्कउ एन्ति जन्ति तहिं अवसरें ॥३॥
धाहाविउ उक्कण्ठुल-भावएँ । 'कम्मु रउद्दु कियउ मइँ पावएँ ॥४॥
भग्गुडु सारस-जुअलु विओइउ । चक्कवाय-मिहुणु व विच्छोइउ ॥५॥
अम्मइँ लग्गेंवि दुक्खहँ भायण । हा भामण्डल हा णारायण ॥६॥
हा सत्तुहण णाहि मज्झीसहि । हा जणेरि हा जणण ण दीसहि ॥७॥
हा हय-विहि हउँ काइँ विओइय । सिव-सियाल-सद्दूलहँ ढोइय ॥८॥
हा हय-विहि तुहुँ काइँ विरुद्धउ । जेण रामु महु उप्परें कुद्धउ ॥९॥

घत्ता

वरि तिण-सिह वरि वणेँ वेल्लडिय वरि सिल तोयहुँ पाण-पिय ।
दूहव-दुरास-दुह-भायणिय णउ मइँ जेही का वि तिय ॥१०॥

[१३]

॥ जंभेट्टिया ॥ जलु थलु वणु तिणु भुवणु विचित्तउ ।
जं जि णिहालमि तं जि पलित्तउ ॥१॥
भणु भणु भाणु भाणु भू-भावणु । अइ मइँ मणेंण समिच्छिउ रावणु ॥२॥
वणसइ तुहु मि णाव तहिं होन्ती । अइयहुँ णिय णिसियरेंण रुवन्ती ॥३॥

कर, वह इस प्रकार सेवा करता है कि वह सन्तुष्ट हो जाय। महान् सीतादेवीको प्रणाम कर, सारथिने फिर कहा, "सेवामें जीनेके लिए सिर बेचना पड़ता है, सुखके लिए, आदमी प्रतिदिन सेवा करता है, परन्तु उसे उसमें एक भी सुख नहीं मिलता" ॥१-१०॥

[१२] यह कहकर उसने रथ लौटा लिया। सूतने अब अयोध्याके लिए प्रस्थान किया। बार-बार उसने कहा, "हे माँ, मैं जाऊँ, मुझे इतना ही आदेश दिया गया है। सीतादेवी वनमें इस प्रकार छोड़ा जाना सहन नहीं कर सकी। उस समय, उसे मूर्छा आती और चली जाती। वह जोर-जोरसे रो पड़ी "मुझ पापिनने पिछले जन्ममें कोई भयंकर पाप किया है, शायद मैंने किसी सारसकी जोड़ीका विछोह किया होगा अथवा चक्रवाकके जोड़ेको वियुक्त किया है। जन्मसे ही मैं दुखोंका पात्र बनती आ रही हूँ। हे भामण्डल, हे नारायण, हे शत्रुघ्न, हे माँ, हे पिता! कोई भी तो दिखाई नहीं देता। हे हतभाग्य, मैंने किसका वियोग किया था कि जिससे मुझे शिव, शृगाल और सिंह घेरे हुए हैं। हे हतभाग्य, तुम मुझपर अप्रसन्न क्यों हो, जिससे राम मुझसे इतने रूठे हुए हैं? तिनकेकी शिखा (नोक) बन जाना अच्छा, वनमें लता हो जाना अच्छा, लोगोंके लिए प्राणोंसे प्यारी चट्टान बन जाना अच्छा, परन्तु कोई स्त्री, मेरे समान अभाग्य, निराशा और दुःख की पात्र न बने ॥१-१०॥

[१३] जल, स्थल, वन, तृण और यह संसार मुझे इस समय विचित्र दिखाई दे रहा है, मैं जो कुछ भी देखती हूँ, लगता है जैसे वह जल रहा है। हे धरती का विचार करनेवाले सूर्य, तुम देखो और विचारो, क्या मैंने कभी अपने मनसे रावणको चाहा है? हे वनस्पतियो, तुम सब भी उस समय वहाँ थी,

णहयल तुहु मि होन्तु तहिँ अवसरेँ। जइयहुँ जिउ अहाउ सङ्गर-वरेँ ॥४॥
जइयहुँ रयणकेसि दलवट्टिउ । विज्जा-छेउ करेँ वि आवट्टिउ ॥५॥
वसुमइ पइ मि दिट्ठ तरुवर-वणेँ । जइयहुँ णिवसियासि णन्दणवणेँ ॥६॥
अच्छिउ वरुणु पवणु सिहि मक्खरु । केण वि बोल्लिउ ण वि धम्मक्खरु ॥७॥
कोयहुँ कारणेँ दुप्परिणामेँ । हउँ णिक्कारणेँ घल्लिय रामेँ ॥८॥
जइ भुय कह वि सइत्तण-धारी । तो तुम्हइँ तिय-हच मज्झारी' ॥९॥

घत्ता

तं वयणु सुणेँवि सीयहेँ तणउ देव-लोउ चिन्तावियउ ।
णं सइ-सावन्तर-भीयएँण वज्जजङ्घु मेलावियउ ॥१०॥

[१४]

॥ जंभेट्टिया ॥ ताव णरिन्देँण स-सुहड-विन्देँण ।
गयमारूढेँण रणेँ णिव्वूढेँण ॥१॥
दिट्ठ देवि रत्तुप्पल-चलणी । णह-किरणुज्जोइय-सइ-भुवणी ॥२॥
काय-कन्ति-उब्भविय-सुरिन्दी । लोयाणन्द-रन्द-मुह-चन्दी ॥३॥
णयणोहामिय-वम्मह-बाणी । पुच्छिय 'कासु धीय कहोँ राणी' ॥४॥
'हउँ णिल्लक्खण णिज्जण-धामेँ । लोयहोँ छन्देँ घल्लिय रामेँ ॥५॥
राम-णारि लक्खणु महु देवरु । भामण्डलु एक्कोयरु भायरु ॥६॥
जणउ जणेरु विदेह जणेरी । सुण्ह णरिन्दहोँ दसरह-केरी' ॥७॥
पभणइ वज्जजङ्घु 'महि-पाला । लक्खण-राम भाएँ महु साला ॥८॥
तुहुँ पुणु धम्म-बहिणि हउँ भायरु' । साहुक्कारिउ सुरेँहिँ णरेसरु ॥९॥

जहाँ निशाचर रोती-बिसूरती मुझे ले गया था। हे आकाश, तुम भी उस समय वहाँ थे कि जब जटायु युद्धमें आहत हुआ था। जब रत्नकेशी मारा गया था, और उसकी विद्या खंडित हो गयी थी। हे धरती, तुम गवाह हो इस बातकी कि किस प्रकार सघन वृक्षोंके अशोक वनमें, मैं अकेली रहती रही। हे वरुण, पवन, आग और सुमेर पर्वत, तुम भी तो थे, परन्तु तुममें-से किसीने भी, धर्मका एक अक्षर नहीं कहा। लोगोंके कारण, कठोर रामने मुझे अकारण निर्वासित कर दिया। शीलव्रतको धारण करनेवाली मैं यदि कहीं मारी गयी तो मेरी स्त्रीहत्या तुम्हारे ऊपर होगी। सीताके ये शब्द सुनकर, देव-लोक चिन्तामें पड़ गया, इसी समय मानो सीतादेवीके शापके डरसे उन्होंने वज्रजंघकी भेंट सीतादेवीसे करा दी॥१-१०॥

[१४] थोड़ी देर बाद सुभट श्रेष्ठ और युद्धमें समर्थ राजा वज्रजंघ हाथीपर बैठ वहाँ पहुँचा। उसने सीताको देखा। उसके चरण रक्तकमलके समान सुन्दर थे, नखोंकी किरणोंसे वह धरतीको आलोकित कर रही थी। उसकी शरीर-कान्तिसे इन्द्राणीको ताप हो रहा था, उसका मुखचन्द्र लोगोंको एक नया आह्लाद देता था। नेत्रोंसे उसने कामदेवीकी वाणीको तिरस्कृत कर दिया था। वज्रजंघने उससे पूछा, "तुम किसकी बेटी और कहाँकी रानी हो!" सीताने प्रत्युत्तरमें कहा—"मैं अभागिन लोक अपवादके कारण राम-द्वारा अपने स्थानसे च्युत कर दी गयी हूँ, मैं रामकी पत्नी हूँ, लक्ष्मण मेरे देवर हैं। भामण्डल मेरा एकमात्र भाई है, जनक मेरे पिता हैं और विदेही मेरी माँ है। राजा दशरथकी मैं पुत्र-वधू हूँ।" यह सुन-कर राजा वज्रजंघने कहा, "हे आदरणीय, राजा राम और लक्ष्मण मेरे साले हैं। तुम मेरी धर्मकी बहन हो, मैं तुम्हारा

घत्ता

लायण्णु णिऍवि सीयहें तणउ तिहुअणेँ कासु ण खुहिउ मणु ।
गिरि धीरेँ सायरु गहिरिमऍ वज्जजङ्घु पर एक्कु जणु ॥१०॥

[१५]

॥ जंभेट्टिया ॥ मम्भीसेप्पिणु वय-गुण-थाणेँणं ।
णिय परमेसरि सिबिया-जाणेँणं ॥१॥
पुण्डरीय-पुरवरु पइसन्ते । हट्ट-सोह णिम्मविय तुरन्तें ॥२॥
सस भणेवि पवड्ढउ देवाविउ । जणु आसङ्का-थाणु मुआविउ ॥३॥
तहिँ उप्पण्ण पुत्त लवणङ्कुस । लक्खण-लक्खलङ्किय दीहाउस ॥४॥
सीयापुत्तिहेँ णयण-सुहङ्कर । पुव्व-दिसिहेँ णं चन्द-दिवायर ॥५॥
सिद्धि-णाय सिक्खविय महत्थइँ । वायरणाइ-अणेयइँ सत्थइँ ॥६॥
सयल-कला-कलाव-कवणीया । मन्दर-मेरु णाइँ थिय बीया ॥७।
तेहिँ पहावेँ तहिँ रिउ थक्किमय । रहुकुल-भवण-खम्भ णं उब्भिय ॥८॥
स-रहस सावलेव स-कियत्था । लक्खण-रामहुँ समर-समत्था ॥९॥

घत्ता

रिउ लवणङ्कुसेँहि णिरङ्कुसेँहि दण्ड-सज्जु किउ णाइँ अहि ।
चप्पेँवि चप्पिकी दासि जिह लइय स य म्भु व लेण महि ॥१०॥

भाई हूँ।" इसपर देवोंने राजा वज्रजंघकी सराहना की। सीता देवीका सौन्दर्य देखकर त्रिभुवनमें कौन था जिसका मन क्षुब्ध न हुआ हो। परन्तु एक वज्रजंघ ही था जो धीरजमें पहाड़ था और गम्भीरतामें समुद्र था ॥१-१०॥

[१५] उसने व्रत और गुणोंसे सम्पन्न सीता देवीको ढाढ़स बँधाया और डोलीमें बैठाकर उसे अपने घर ले गया। उसके अपने पुण्डरीकनगरमें प्रवेश करते ही बाजारोंमें नयी शोभा कर दी गयी। उसने मुनादी द्वारा सीतादेवीको अपनी बहन घोषित किया, और इस प्रकार लोगोंके मनमें रत्तीभर भी शंकाका स्थान नहीं रहने दिया। वहाँ सीतादेवीके लवण-अंकुश नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। दोनों ही दीर्घायु और शुभ लक्षणोंसे युक्त थे। सीतादेवीके लिए वे इतने शुभ थे मानो पूर्व दिशाके लिए सूर्य और चन्द्र हों। वे बड़े हुए। उन्हें बड़े-बड़े अस्त्र चलाना सिखाया गया। उन्होंने व्याकरण आदि अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया। सुन्दर कलाओंमें निपुणता प्राप्त की। दोनों सुमेरु पर्वतके समान अचल थे। उनके प्रभाव से सब शत्रु रुक गये, मानो वे रघुकुल रूपी भवनके दो नये खम्भे हों। वे राम लक्ष्मणसे भी अधिक युद्धमें समर्थ तथा सहर्ष साहंकार और कृतार्थ थे। लवण-अंकुश दोनोंने सर्पकी भाँति शत्रुओंको दण्डसे साध्य कर लिया। उन्होंने बापकी दासीकी तरह धरतीको अपने हाथोंसे चाँपकर अधीन कर लिया ॥१-१८॥

[८२. बासीमो संधि]

सुरवर-डामर-डामरेंहिं ससहर-चक्कंकिय-णामहुँ ।
भिडिया आहवें बे वि जण लवणङ्कुस लक्खण-रामहुँ ॥

[१]

लवणङ्कुस णिएँवि जुवाण-भाव । कलि-कवलण कलिय-कला-कलाव ॥१॥
सयलामल-कुल-णहयल-मियङ्क । णं अरि-करि-केसरि मुक्क-सङ्क ॥२॥
रण-भर-धुर-धोरिय धीर-खन्ध । गुण-गण-गणालि णं सेउ-बन्ध ॥३॥
धर-धारण दुद्धर-धर-धरिन्द । वन्दिय-जिणिन्द-चरणारविन्द ॥४॥
परिरक्खिय-सामिय सरण-भिच्च । वन्दिग्गहँ णोग्गहँ किय-परित्त ॥५॥
भू-भूसण भुवणाभरण-भाव । दस-दिसि-पसत्त-णिग्गय-पयाव ॥६॥
रामाहिराम रामाणुसरिस । जण-जाणइ-जणणहँ जणिय-हरिस ॥७॥
वर-पवर-पुरञ्जय जणिय-तास । मुह-चन्द-चन्दिमा-धवलियास ॥८॥

घत्ता

माणुस-वेसें अवयरेंवि बे भाय णाइँ थिय कामहों ।
'किह परिणावमि जमल-भड' उप्पण्ण चिन्त मणें मामहों ॥९॥

बयासीवीं सन्धि

देवयुद्धसे भी भयंकर, चन्द्र और चक्रके नामोंसे अंकित, लवण और अंकुश, युद्धमें राम और लक्ष्मणसे जा भिड़े।

[१] लवण और अंकुश दोनों जवान हो चुके थे। दोनों यमको सता सकते थे, दोनों कलाओंका अभ्यास पूरा कर चुके थे और दोनों अपनी कलाओंसे निर्मल आकाश चन्द्रकी भाँति थे मानो आशंकासे मुक्त शत्रुरूपी गजपर सिंह हो। विशाल कंधोंवाले वे रणभार उठानेमें समर्थ थे। सेतुबन्धकी भाँति वे दोनों गुणसमूहसे युक्त थे। धरती धारण करनेवाले दुर्धर धरतीके राजा थे, दोनोंने जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोंकी वन्दना की थी। दोनों अपने स्वामीकी रक्षा करनेवाले और मित्रोंको शरण देनेवाले थे। बन्दीगृहों और गौशालाकी उन्होंने रक्षा की थी। दोनों पृथ्वीके अलंकार थे, और दोनों पृथ्वीको अलंकृत करना चाहते थे। उनका प्रताप दसों दिशाओंमें फैल चुका था। रामके ही अनुरूप वे दोनों रमणियोंके लिए सुन्दर थे। वे जन माता और पिताके लिए आनन्ददायक थे। दोनों ही प्रबल शत्रुओंकी नगरीमें त्रास उत्पन्न कर सकते थे। मुखचन्द्रकी ज्योत्स्नासे उन्होंने चन्द्रमा तकको आलोकित कर दिया था। वे दोनों ऐसे लगते थे मानो कामदेव ही दो भागोंमें बँटकर मनुष्य रूपमें अवतरित हुआ हो। तब मामा वज्रजंघके मनमें यह चिन्ता हुई कि इन दोनोंका विवाह किससे करूँ॥१-१०॥

[२]

पट्ठविय महन्ता तेण तासु । पिहिमी-पुरवरें पिहु-पहुहें पासु ॥१॥
'दे देहि अमयमइ-तणिय बाल । कमणीय-किसोयरि कणयमाल ॥२॥
दूयहों वयणें दूमिउ णरिन्दु । णं फुरिय-फणा-मणि थिउ फणिन्दु ॥३॥
'कुल-सील-कित्ति-परिवज्जियाहँ । को कण्णउ देइ अलज्जियाहँ' ॥४॥
गउ दूउ दुरक्खर-दूमियङ्गु । णं दण्ड-घाय-घाइउ-भुअङ्गु ॥५॥
लवणङ्कुस-मामहों कहिउ तेव । 'पिहु-राएं दुहिय ण दिण्ण जेव ॥६॥
तं वयणु सुणेप्पिणु लइय खेरि । देवाविय लहु सण्णाह-भेरि ॥७॥
डक्खम्बें उप्परि चलिउ तासु । पिहिमी-पुरवर-परमेसरासु ॥८॥

घत्ता

ताव णराहिउ वग्घरहु पिहु-पक्खिउ रण-महि मण्डेंवि ।
जलहर खोलेंवि सुक्कु जिह थिउ अग्गएँ जुज्झु समोड्डेंवि ॥९॥

[३]

ते वग्घमहारह-वज्जजङ्घ । अभिट्ट परोप्परु रणें अलङ्घ ॥१॥
बहु दिवस करेप्पिणु संपहारु । परियाणेंवि पर-बल-परम-सारु ॥२॥
सो पुण्डरीय-पुर-परिवेण । सद्दूल-महारहु धरिउ तेण ॥३॥
तहिं कालें कुइउ पिहु पिहुल-काउ । सामन्त-सयइँ मेलवेंवि आउ ॥४॥
एत्तहें वि कुमारेंहिं दुज्जएहिं । जयकारिय सीय रणुज्जएहिं ॥५॥
लवणङ्कुस-णाम-पगासणेहिं । हत्थ-त्थिय-ससर-सरासणेहिं ॥६॥

[२] चूँकि उसें बहुत बड़ी चिन्ता हो गयी। इसलिए उसने पृथ्वीपुरके राजा पृथुके पास दूत भेजा। दूतके माध्यम-से उसने पूछा कि, राजा पृथु रानी अमृतमतीसे उत्पन्न अत्यन्त सुन्दरी कन्या कनकमाला दे दे। परन्तु दूतके वचन सुनकर राजा ऐसा चिढ़ गया मानो फड़कते फनोंवाला नागराज हो। उसने कहा—"जिनके वंशका पता नहीं, जिनकी न कीर्ति है और न शील, भला ऐसे निर्लज्जोंको अपनी लड़की कौन देगा।" राजाके खोटे अक्षरोंसे प्रताडित दूत वहाँसे वापस आ गया, मानो दण्डोंके आघातसे साँप फूत्कार कर उठा हो। उसने जाकर लवण और अंकुशके मामाको बताया कि किस प्रकार राजा पृथुने अपनी कन्या देनेसे मना कर दिया है। यह सुन-कर वह एकदम भड़क उठा। उसने कूचकी भेरी बजवा दी। घेरा डालकर उसने राजा पृथुके ऊपर आक्रमण कर दिया। इसी बीच, राजा पृथुके पक्षपाती राजा व्याघ्ररथने युद्ध-व्यूहकी रचना कर ली और वह युद्ध करनेके लिए आगे उसी प्रकार स्थित हो गया, जिस प्रकार मेघोंको अवरुद्ध कर इन्द्र स्थित हो जाता है॥ १–९॥

[३] व्याघ्ररथ और वज्रजंघ आपसमें एक-दूसरेसे युद्ध में भिड़ गये। दोनों एक-दूसरेके प्रति अलंघ्य थे। बहुत दिनों तक वे एक-दूसरेपर प्रहार करते रहे। दोनोंने एक-दूसरेकी शक्तिका सार जान लिया। इतनेमें पुण्डरीकपुरके राजा वज्र-जंघने व्याघ्ररथको पकड़ लिया। यह देखकर विशालकाय राजा पृथु कुपित हो उठा, वह सैकड़ों सामन्त योद्धाओंके साथ वहाँ आया। इस ओर भी सीताकी जयके साथ अजेय दोनों कुमार (प्रसिद्धनामा लवण और अंकुश) रणके लिए उद्यत हो उठे। उनका शरीर युद्धलक्ष्मीका आलिंगन करनेमें

रण-रामाकिङ्किय-विग्गहेहिँ । पहरण-पकइत्थ-महारहेहिँ ॥७॥
'पेक्खिज्जइ मायएँ ण माणु जाव । आएवउ अम्महिं तेत्थु ताव' ॥८॥

घत्ता

तो बोल्लाविय बे वि जण जणणिएँ हरिसंसु-विमीसएँ ।
'स-गिरि स-सायर सयल महि भुञ्जेज्जहु महु आसीसएँ ॥९॥

[४]

आसीस कर्एवि विण्णि वि पयट्ट । कलमल-बल-मयगल-मइयवट्ट ॥१॥
गय तेत्तहें जेत्तहें रणु अलङ्घु । जयकारिउ णरवइ वज्जजङ्घु ॥२॥
'अम्हेंहिँ जीवन्तेंहिँ दुक्खु कवणु । जहिँ अङ्कुसु हुअवहु कवणु पवणु ॥३॥
का गणण तेत्थु विहि-पत्थिवेण । अवरेण वि पवर-णराहिवेण' ॥४॥
पट्टु वीरेंवि अट्ठ-कडमद्दणेहिँ । दससन्दण-णन्दण-णन्दणेहिँ ॥५॥
रहु वाहिउ तूरइँ वाइयाइँ । किउ कलयलु सेण्णइँ धाइयाइँ ॥६॥
अब्भिडइँ चकइँ बलुद्धुराइँ । अवरोप्परु चोइय-सिन्धुराइँ ॥७॥
सरवर-सङ्घाय-पवरिसिराइँ । रय-रुहिर-महाणइ-हरिसिराइँ ॥८॥

घत्ता

पिहु-पत्थिउ कवणङ्कुसेंहिँ हेलएँ जेँ परम्मुहु लग्गउ ।
णावइ झत्ति झडप्पियउ विहिँ सीहहिँ मत्त-महागउ ॥९॥

[५]

तहिँ अवसरेँ समर-णिरङ्कुसेहिँ । पच्चारिउ पिहु कवणङ्कुसेहिँ ॥१॥
'कुल-सील-विहूणइँ वासिय केम । वलु वलु दूवागमेँ चविउ जेम' ॥२॥
पिहु-पत्थिउ चलणेहिँ पडिउ ताहँ । 'क्खेमहु जउ अम्हारिसाहँ ॥३॥

समर्थ था, हाथोंमें तीर और धनुष थे। उनके रथ हथियारों-से प्रचुर मात्रामें भरे हुए थे। उन्होंने सीतादेवीसे कहा, "हे माँ, कहीं मामा न घिर जायें, इसलिए हम वहाँ जाते हैं।" यह सुनकर दोनों आँखोंमें आनन्दाश्रु भरकर माँने कहा, "मैं असीस देती हूँ कि तुम ससागर और सपर्वत इस समस्त धरतीका उपभोग करो" ॥१-९॥

[४] इस प्रकार माँका आशीर्वाद लेकर, भ्रमरोंसे गुंजित मतवाले हाथियोंको वशमें करनेवाले वे दोनों वहाँ पहुँचे जहाँ पर अजेय युद्ध हो रहा था। वज्रजंघ राजाकी उन्होंने जय बोली, और कहा, "हम लोगोंके रहते हुए आपको क्या कष्ट है? जहाँ अंकुश आग है और लवण पवन है, वहाँ विधाता भी आ जाये तो उसकी क्या गिनती, फिर दूसरे राजाओंकी तो बात ही क्या है।" योद्धाओंको चकनाचूर कर देनेवाले दशरथ-के पुत्रके पुत्रोंने राजा वज्रजंघको धीरज बँधाया। अपना रथ हाँककर उन्होंने दुन्दुभि बजा दी। कोलाहल करती हुई सेनाएँ दौड़ीं, बलसे उत्कट सेनाएँ भिड़ गयीं। एक दूसरेपर उन्होंने हाथी दौड़ा दिये। तलवारोंके आघातसे शत्रुओंके सिर ऐसे लग रहे थे, मानो धूल और रक्तकी महानदीमें अश्वोंके सिर हों। राजा पृथु खेल-खेलमें लवण और अंकुशसे इस प्रकार जाकर भिड़ गया, मानो भाग्यसे महागज हड़बड़ीमें सिंहसे आ भिड़ा हो ॥१-९॥

[५] उस अवसर पर, युद्धमें निरंकुश लवण और अंकुश-ने राजा पृथुको ललकारते हुए कहा, "अरे कुलशील विहीनोंसे क्यों पराजित होते हो; हटो हटो, जैसा कि तुमने दूतसे कहा था।" यह सुनकर राजा पृथु उनके चरणोंमें गिर पड़ा, और बोला, "हम जैसोंसे आपको नाराज नहीं होना चाहिए। लवण

कइ लवण तुहारी कणयमाल । मयणङ्कुस तुहु मि तरङ्गमाल' ॥४॥
पइसारेंवि पुरवरें किउ विवाहु । थिउ वज्जजङ्घु जय-सिरि-सणाहु ॥५॥
तेण वि बत्तीस तणुब्भवाउ । पिय-कण्णउ दिण्णउ दिण्णउ स-विब्भमाउ ॥६॥
लयकालङ्कारालङ्कियाउ । हल-कमल-कुलिस-कलसङ्कियाउ ॥७॥
सामन्तहँ मिलिय अणेय लक्ख । पाइक्कहँ बुज्झिय केण सङ्ख ॥८॥

घत्ता

जे अकमल-बल पवल-बल हरि-बल-बलेंहिं ण साहिय ।
ते णरवइ लवणङ्कुसेंहिं सवसिकरेप्पिणु देस पसाहिय ॥९॥

[६]

खस-सव्वर-बव्वर-टक्क-कीर । कउवेर-कुरव-सोवीर धीर ॥१॥
तुरुक्क-यक्क-कम्बोज्ज-मोट्ट । जालन्धर-जवणा-जाण-जट्ट ॥२॥
कम्भीरोसीणर-कामरूव । ताइय-पारस-काहार-सूव ॥३॥
णेपाल-बट्टि-हिण्डिब-तिसिर । केरल-कोहल-कइलास-वसिर ॥४॥
गन्धार-मगह-मद्दाहिवा वि । सक-सूरसेण-मरु-पत्थिवा वि ॥५॥
एय वि अवर वि किय वस विहेय । पल्लट्ट पडीवा मेहिलेय ॥६॥
तं पुण्डरीय-पुरवरु पइट्ठ । थुउ वज्जजङ्घु वइदेहि दिट्ठ ॥७॥
तहिं कालें अकलि-कलियारएण । पोमाइय बेण्णि वि णारएण ॥८॥

घत्ता

भडु कप्पेप्पिणु सयल महि किय दासि व पेसण-गारी ।
पर जीवन्तेंहिं हरि-बलेंहिं जउ तुम्हहँ सिय बहुारी ॥९॥

लो तुम्हारी कनकमाला, और मदनांकुश तुम भी लो तरंग-माला।" उसने दोनोंका अपने महानगरमें प्रवेश कराया और कन्याओंका पाणिग्रहण करा दिया। वज्रजंघ अब पूर्ण ऐश्वर्यसे मण्डित था। उसने भी अपनी बत्तीस विलासयुक्त कन्याएँ उन्हें दीं। वे कन्याएँ सभी अलंकारोंसे शोभित थीं, और उनके शरीरपर हल, कमल, कुलिश और कलश आदिके सामुद्रिक चिह्न अंकित थे। लाखों सामन्त आकर उनसे मिल गये, फिर पैदल सैनिकोंकी तो संख्या पूछना ही व्यर्थ है। जो प्रबल बली शत्रु राजा राम लक्ष्मण द्वारा पराजित नहीं हो सके थे उन्हें लवण और अंकुशने बलपूर्वक अपने वशमें कर लिया ॥१-९॥

[६] खस, सव्वर, बव्वर, टक्क, कीर, कावेर, कुरव, सौवीर, तुंग, अंग, बंग, कंबोज, भोट, जालंधर, यवन, यान, जाट (जट्ट), कम्भीर (कश्मीर), ओसीनर, कामरूप (आसाम), ताइय, पारस, कल्हार, सूप, नेपाल, वट्टी, हिण्डिब, त्रिसिर, केरल, कोहल, कैलास, बसिर, गंधार, मगध, मद्र, अहिव, शक-शूरसेन, मरु, पार्थिव, इनको और दूसरे भूखण्डोंको अपने वशमें कर, वे दोनों वापस अपनी धरतीपर आ गये। उन्होंने पुण्डरीक नगरमें प्रवेश किया, वज्रजंघकी स्तुति की और तब सीतादेवीके दर्शन किये। इस अवसर पर असमयमें भी लड़ाई करा देने-वाले नारद महामुनिने भी उन दोनोंकी प्रशंसा की। उन्होंने कहा, "ठीक है कि तुमने बलपूर्वक सब धरती जीत ली है और उसे अपनी आज्ञाकारिणी दासी बना ली है, परन्तु राम और लक्ष्मण के जीते जी तुम्हारी सम्पत्ति बड़ी मालूम नहीं देती ॥१-९॥

[७]

तं वयणु सुणेंवि कमणक्कुसेण । वोल्लिज्जइ परम-महाउसेण ॥१॥
'कहि कहि को हरि-बल एउ कवणु' । तो कहइ कुमारहों गयण-गमणु ॥२॥
'णामेण अत्थि इक्खाय-वंसु । तहिँ दसरहु उत्तम-रायहंसु ॥३॥
तहों णन्दण लक्खण-राम वे वि । वण-वासहों चल्लिय तेण ते वि ॥४॥
गय दण्डारण्णु पइट्ठ जाव । अवहरिय सीय रावणेण ताव ॥५॥
तेहि मि मेलाविउ पवय-सेण्णु । हय भेरि पयाणउ णवर दिण्णु ॥६॥
वेढिय लङ्काउरि हउ दसासु । पडिवक्खेंवि अउज्झहिँ किउ णिवासु ॥७॥
जण-वय-वसेण सइ सुद्ध-चित्त । णिक्कारणें काणणें णेवि चित्त ॥८॥

घत्ता

वज्जजङ्घु तहिँ कहि मि गउ तें दिट्ठ रुवन्ति वराइय ।
सस भणेवि पइसारिय घरें लवणङ्कुस पुत्त वियाइय ॥९॥

[८]

तं णिसुणेंवि भणइ अणङ्गलवणु । 'अम्हाण समाणु कुलीणु कवणु ॥१॥
किउ जेण णयर जणणिहें मलिणु । तहों हउ दवग्गि डहणेक्क-चित्तु ॥२॥
वट्टइ जाणिज्जइ तहि जें काले । दुद्दरिसणें भीसणें भड-वमालें ॥३॥
जिम लक्खण रामहुँ पलउ आउ । जिम अम्हहँ विहि मि विणासु आउ ॥४॥
कहों तणउ वप्पु कहों तणउ पुत्तु । जो हणइ सो जिवइ रिउ णिरुत्तु ॥५॥
जाणेंवि कुमार-चित्तु अलङ्घु । सुट्ठेरिउ रोसिउ वज्जजङ्घु ॥६॥
'जो तुम्हहँ तिहि मि अणिट्ठु पाउ । सो मह्णु मि ण भावइ पिसुण-भाउ' ॥७॥
परिपुच्छिउ णारउ परम-जोइ । 'एत्थहों अउज्झ किं दूर होइ' ॥८॥

घत्ता

कहइ महा-रिसि गयण-गइ तहों लवणहों समरें समत्थहों ।
'सउ सट्ठुत्तरु जोयणहँ साकेय-महापुरि एत्थहों' ॥९॥

[७] यह सुनकर, लवण और अंकुशने आवेशमें भरकर कहा—"बताओ बताओ ये राम और लक्ष्मण कौन हैं।" तब गगनविहारी नारद मुनिने कहा—"इक्ष्वाकु नामका राजवंश है। उसमें दशरथ सर्वश्रेष्ठ राजा हैं। उनके दो पुत्र हैं—राम और लक्ष्मण, जिन्हें राजाने वनवास दे दिया था। वे दण्डकारण्यमें पहुँचे ही थे कि रावण सीता देवीका अपहरण करके ले गया। रामने वानर सेना इकट्ठी की। कूचका डंका बजाकर युद्धके लिए प्रस्थान किया। लंका नगरीको घेर लिया और रावणको मार डाला। फिर वे वापस आकर अयोध्यामें रहने लगे। यद्यपि सीता देवी सती और हृदयसे शुद्ध हैं, परन्तु लोगोंके कहनेपर रामने अकारण उन्हें वनमें निर्वासित कर दिया। (इसी समय) वज्र-जंघ कहीं जा रहा था, उसने सीता देवीको रोते हुए देखा। वह उसे बहन बना कर अपने घर ले गया। वहाँ उसके लवणांकुश नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए" ॥१-९॥

[८] यह सुन कर, लवण, जो कामदेवका अवतार था, बोला—हमारे समान कुलीन कौन हो सकता है, जिसने मेरी माँ को कलंक लगाया है, मैं उसके लिए दावानल हूँ। मैं उसे भस्म करके रहूँगा। भीषण दुर्दर्शनीय और योद्धाओं से मुखरित उस समय, यह पता चल जायगा कि राम और लक्ष्मणके लिए प्रलय आता है या इन दोनोंके लिए विनाश। कौन बाप और कौन बेटा? निश्चय ही जो मार सकता है, वही दुश्मनपर विजय प्राप्त कर सकता है। यह जानकर कि लवणांकुशका परा-क्रम अलंघ्य है, वज्रजंघ भी तमतमाकर बोला कि जो पापात्मा तुम तीनोंका अनिष्ट करनेवाला है, वह मुझे भी अच्छा नहीं लगता। उन्होंने महामुनि नारदसे पूछा कि—अयोध्या कितनी दूर है? तब युद्धमें समर्थ लवणसे व्योमविहारी नारदने कहा

[९]

वइदेहि णिवारइ दर रुवन्ति । 'ते दुज्जय लक्खण-राम होन्ति ॥१॥
हणुवन्तु जाहँ घरें करइ सेव । आरुट्ठहों जसु देव वि अ-देव ॥२॥
सुग्गीउ बिहीसणु भिच्च जाहँ । को रणें धुर धरेंवि समत्थु ताहँ ॥३॥
दसकन्धरु दुद्धरु णिहउ जेहिं । को पहरेंवि सक्कइ समउ तेहिं' ॥४॥
तं णिसुणेंवि लवणङ्कुस पलित्त । णं घिप्पिण हुआसण, विएँण सित्त ॥५॥
'किं अम्हहँ बलें सामन्त णत्थि । किं अम्हहँ ण-वि रह-तुरय-हत्थि ॥६॥
किं अम्हहँ दिढइँ ण वारणाइँ । किं अम्हहँ करेंहि ण पहरणाइँ ॥७॥
किं अम्हहँ तणउ ण होइ घाउ । सामण्ण-मरणें को भयहों थाउ' ॥८॥

घत्ता

तो वुच्चइ मयणङ्कुसेंण 'एत्तडउ ताव दरिसावमि ।
जेण रुवाविय माय महु तहों तणिय माय रोवावमि' ॥९॥

[१०]

हय भेरि-पयाणउ दिण्णु तेहिं । रण-रस-भरियहिं लवणङ्कुसेहिं ॥१॥
अग्गएँ दस सय कुट्ठारियाहँ । दस दारुण कुद्दल-धारियाहँ ॥२॥
पण्णारह खेवणि-करयलाहँ । झसियहँ चउवीस महा-बलाहँ ॥३॥
छव्वीसइँ कुसिय-विसोहियाहँ । बत्तीस सहासइँ चक्कियाहँ ॥४॥
दस लक्ख गयहुँ मय-णिज्झराहुँ । दस रहहुँ अट्ठारह हयवराहुँ ॥५॥
बत्तीस लक्ख फारक्कियाहुँ । चउसट्ठि पवर धाणुक्कियाहुँ ॥६॥
रण-रसियहँ रहसाऊरियाहुँ । अक्खोहणि साहणे तूरियाहुँ ॥७॥
णरवइहिं कोडिदस किङ्कराहँ । सावरणहँ वर-पहरण-कराहँ ॥८॥

कि यहाँसे कोई १६० योजन से भी दूर अयोध्या नगरी है॥१-६॥

[९] सीता देवीने उन्हें मना किया, वह फूट-फूटकर रो पड़ी और बोली—"राम और लक्ष्मण तुम दोनोंके लिए अजेय हैं; जिनके घरमें हनूमान् जैसा सेवक है, जिससे सुर और असुर दोनों डरते हैं, जिसके सुग्रीव और विभीषण अनुचर हैं, उनके साथ युद्धका भार कौन उठा सकता है, जिन्होंने युद्धमें रावण-को मार डाला, भला उनपर कौन प्रहार कर सकता है?" माँकी बात सुनकर, दोनों भाई भड़क उठे। लवने कहा, "क्या हमारी सेनामें बल नहीं है; क्या हमारे पास रथ, अश्व और गज नहीं हैं? क्या हमारे हाथी मजबूत नहीं हैं? क्या हमारे हथियार नहीं हैं, क्या हम आक्रमण करना नहीं जानते? मौत एक मामूली चीज है, उससे कौन डरता है? तब अंकुशने कहा कि मैं इतना अवश्य दिखा दूँगा कि जिसने हमारी माँको रुलाया है हम भी उसकी माँको रुला कर रहेंगे"॥१-९॥

[१०] दुन्दुभि बज उठी। कूच कर दिया गया। युद्धके उत्साहसे भरे हुए लवण और अंकुश चल पड़े। उनके आगे, एक हजार कुठारधारी थे, एक हजार भयंकर कुदालीधारी थे, पन्द्रह-सौ हाथों में खेवणी लिये सैनिक थे, चौबीस-सौ सैनिक 'झसिय' अस्त्र लिये हुए थे, छब्बीस-सौ कुशियसे शोभित योद्धा थे, बत्तीस हजार चक्रधारी सैनिक थे। मदझरते दस लाख गज थे, दस हजार रथ और अठारह हजार घुड़सवार थे। फारकधारी सैनिक बत्तीस लाख थे। चौंसठ लाख थे धनुर्धारी सैनिक। युद्धके लिए हिनहिनाते और वेगसे पूरित अश्वों की एक अक्षौहिणी सेना थी। आवरण सहित, हाथमें उत्तम अस्त्र लिये हुए राजा और उनके अनुचरोंकी संख्या दस करोड़

घत्ता

स-रहसु लवणङ्कुसहुँ बलु पइँ उप्पइँ कह वि ण माइयउ ।
णं खयकालें समुद्द-जलु वेलन्तु अउज्झ पराइयउ ॥९॥

[११]

तो दप्पुद्धरेंहि णिरङ्कुसेहिं । पट्ठविउ दूउ लवणङ्कुसेहिं ॥१॥
गउ झत्ति अउज्झाउरि पइट्ठु । स-जणद्दणु सीया-दइउ दिट्ठु ॥२॥
'अहों रहुवइ अहों लक्खण-कुमार । बोल्लिज्जइ कवणिउ वार-वार ॥३॥
पर-णारि-हरण-दुव्वारणेण । तुम्हइँ हेवाइय रावणेण ॥४॥
इहु पइँ पुणु णरवइ वज्जजङ्घु । उवहि व अ-खोहु मेरु व अ-लङ्घु ॥५॥
परमुत्तम-सत्तु महाणुभावु । सुर-भुवणन्तर-णिग्गय पयावु ॥६॥
रण रामालिङ्गण-रस-पसत्तु । जसु तिण-समु पर-धणु पर-कलत्तु ॥७॥
लवणङ्कुस-मामु महा-पचण्डु । सो तुम्हहँ आइउ काल-दण्डु ॥८॥

घत्ता

तं सहुँ काइँ महाहवेंण णिय-कोसु अ[ं]सु वि देप्पिणु ।
सुहु जीवहों उज्झाउरिहें लवणङ्कुस-केर करेप्पिणु' ॥९॥

[१२]

आसीविस-विसहर-विसम-चित्तु । णारायणु कुइयउ जिह पलित्तु ॥१॥
'जा आहि दूअ किं गज्जिएण । जलएण व जल-परिवज्जिएण ॥२॥
को वज्जजङ्घु को लवणङ्कुसयणु । को अङ्कुसु ताहु पयाउ कवणु ॥३॥
जिह सकहों तिह वत्थरहों तुम्हें । गहियाउह थिय सव्वहें वि अम्हें' ॥४॥

थी। लवण और अंकुशकी सेना अपने वेगमें, पथ और उत्पथमें कहीं भी नहीं समा रही थी। वह ऐसी लगती थी मानो क्षय-कालका समुद्र ही रेल-पेल मचाता हुआ अयोध्यापर आ पहुँचा हो ॥ १–९ ॥

[११] दर्पसे उद्धत और अंकुशविहीन लवण एवं अंकुशने अपना दूत रामके पास भेजा। दूत शीघ्र ही अयोध्या नगरी गया और उसने लक्ष्मण सहित सीतापति रामसे भेंट की। उसने कहा—"अरे राम और लक्ष्मण, तुमसे कितनी बार कहा जाय? लगता है दूसरोंकी स्त्रियोंका अपहरण करनेवाले रावण ने तुम्हारा दिमाग आसमान पर चढ़ा दिया है। यह राजा वज्रजंघ है, जो समुद्रकी तरह अक्षुब्ध और सुमेरु पर्वतकी तरह अलंघ्य है। वह उग्र कोटिका शत्रु है, महानुभाव है, देवता और दूसरे लोक इसके प्रतापका लोहा मानते हैं। युद्धवनिता-का आलिंगन करनेमें उसे आनन्द मिलता है। वह दूसरेके धन और स्त्रीको तिनकेके समान समझता है। वह लवण और अंकुशका मामा महाप्रचण्ड है। वह तुम्हारे ऊपर कालदण्डकी तरह आया है। उसके साथ युद्ध करनेसे क्या? अपना शेष कोष उसे दे दो, और लवण-अंकुशकी अधीनता स्वीकार कर अपनी अयोध्या नगरीमें सुखसे राज्य करो" ॥ १–९ ॥

[१२] यह सुनकर आशीविष साँपकी भाँति विषम चित्त लक्ष्मण आग-बबूला हो गये। उन्होंने कहा, "हे दूत! तुम जाओ, इस प्रकार निर्जल बादलोंकी भाँति गरजनेसे क्या? वज्रजंघ कौन है? लवण कौन है और कौन है अंकुश? उसका प्रताप कौन है, जिस तरह भी हो तुम अपनेको बचाओ, हम अस्त्रोंको लेकर तैयार हो रहे हैं।" चिढ़कर दूत फौरन गया।

गउ दूउ तुरन्तु वहन्तु खेरि । हय हरि-बल-बलेँ सण्णाह-भेरि ॥५॥
सण्णद्धु रामु रामाहिरामु । तइलोक्कमन्तरेँ भमिउ णामु ॥६॥
सण्णद्धु पलय-कालाणुकारि । लक्खणु सुह-लक्खण-लक्ख-धारि ॥७॥
सण्णद्धु णराहिव णिरवसेस । वीसम्भर-गोयर खेयरेस ॥८॥

घत्ता

हय-तूरइँ किय-कलयलइँ दारुण-रणभूमि-पयट्टइँ ।
लवणङ्कुस-हरि-बल-बलइँ स-रहसइँ बे वि अब्भिट्टइँ ॥९॥

[१३]

अब्भिट्टइँ हरिस-पसाहणाइँ । लवणङ्कुस-हरि-बल-साहणाइँ ॥१॥
दुव्वार-वइरि-विणिवारणाइँ । धाइय-उद्धङ्कुस-वारणाइँ ॥२॥
दुद्धर-पर-णर-दप्प-हरणाइँ । अवरोप्परु पेल्लिय-पहरणाइँ ॥३॥
जस-लुद्धइँ वड्ढिय-विग्गहाइँ । रण-रामालिङ्गिय विग्गहाइँ ॥४॥
हरि-खुर-खय-रय-कय-धूसराइँ । आयामिय-भामिय-असिवराइँ ॥५॥
असि-किरण-कराविय-णहयलाइँ । गय-मय-कद्दमिय-महीयलाइँ ॥६॥
रुहिर-णइ-पूर-पूरिय-पहाइँ । सुर-खोणी-खुत्त-महारहाइँ ॥७॥
पय-भर-भारिय-वीसम्भराइँ । पहरन्ति परोप्परु णिब्भराइँ ॥८॥

घत्ता

वज्जजङ्घ-रहुवइ-बलइँ दिट्ठइँ सुरपुर-परियालेँ ।
रण-मोयणु मुअन्तएँण बे मुहइँ कियइँ णं कालेँ ॥९॥

[१४]

कहिं जि धाइया भडा । मइन्द-विक्कमुक्कडा ॥१॥
स-रोस-वावरन्तया । परोप्परं हणन्तया ॥२॥
कहिं जि आगया गया । पहार-संगया गया ॥३॥
कहिं जेँ णाण-जज्जरा । भमन्त मत्त कुञ्जरा ॥४॥
कहिं जेँ दन्ति दन्तया । रसन्ति भग्ग-दन्तया ॥५॥

लक्ष्मणकी सेनामें दुन्दुभि बज उठी। रमणियोंके लिए अभि-राम और तीनों लोकोंमें विख्यात नाम राम तैयारी करने लगे। प्रलयकालके समान और शुभ लक्षणोंको धारण करनेवाले लक्ष्मण भी तैयार होने लगे। और दूसरे राजा भी तैयार हो गये, विद्याधर और मनुष्य राजा सभी। हर्षसे भरी हुई, राम-लक्ष्मण और लवण-अंकुशकी सेनाएँ आपसमें लड़ने लगीं ॥४–९॥

[१३] दोनों ही सेनाएँ दुर्निवार शत्रुओंका निवारण कर रही थीं, दोनोंमें निरंकुश गज दौड़ रहे थे, दोनों ही उद्धत शत्रुओंका घमण्ड चूर-चूर कर देती थीं। दोनों एक दूसरे पर अस्त्रोंसे प्रहार कर रही थीं। दोनोंको यशका लालच था। दोनोंमें संघर्ष बढ़ता जा रहा था। दोनोंके शरीर, रणलक्ष्मीके आलिंगनके लिए उत्सुक थे। चारों ओर, अश्वखुरोंकी धूलसे धूमिलता-सी छा गयी थी। दोनों तलवारों को घुमा-फिरा रहे थे। तलवारकी किरणोंसे आकाश तल भयंकर हो उठा, गज-मदसे धरती पंकिल हो उठी। रक्तकी नदियोंके प्रवाहसे पथ भर गये। महारथोंने धरतीको खोद दिया। पैदल सैनिकोंकी मारसे धरती दब गयी। दोनों एक दूसरेके ऊपर निश्चिन्त होकर प्रहार कर रहे थे। इस प्रकार वज्रजंघ और रामकी सेनाओंको ऊपरसे जब इन्द्रने देखा तो उसे लगा जैसे युद्धका भोजन करते हुए कालने अपने दो मुख कर लिये हों॥ १–९ ॥

[१४] कहींपर योद्धा दौड़ रहे थे, जो सिंहके समान उद्धत विक्रम रखते थे। आक्रोशमें वे एक दूसरेको मार रहे थे। कहीं पर यदि हाथी आ जाते तो एक ही प्रहारमें समाप्त हो जाते। कहींपर तीरोंसे जर्जर मतवाले हाथी घूम रहे थे, कहींपर रक्तसे रंजित थे और उनके टूटे हुए दाँत रिस रहे थे।

कहिँ जेँ ते सु-कोहिया । गिरि व्व धाउ-कोहिया ॥६॥
कहिँ जेँ आहया हया । पडन्ति चिन्धया धया ॥७॥
कहिं जेँ उट्ठ-खण्डयं । पणच्चियं कबन्धयं ॥८॥
तओ तहिं महा-रणे । मडेक्कमेक्क-दारुणे ॥९॥
गलन्त-सोणियारुणे । विमुक्क-हक्क-दारुणे ॥१०॥
पिसाय-णाय-भीसणे । अणेय-सूर-णासणे ॥११॥
मिलन्त-ढन्त-वायसे । सिवा-णियन्त-फोप्फसे ॥१२॥

घत्ता

ताव वलुद्धुरु वइरि-वलु जगडन्तु मज्झेँ सङ्गामहोँ ।
धाइउ अङ्कुसु लक्खणहोँ अब्भिडिउ लवणु रणेँ रामहोँ ॥१३॥

[१५]

अब्भिडइ परोप्परु लवण-राम । णं दड्ढवेँ णिम्मिय विण्णि काम ॥१॥
विण्णि वि भूगोयर-सार-भूय । थिय विण्णि वि णाइँ कियन्त-दूय ॥२॥
णं सग्गहोँ इन्द-पडिन्द पडिय । विण्णि वि णिय-णिय-रहवरेँहिँ चडिय ॥३॥
विण्णि वि अप्फालिय-चण्ड-चाव । विण्णि वि अवरोप्परु पलय-भाव ॥४॥
विण्णि वि दप्पुब्भड वद्ध-रोस । विण्णि वि सुरसुन्दरि-जणिय-तोस ॥५॥
विण्णि वि रण-रामालिङ्गियङ्ग । विण्णि वि दूरुज्झिय पिसुण-सङ्ग ॥६॥
विण्णि वि अवहत्थिय-मरण-सङ्क । विण्णि वि पक्खालिय-पाव पङ्क ॥७॥

घत्ता

ताव रणङ्गणेँ राहवहोँ आयामेँवि विक्कम-सारेँ ।
सहुँ धय-धवल-महद्धऍण धणु पाडिउ लवण-कुमारेँ ॥८॥

[१६]

रहु-णन्दण-णन्दण-णन्दणेण । धणु अवरु लइउ रिउ-मद्दणेण ॥१॥
जं पलय-पावक-समुद्दाणुकरणु । जं विज्जुग्गीवहोँ पाण-हरणु ॥२॥

कहींपर वे इतने लाल हो उठे जैसे गेरूसे पहाड़ ही लाल हो उठा हो। कहींपर अश्व आहत थे और कहींपर ध्वजाएँ गिर रही थीं। कहीं उन्नत कबंधोंके धड़ नाच रहे थे। इस प्रकार वह युद्ध एक-दूसरे की भिड़न्तसे भयंकर हो उठा। बहते हुए रक्तसे लाल-लाल दिखाई दे रहा था। 'प्रक्षिप्त हुक्कों' से एकदम भयंकर हो उठा। पिशाचों और नागोंसे भयंकर था। उसमें अनेक तूर्योंकी ध्वनि सुन पड़ रही थी। स्थान-स्थानपर कौवे मँडरा रहे थे। सियारनियाँ मांसकी ओर घूर रही थीं। इतनेमें, जब कि संग्रामके बीच शत्रुसेना लड़ रही थी, अंकुश लक्ष्मणके ऊपर टूट पड़ा, और लवण रामके ऊपर ॥ १-१३ ॥

[१५] आपसमें लड़ते हुए दोनों (लवण और राम) ऐसे जान पड़ते थे जैसे दैवने दो कामदेवोंकी सृष्टि कर दी हो, दोनों ही मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ थे। दोनों ही ऐसे जमे हुए थे जैसे यमदूत हों। मानो स्वर्गसे इन्द्र और प्रतीन्द्र गिर पड़े हों, दोनों ही अपने-अपने श्रेष्ठ रथोंपर बैठे हुए थे। दोनों ही अपने प्रचण्ड धनुष चढ़ा रहे थे। दोनोंका एक दूसरेके प्रति प्रलय भाव था। दोनों ही दर्पसे उद्धत और रोषसे भरे हुए थे। दोनों देवबालाओंको सन्तोष दे रहे थे। दोनोंके शरीरोंको युद्धवधूके आलिंगनका अनुभव था। दुष्टोंके साथसे दोनों कोसों दूर रहते थे। दोनोंने मृत्यु-शंकाकी उपेक्षा कर दी थी। दोनोंने ही पापपंकको धो दिया था। इसी बीच विक्रममें श्रेष्ठ, कुमार लवणने धवलध्वजके साथ, रामका धनुष युद्धभूमिमें गिरा दिया ॥ १-: ॥

[१६] अरण्यके पुत्रके प्रपौत्र शत्रुओंका दमन करनेवाले रामने दूसरा धनुष ले लिया, जो धनुष प्रलयकालके बालसूर्य के समान था, और जिसने मायावी सुग्रीवके प्राण लिये थे।

सुग्गीवहों जेण सु-दिण्ण तार । जें रावणु भग्गु अणेय-वार ॥३॥
तं धवरु सरासणु स-सरु लेवि । किर विन्धइ आकड्ढिउ करेवि ॥४॥
रहु खण्डिउ सीय-सुएण ताव । परिओसिय सुर समरेक्क-भाव ॥५॥
हउ सारहि आहय वर तुरङ्ग । णं पारावारहों हिय तरङ्ग ॥६॥
पभणिउ अणङ्गलवणेण रामु । 'तुहुँ जइ उववासेंण हुयउ खामु ॥७॥
तो वावरु सव्व-परक्कमेण । जिय णिसियर एण जि विक्कमेण'॥८॥

घत्ता

वलेंण विलक्खीहूयएँण सर-धोरणि मुक्क कुमारहों ।
वलेंवि पडीवी लग्ग करें णं कुल-वहु णिय-भत्तारहों ॥९॥

[१७]

जिह मुक्कु ण ढुक्कइ कोइ वाणु । तिह हलु तिह मोग्गरु तिह किवाणु ॥१
तिह मुसलु गयासणि तिह रहङ्गु । तिह अवरु वि पहरणु रणें अहङ्गु ॥२॥
लक्खणु वि ताव मयणङ्कुसेण । णं रुद्धु महा-गउ अङ्कुसेण ॥३॥
आमेल्लइ पहरणु जं जें जं जें । लवणाणुउ छिन्दइ तं जें तं जें ॥४॥
धणु पाडिउ पाडिउ आयवत्तु । हय हयवर सारहि धरणि-पत्तु ॥५॥
गयणङ्गणें तो वोल्लन्ति देव । 'जिय वालेंहिं लक्खण-राम केव' ॥६॥
हासं गउ सुरवर-पउर-विन्दु । 'हउ अण्णें केण वि णिसियरिन्दु ॥७॥
खर-दूसणु सम्वुकुमारु जो वि । अण्णेण जि केण वि णिहउ सो वि'॥८॥

घत्ता

जणु जें विरत्तउ हरि-वलहुँ सिसु-साहस-पवणुद्धूअउ ।
णहु अहिणवु पायालयलु सयलु वि लवणङ्कुसिहूअउ ॥९॥

जिसने सुग्रीवको उसकी तारा दिलवायी थी, और जिसने रावणको अनेक बार घायल किया था, ऐसे अपने धनुष प्रवरको लेकर, जबतक राम अपने लक्ष्यपर निशाना लगाते, तबतक सीतापुत्र लवणने उनके रथके दो टुकड़े कर दिये। युद्धमें रस लेनेवाले देवता यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए। सारथि घायल हो गया और बड़े-बड़े घोड़े उस समय ऐसे लगे जैसे समुद्रसे उसकी तरंगें छीन ली गयी हों। अनंग लवणने तब रामसे कहा, "यदि तुम उपवास (युद्धके बिना) क्षीण हो गये हो तो अपने उसी समस्त पराक्रमसे प्रहार करो, जिससे तुमने निशाचर रावणको जीता। तब अत्यन्त खिन्न होकर रामने कुमार लवणपर तीरोंकी बौछार की किन्तु रामके पास वह उसी प्रकार लौट आयी जिस प्रकार कुलवधू अपने पतिके पास लौट आती है ॥ १-९ ॥

[१७] रामका एक भी तीर कुमार लवणके पास नहीं पहुँच पा रहा था, न हल और न मुद्गल; न कृपाण और न मूसल, न गदाशनी और न चक्र, इसी प्रकार दूसरे-दूसरे अभंग अस्त्र उसके पास नहीं पहुँच रहे थे, राम जो भी अस्त्र उठाते, कुमार लवण उसे ध्वस्त कर देता; उसने रामका अस्त्र गिरा दिया, छत्र गिरा दिया, महाश्व मारे गये, सारथि धरतीपर लोट-पोट हो गये। यह देखकर आकाशमें देवता आपसमें बातें करने लगे कि क्या ये बच्चे राम और लक्ष्मणको जीत लेंगे। वे मजाक उड़ाने लगे कि क्या युद्धमें निशाचरोंको मारनेवाले दूसरे थे ? जिसने खर-दूषण और शम्बूक कुमारको मारा था, क्या वे दूसरे थे ? (इसप्रकार) जगको रक्तरंजित करनेवाली राम और लक्ष्मणकी सेना; लवण और अंकुशके साहसरूपी पवनसे शिशुओंकी भाँति उड़ने लगी; धरती, स्वर्ग और पातालमें

[१८]

खरदूसण-रावण-घायणेण । तो लइउ चक्कु णारायणेण ॥१॥
खय-सूर-समप्पहु णिसिय-धारु । दसकन्धर-दारणु दससयारु ॥२॥
खय-जलण-जाल-माला-रउद्दु । कुण्डलेंवि णाइँ थिउ विसहरिन्दु ॥३॥
धवलुज्जलु हरि-करयलें विहाइ । वर-कमलहों उप्परि कमलु णाइँ ॥४॥
आयामेंवि मेल्लिउ लक्खणेण । गउ फरहरन्तु णाइँ तक्खणेण ॥५॥
आसङ्किय सुर णर जेऽणुरत्त । 'लइ एवहिँ सीया-सुय समत्त' ॥६॥
ति-पयाहिण णवरङ्कुसहों देवि । थिउ हरिहेँ पडीवउ करें चडेवि ॥७॥
पडिवारउ घत्तिउ लक्खणेण । पडिवारउ आइउ तक्खणेण ॥८॥

घत्ता

हरि आमेल्लइ अमरिसेंण तहों बालहों तप्पण पहावइ ।
बाहिर-विद्धु कलत्तु जिह परिभमेवि पुणु पुणु आवइ ॥९॥

[१९]

तो सयल-काल-कलिकारएण । आणन्दु पणच्चिउ णारएण ॥१॥
'हरि-बलहों एह किर कवण बुद्धि । णिय-पुत्त वहँवि कहिँ कहों सुद्धि ॥२॥
गुरु-हार वणन्तरें मुक्क देवि । उप्पण्ण तणय तहेँ पुत्त वे वि ॥३॥
पहिलारउ एहु अणङ्गलवणु । कुल-मण्डणु जयसिरि-वास-भवणु ॥४॥
बीयउ मयणङ्कुसु एहु देव । सहुँ आयहुँ महरहों तुम्हि केव' ॥५॥

सभी जगह लवण और अंकुशके साहसकी चर्चा हो रही थी ॥ १-९ ॥

[१८] लक्ष्मणने तब खर-दूषण और रावणको संहार करने-वाले चक्रको अपने हाथमें ले लिया, जो सौ-सौ सूर्योंकी तरह चमक रहा था, जिसकी धार पैनी थी, रावणका अन्त करनेवाले दस आरे उसमें लगे हुए थे, जो क्षयकालकी ज्वालमालाके समान भयकर था, ऐसा लगता जैसे साँप ही लक्ष्मणकी हथेली-पर कुण्डली मारकर बैठ गया हो। सफेद और उज्ज्वल, जो चक्र लक्ष्मणकी हथेलीपर ऐसा शोभित हो रहा था जैसे कमलके ऊपर 'कमल' रखा हो। लक्ष्मणने उसे घुमा कर मार दिया। वह भी आकाशमें घूमता हुआ गया। उसे देखकर उन दोनोंमें अनुरक्त देवों और मनुष्योंको शंका हो गयी कि अब तो सीतादेवी-के दोनों पुत्रोंका अन्त समीप है। परन्तु आशाके विपरीत, वह चक्र लवण और अंकुशकी तीन प्रदक्षिणाएँ देकर वापस लक्ष्मण के पास आ गया। लक्ष्मणने दुबारा उसे मारा, परन्तु वह फिर लौटकर आ गया। लक्ष्मण बार-बार उस चक्रको छोड़ते उस बालकपर, परन्तु वह उसी प्रकार वापस आ जाता जिस प्रकार बाहरसे सतायी हुई पत्नी घूम-फिरकर अपने पतिके पास आ जाती है ॥ १-९ ॥

[१९] तब कलह करानेमें सदा तत्पर और चतुर नारद आनन्दसे नाच उठे। उन्होंने कहा, "अरे राम और लक्ष्मणकी यह कौन-सी बुद्धि है? अपने ही पुत्रोंको मारकर उन्हें शुद्धि कहाँ मिलेगी? जब सीतादेवी गर्भवती थी, तब उसे वनमें निर्वासित कर दिया गया। वहीं ये दो पुत्र उन्हींसे उत्पन्न हुए। इनमें पहला अनंग लवण है जो कुलकी शोभा और जयश्रीका का निवास है, दूसरा यह मदनांकुश है। हे देव! इनके

रिसि-वयणु सुणेवि महा-बलेहिँ । परिचत्तइँ करणइँ हरि-बलेहिँ ॥६॥
अवरुण्डिय चुम्बिय बिहिँ वि वे वि । कम-कमलहँ णिवडिय ताम ते वि ॥७
लवणङ्कुस-लक्खण-राम मिलिय । चउ सायर एक्कहिँ णाइँ मिलिय ॥८॥

घत्ता

वज्जजङ्घु सइँ भुअ जुएँहिँ अवरुण्डिउ आणन्द-कन्तेंण ।
वार-वार पोमाइयउ 'महु मिलिय पुत्त पइँ होन्तेंण' ॥९॥

●

[८३ तेआसीमो संधि]

लवणङ्कुस पुरेँ पइसारेंवि जिय-रयणियर-महाहवेंण ।
वइदेहिहेँ दुक्ख-मोयएँण दिव्यु समोड्डिउ राहवेंण ॥

[१]

लवणङ्कुस-कुमार वलहद्दें । पुरेँ पइसारिय जय-जय-सद्दें ॥१॥
झल्लरि-पडह-भेरि-दडि-सङ्खेंहिँ । वज्जन्तहिँ अवरेहिँ अ-सङ्खेंहिँ ॥२॥
रामु अणङ्गलवणु रहेँ एक्कहिँ । लक्खणु मयणङ्कुसु अण्णेक्कहिँ ॥३॥
वज्जजङ्घ थिउ दुरम-वारणेँ । सीया-चन्दु णाइँ गयणङ्गणेँ ॥४॥
जय-जयकारिउ भड-सङ्घाएं । 'रामहाँ सुअ भेकाविय आएं' ॥५॥
जणवउ रहसें अङ्गें ण माइउ । एक्कमेक्क-चूरन्तु पधाइउ ॥६॥
पेक्खेंवि ते कुमार पइसन्ता । णारिउ ण वि गणन्ति पइ सन्ता ॥७॥

साथ तुम्हारा युद्ध कैसा !" महामुनि नारद के वचन सुनकर राम और लक्ष्मणने अपने हथियार डाल दिये। आकर उन्होंने दोनोंका सिर चूम लिया। वे भी उनके चरणकमलोंमें गिर पड़े। लवण, अंकुश, राम और लक्ष्मण एक साथ मिलकर ऐसे लग रहे थे मानो चारों समुद्र एक जगह आ मिले हों। सीताके पति रामने वज्रजंघको अपनी बाँहोंमें भर लिया। बार-बार उसकी प्रशंसा की कि आपके होनेसे ही मैं अपने दोनों बेटे पा सका।

●

तेरासीवीं सन्धि

निशाचरोंके महायुद्धको जीतनेवाले रामने अयोध्यामें कुमारोंका प्रवेश धूम-धामसे कराया। वैदेहीकी बदनामीसे डरे हुए रामने उन्हें समझाया।

[१] रामने जय-जय शब्दके साथ कुमार लवण और अंकुश का नगरमें प्रवेश कराया। झल्लरी, पटह, भेरी, दडी, शंख एवं दूसरे असंख्य वाद्य बज उठे। एक रथपर राम और अनंग-लवण बैठे, दूसरेपर मदनांकुश और लवण। दुर्दम गजपर वज्रजंघ बैठा, मानो आकाशमें दूसरा चाँद ही हो। योद्धा-समूहने उसका जयजयकार किया, क्योंकि उसीने रामकी भेंट उनके पुत्रोंसे करायी थी। जनपद हर्षके अतिरेकमें अपने अंगों में नहीं समा रहा था, एक दूसरेको चूर-चूर करते हुए दौड़े आ रहे थे। नगरमें प्रवेश करते हुए कुमारोंको देखनेमें स्त्रियाँ

सीया-णन्दण-रूवालोयणें । कायइ का वि अकसउ कोयणें ॥८॥
का वि देइ अहरुल्लएँ कज्जलु कापेँ वि घत्तिउ णयणएँ अलत्तु ॥९॥

घत्ता

विवरेरउ णायरिया-यणु किउ लवणङ्कुस-दंसणेंण ।
जगेँ कामें को वि ण वञ्चिउ स-सरें कुसुम-सरासणेंण ॥१०॥

[२]

आयल्लुउ करन्त तरुणी-यणें । लवणङ्कुस पइसारिय पट्टणें ॥१॥
तहिँ तेहएँ पमाणें विज्जाहर । लङ्काहिव-किक्किन्ध-पुरेसर ॥२॥
भामण्डल-णल-णीलङ्गय । जणय-कणय-मरुतणय समागय ॥३॥
जे पट्टविय गाम-पुर-देसहुँ । गय हक्कारा ताहुँ असेसहुँ ॥४॥
णाणा-जाण-विमाणेंहिँ आइय । णं जिण-जम्मणें अमर पराइय ॥५॥
दिट्ठु रामु सोमित्ति महाउसु । दिट्ठु अणङ्गलवणु मयणङ्कुसु ॥६॥
सत्तुहणो वि दिट्ठु ताह सुन्दरु । एक्कहिँ मिलिय पञ्च णं मन्दर ॥७॥
पुणरवि रामहोँ किय अहिवन्दण । 'धण्णउ तुहुँ जसु एहा णन्दण ॥८॥

घत्ता

एत्तडउ दोसु पर रहुवइहेँ जं परमेसरि णाहिँ घरेँ ।
म पमायहि कोवहुँ छन्देंण आणेंवि का वि परिक्ख करें' ॥९॥

[३]

तं णिसुणेवि चवइ रहुणन्दणु । 'जाणमि सायहेँ तणउ सइत्तणु ॥१॥
जाणमि जिह हरि-वंसुप्पण्णी । जाणमि जिह वय गुण-संपण्णी ॥२॥
जाणमि जिह जिण-सासणें भत्ती । जाणमि जिह महु सोक्खुप्पत्ती ॥३॥

इतनी व्यस्त थीं कि पासमें खड़े अपने पतियोंको भी कुछ नहीं समझ रही थीं। सीतापुत्रोंके सौन्दर्यको देखनेकी आतुरतामें कोई स्त्री अपनी आँखोंमें लाक्षारस लगा रही थी। कोई स्त्री अधरोंमें काजल दे रही थी। कोई अपना आँचल पीछे फेंक रही थी। कुमार लवण और अंकुशके दर्शनोंने स्त्रियोंको अस्त-व्यस्त बना दिया। ठीक भी है, क्योंकि जब काम कुसुमधनुष और तीर लेकर निकलता है तो वह किसे अपने वशमें नहीं कर लेता ॥ १-१० ॥

[२] इस प्रकार तरुणीजनको पीड़ित करते हुए लवण और अंकुशने नगरमें प्रवेश किया। सबकी सब भीड़ उनके साथ थी। भामण्डल नल, नील, अग, अंगद, लंकाधिप और किष्किधराजा भी थे। जनक, कनक और हनुमान् भी वहाँ आये। जो और भी (सामन्त) ग्राम, पुर और देशोंको भेजे गये, उन्हें भी बुलावा भेजा गया। सब नाना यानों और विमानोंमें इस प्रकार आये, मानो जिन-जन्मके समय देवता ही आये हों। उन्होंनें क्रमशः राम-लक्ष्मण लवण और अंकुशको देखा। फिर उन्होंने शत्रुघ्नको देखा। वे ऐसे लग रहे थे, मानो पाँच मन्दराचल एक जगह आ मिले हों। फिर उन्होंने रामका अभिनन्दन किया, "तुम धन्य हो, जिसके ऐसे पुत्र हैं।" परन्तु इसमें खटकने-वाली एक ही बात है, वह यह कि परमेश्वरी सीतादेवी, अपने घरमें नहीं हैं। लोकापवादमें विश्वास करना ठीक नहीं, इसकी कोई दूसरी परीक्षा करनी चाहिए॥ १-९ ॥

[३] यह सुनकर रामने कहा, "मैं सीतादेवीके सतीत्वको जानता हूँ। जानता हूँ कि किस प्रकार हरिवंशमें जनमी। जानता हूँ कि वह किस प्रकार व्रतों और गुणोंसे परिपूर्ण हैं। जानता हूँ कि वह जिनशासनमें कितनी आस्था रखती हैं।

जा अणु-गुण-सिक्खा-वय-धारी । जा सम्मत्त-रयण-मणि-सारी ॥४॥
जाणमि जिह सायर-गम्मीरी । जाणमि जिह सुर-महिहर-धीरी ॥५॥
जाणमि अङ्कुस-लवण-जणेरी । जाणमि जिह सुय जणयहों केरी ॥६॥
जाणमि ससं भामण्डल-रायहों । जाणमि सामिणि रज्जहों आयहों ॥७॥
जाणमि जिह अन्तेउर-सारी । जाणमि जिह महु पेसण-गारी ॥८॥

घत्ता

मेल्लेप्पिणु णायर-लोएँण महु घरें उब्भा करेंवि कर ।
जो दुज्जसु उप्परें घित्तउ एउ ण जाणहों एक्कु पर' ॥९॥

[४]

तहिं अवसरें रयणासव-जाएं । कोक्किय तियड विहीसण-राएं ॥१॥
बोल्लाविय एत्तहें वि तुरन्तें । लङ्कासुन्दरि तो हणुवन्तें ॥२॥
विण्णि वि विण्णवन्ति पणमन्तिउ । सीय-सइत्तण गव्वु वहन्तिउ ॥३॥
'देव देव जइ हुअवहु डज्झइ । जइ मारुउ पङ-पोट्टलें वज्झइ ॥४॥
जइ पायालें णहङ्गणु लोट्टइ । कालान्तरेंण कालु जइ तिट्टइ ॥५॥
जइ उप्पज्जइ मरणु कियन्तहों । जइ णासइ सासणु अरहन्तहों ॥६॥
जइ अवरें उग्गमइ दिवायरु । मेरु-सिहरें जइ णिवसइ सायरु ॥७॥
एउ असेसु वि सम्भाविज्जइ । सीयहें सीलु ण पुणु मइलिज्जइ ॥८॥

घत्ता

जइ एव वि णउ पत्तिज्जहि तो परमेसर एउ करें ।
तुल-चाउल-विस-जल-जलणहँ पञ्चहँ एक्कु जि दिव्वु धरें' ॥९॥

जानता हूँ कि वह किस प्रकार मुझे सुख पहुँचाती रही। जानता हूँ कि वह अणुव्रतों, शिक्षाव्रतों और गुणव्रतों को धारण करती हैं। वह सम्यग्दर्शन आदि रत्नोंसे परिपूर्ण हैं, जानता हूँ कि वह समुद्रके समान गम्भीर हैं, जानता हूँ कि वह मन्दराचल पहाड़की तरह धीर हैं। जानता हूँ कि लवण और अंकुशकी माँ हैं। जानता हूँ कि वह राजा जनककी कन्या हैं। जानता हूँ कि वह राजा भामण्डलकी बहिन हैं। जानता हूँ कि वह इस राज्यकी स्वामिनी हैं। जानता हूँ वह अन्तःपुरमें श्रेष्ठ हैं। जानता हूँ वह किस प्रकार आज्ञा माननेवाली हैं। पर यह बात मैं फिर भी नहीं जानता कि नागरिकजनोंने मिलकर अपने दोनों हाथ ऊँचे कर मेरे घरपर यह कलंक क्यों लगाया ॥ १-९ ॥

[४] इस अवसरपर रत्नाश्रवके पुत्र राजा विभीषणने त्रिजटाको बुलवाया। उधर हनुमानने भी लंकासुन्दरीको बुलवाया। सीतादेवीके सतीत्वके विषयमें एक आस्थापूर्ण गर्वीले स्वरमें उन्होंने निवेदन करना प्रारम्भ किया, "हे देवदेव, यदि कोई आगको जला सके, यदि हवा को पोटलीमें बाँध सके, यदि पातालमें आकाश लौटने लग जाये, कालान्तरमें यदि काल भी नष्ट हो जाये, यदि कृतान्तको मौत दबोच ले, यदि अरहन्तका शासन समाप्त हो जाये, सूर्य पश्चिमसे निकलने लग जाये। चाहे मेरुपर्वतपर सागर रहने लग जाये, तो लग जाये। अर्थात् इन सबकी समाप्ति की एक बार सम्भावना की जा सकती है, परन्तु सीताके सतीत्व और शीलमें कलंककी आशा नहीं की जा सकती। यदि इतनेपर भी विश्वास नहीं होता हो, तो हे स्वामी, एक काम कीजिए। तिल, चावल, विष, जल और आग इन

[५]

तं णिसुणेंवि रहुवइ परिओसिउ । 'एव होउ' हक्कारउ पेसिउ ॥१॥
गउ सुग्गीउ विहीसणु अङ्गउ । चन्दोयर-णन्दणु पवणङ्गउ ॥२॥
पेसिउ पुप्फ-विमाणु पयट्टउ । णं णहयल-सरें कमलु विसट्टउ ॥३॥
पुण्डरीय-पुरवरु सम्पाइय । दिट्ठ देवि रहसेण ण माइय ॥४॥
'णन्द वद्ध जय होहि चिराउस । जिण्णि वि जाहँ पुत्त लवणङ्कुस ॥५॥
लक्खण-राम जेहिं आयामिय । सीहहिं जिह गइन्द ओहामिय ॥६॥
रक्खिय णारएण समरङ्गणें । तेहि मि ते पइसारिय पट्टणें ॥७॥
अम्हहुँ आय तुम्ह-हक्कारा । दिअहा होन्तु मणोरह-गारा ॥८॥

घत्ता

चडु पुप्फ-विमाणें भडारिएँ मिलु पुत्तहुँ पइ-देवरहुँ ।
सहुँ अच्छहिं मज्झें परिट्ठिय णिहिमि जेम चउ-सायरहुँ' ॥९॥

[६]

तं णिसुणेंवि लवणङ्कुस-मायएँ । वुत्तु विहीसणु गग्गिर-वायएँ ॥१॥
'णिट्ठुर-हियवहों अ-लइय-णामहों । जाणमि तत्ति ण किज्जइ रामहों ॥२॥
घल्लिय जेण रुवन्ति वणन्तरें । डाइणि-रक्खस-भूय-भयङ्करें ॥३॥
जहिं सद्दूल-सीह-गय-गण्डा । वब्बर-सवर-पुलिन्द-पयण्डा ॥४॥
जहिं बहु तच्छ-रिच्छ-रुरु-सम्बर । स-उरग-खग-मिग-विग-सिव-सूयर ॥५॥

पाँचोंको एक जगह रखिए[1] ॥ १–९ ॥

[५] यह सुनकर राम सन्तुष्ट हो गये। 'ऐसा ही हो' उन्होंने आदेश दिया। विभीषण अंगद और सुग्रीव दौड़े गये, चन्द्रोदर पुत्र और हनुमान् भी। भेजा गया पुष्पक विमान आकाशमें ऐसा लगता था मानो नभतलके सरोवरमें विशिष्ट कमल हो। वह पुण्डरीक नगरमें पहुँच गया। सबने देवी सीताको देखा, वे फूले नहीं समाये। उन्होंने प्रशंसा की, "देवी आनन्दमें रहो; बढ़ो. तुम्हारी जय हो, आयु लम्बी हो, तुम्हारे लवण और अंकुश जैसे बेटे हैं, तुम्हें क्या कमी है। उन्होंने राम और लक्ष्मणको उसी प्रकार झुका दिया है, जिस प्रकार सिंह हाथीको झुका देता है।" उनकी समरांगणमें नारदने रक्षा की। अब उन्हें अयोध्यामें प्रवेश दिया गया है। हम तुम्हें बुलाने आये हुए हैं। अब तुम्हारे दिन बड़े सुन्दर होंगे। "आदरणीय आप पुष्पक विमानमें बैठ जाइए और चलकर अपने पुत्र पति और देवरसे मिलिए और उनके बीच आरामसे उसी प्रकार रहिए, जिस प्रकार चारों समुद्रोंके बीच धरती रहती है ॥ १–९ ॥

[६] यह सुनकर लवण और अंकुशकी माँ सीतादेवी भरे गलेसे बोली, "पत्थर-हृदय रामका नाम मत लो। उनसे मुझे कभी सुख नहीं मिला, मैं यह जानती हूँ। जिसने रोती हुई मुझे डाइनों, राक्षसों और भूतोंसे भयंकर वनमें छुड़वा दिया, जिसमें बड़े-बड़े सिंह, शार्दूल, हाथी और गेंड़े थे। बर्बर शबर और प्रचण्ड पुलिंद थे। जिसमें तक्षक, रीछ और रुरु, साँभर थे,

---

१. अर्थात् जिस प्रकार ये चीजें एक साथ नहीं रह सकतीं, उसी प्रकार सीताका शील और कलंक एक साथ नहीं रह सकते।

जहिँ माणुसु जीवन्तु वि लुच्चइ। तिहिँ कलि-कालु वि पाणहुँ मुच्चइ॥६॥
तहिँ वणेँ महाविय अण्णाणेँ। एवहिँ किं तहोँ तणेण विमाणेँ॥७॥

घत्ता

जो तेण डाहु उप्पाइयउ पिसुणालाव-मरीसिएँण।
सो दुक्करु उल्हाविज्जइ मेह-सएण वि वरिसिएँण॥८॥

[७]

जइ वि ण कारणु राहव-चन्दें। तो वि जामि लइ तुम्हहँ छन्दें'॥१॥
एवँ भणेवि देवि जय-सुन्दरि। कम-कमलहिँ आवन्ति वसुन्धरि॥२॥
पुप्फ-विमाणेँ चडिय अणुराएं। परिमिय विज्जाहर-सङ्घाएं॥३॥
कोसल-णयरि पराइय जावेँहिं। दिणमणि गउ अत्थवणहोँ तावेँहिं॥४॥
जेत्थहोँ पियगमेण णिव्वासिय। तहोँ उववणहोँ मज्झेँ आवासिय॥५॥
कह वि विहाणु भाणु णहेँ उग्गउ। अहिमुहु सज्जण-लोउ समागउ॥६॥
दिण्णइँ तूरइँ मङ्गलु घोसिउ। पट्टणु णिरवसेसु परिओसिउ॥७॥
सीय पविट्ठ णिविट्ठ वरासणेँ। सासय-देवय णं जिण-सासणेँ॥८॥

घत्ता

परमेसरि पढम-समागमेँ झत्ति णिहालिय हलहरेँण।
सिय-पक्खहोँ दिवसेँ पहिल्लएँ चन्दलेह णं सायरेँण॥९॥

[८]

कन्तहेँ तणिय कन्ति पेक्खेप्पिणु। पभणइ पोमणाहु विहसेप्पिणु॥१॥
'जइ वि कुलग्गयाउ णिरवज्जउ। महिलउ होन्ति सुट्ठु णिल्लज्जउ॥२॥
दर-दाविय-कडक्ख-विक्खेवउ। कुडिल-मइउ वड्ढिय-अवलेवउ॥३॥
बाहिर-धिट्ठउ गुण-परिहीणउ। किह सय-खण्ड ण जन्ति णिहीणउ॥४॥

जिसमें साँप, पक्षी, मृग, भेड़िये, सियार और सुअर थे, जिसमें जीवित मनुष्यको फाड़ दिया जाता और जिसमें यम और विधाता भी अपने प्राणोंको छोड़ देते। जिसने बिना पूछे मुझे वनमें छुड़वा दिया, अब उनके विमान भेजनेका क्या मतलब ? चुगलखोरोंके कहनेपर उन्होंने मुझे जो आघात पहुँचाया है, उसकी जलन, सैकड़ों मेघोंकी वर्षासे भी शान्त नहीं हो सकती॥ १-८॥

[७] रामने मेरे साथ जो कुछ किया, उसके लिए कोई कारण नहीं था, फिर आप लोगोंका यदि अनुरोध है तो मैं चलती हूँ।" यह कहकर, जंयसे सुन्दर सीतादेवी जब चलीं तो लगा कि अपने चरणकमलोंसे धरतीकी अर्चना कर रही हैं। वह पुष्पकविमानमें बैठ गयीं। श्रद्धाभावसे भरे विद्याधर उनके चारों ओर थे। सूरज डूबते-डूबते वह कौशलनगरी जा पहुँचीं। प्रियतम रामने जिस उपवनमें उन्हें निर्वासन दिया था, वे उसी के बीचमें जाकर बैठ गयीं। किसी प्रकार सवेरा हुआ, आकाश-में सूरज उगा, और सज्जन लोग उनके सम्मुख आये। नगाड़े बज उठे, मंगलोंकी घोषणा होने लगी। समूचा नगर परितोष-की साँस ले रहा था। सीता निकलीं, और ऊँचे आसन पर बैठ गयीं, मानो शासन देवी ही जिनशासनमें आ बैठी हों। अपने प्रथम समागममें ही रामने सीतादेवीको इस प्रकार देखा, मानो शुक्लपक्षके पहले दिन चन्द्रलेखाको समुद्रने देखा हो॥ १-९॥

[८] अपनी कान्ताकी कान्ति देखकर रामने हँसकर कहा, "स्त्री, चाहे कितनी ही कुलीन और अनिन्द्य हों, वह बहुत निर्लज्ज होती हैं। भयसे वे अपने कटाक्ष तिरछे दिखाती हैं, परन्तु उनकी मति कुटिल होती है, और उनका अहंकार बढ़ा होता है। बाहर से ढीठ होती हैं, और गुणोंसे रहित। उनके सौ टुकड़े भी कर

मउ गणन्ति णिय-कुलु मइलन्तउ । तिहुअणेँ अयस-पडहु वज्जन्तउ ॥५॥
अङ्गु समोड्डेँ वि धिद्धिक्कारहोँ । वयणु णिएन्ति केम भत्तारहोँ' ॥६॥
सीय ण भीय सइत्तण-गव्वें । वलेँवि पवोल्लिय मच्छर-गव्वें ॥७॥
'पुरिस णिहीण होन्ति गुणवन्त वि । तियहेँ ण पत्तिज्जन्ति मरन्त वि ॥८॥

घत्ता

खडु लक्कडु सलिलु वहन्तियहेँ पउराणियहेँ कुलुग्गयहेँ ।
रयणायरु खारइँ देन्तउ तो वि ण थक्कइ णम्मयहेँ ॥९॥

[९]

साणु ण केण वि जणेँण गणिज्जइ । गङ्गा-णइहिँ तं जि ण्हाइज्जइ ॥१॥
ससि स-कलङ्कु तहि जि पह णिम्मल । कालउ मेहु तहिँ जेँ तडि उज्जल ॥२॥
उवलु अपुज्जु ण केण वि छिप्पइ । तहि जि पडिम चन्दणेँण विलिप्पइ ॥३॥
धुज्जइ पाउ पङ्कु जइ लग्गइ । कमल-माल पुणु जिणहोँ वलग्गइ ॥४॥
दीवउ होइ सहावेँ कालउ । वट्टि-सिहएँ मण्डिज्जइ आलउ ॥५॥
णर-णारिहिँ एवड्डउ अन्तरु । मरणेँ वि वेल्लि ण मेल्लइ तरुवरु ॥६॥
एँह पइँ कवण वोल्ल पारम्भिय । सइ-वडाय मइँ अज्जु समुब्भिय ॥७॥
तुहुँ पेक्खन्तु अच्छु वीसत्थउ । डहउ जलणु जइ डहँवि समत्थउ ॥८॥

घत्ता

किं किज्जइ अण्णेँ दिव्वेँ जं ण वि सुज्झइ मह मणहोँ ।
जिह कणय-कोडि डाहुत्तर अच्छमि मज्झेँ हुआसणहोँ' ॥९॥

दीजिए, परन्तु फिर भी हीन नहीं होतीं। अपने कुलमें दाग लगानेसे भी वे नहीं झिझकतीं और न इस बातसे कि त्रिभुवन में उनके अयशका डंका बज सकता है। अंग समेटकर धिक्का-रनेवाले पतिको कैसे अपना मुख दिखाती हैं।" परन्तु सीता अपने सतीत्वके विश्वाससे जरा भी नहीं डरी। उसने ईर्ष्या और गर्वसे भरकर उलटा रामसे कहा, "आदमी चाहे कमजोर हो या गुणवान् स्त्रियाँ मरते दम तक उसका परित्याग नहीं करतीं। पवित्र और कुलीन नर्मदा नदी, रेत, लकड़ी और पानी बहाती हुई समुद्रके पास जाती है, फिर भी वह उसे खारा पानी देनेसे नहीं अघाता॥ १–९॥

[९] श्वान (कुत्ता) को कोई आदर नहीं देता, भले ही गंगा नदीमें उसे नहलाया जाये। चन्द्रमा कलंक सहित होता है, फिर भी उसकी प्रभा निर्मल होती है। मेघ काले होते हैं,किन्तु उनकी बिजली गोरी होती है। पत्थर अपूज्य होता है, परन्तु उसकी प्रतिमा पर चन्दनसे लेप किया जाता है। कीचड़के लगने पर लोग पैर धोते हैं, पर उससे उत्पन्न कमलमाला जिनवरको अर्पित होती है। दीपक स्वभावसे काला होता है, परन्तु अपनी बत्ती-की शिखासे आलेकी शोभा बढ़ाता है। नर और नारीमें यदि अन्तर है तो यही कि मरते-मरते भी लता पेड़का सहारा नहीं छोड़ती। तुमने यह सब क्या बोलना प्रारम्भ किया है? मैं आज भी सतीत्वकी पताका ऊँची किये हुई हूँ। इसीलिए तुम्हारे देखते हुए भी मैं विश्रब्ध हूँ। आग यदि मुझे जलानेमें समर्थ हो तो मुझे जला दे। और दूसरी बड़ी बातसे क्या होगा, जिससे मेरा मन ही शुद्ध न हो। जिसप्रकार आगमें पड़कर सोनेकी डोर चमक उठती है, इसीप्रकार मैं भी आगके मध्य बैठूँगी"॥ १–९॥

[१०]

सीयहेँ वयणु सुणेँवि जणु हरिसिउ । उब्भारउ रोमञ्चु पदरिसिउ ॥१॥
महुर-णराहिव-जस-लोह-लुहणें । हरिसिउ लक्खणु सहुँ सत्तुहणें ॥२॥
तिण्णि वि विप्फुरन्त-मणि-कुण्डल । हरिसिय जणय-कणय-मामण्डल ॥३॥
हरिसिय लवणङ्कुस दुस्सील वि । हरिसिय वज्जजङ्घ-णल-णील वि ॥४॥
तार-तरङ्ग-रम्भ-विससेण वि । दहिमुह-कुमुय-महिन्द-सुसेण वि ॥५॥
गवय-गवक्ख-सङ्ख-सकन्दण । चन्दरासि-चन्दोयर-णन्दण ॥६॥
लङ्काहिव-सुग्गीवङ्गङ्गय । अम्बव-पवणञ्जय-पवणङ्गय ॥७॥
लोयवाल-गिरि-णइउ समुद्द वि । विसहरिन्द अमरिन्द णरिन्द वि॥८॥

घत्ता

तइलोक्कमन्तर-वत्तिउ मयलु वि जणवउ हरिसियउ ।
पर हियवएँ कलुसु वहन्तउ रहुवइ एक्कु ण हरिसियउ ॥९॥

[११]

सीयएँ जं जे वुत्तु अवलेवें । तं जि समत्थिउ पुणु वलएवें ॥१॥
कोक्किय खणय खणाविय खोणी । हत्थ-सयाइँ तिण्णि चउ-कोणी ॥२॥
पूरिय खर-कक्कड विच्छड्डेंहिं । कालागुरु-चन्दण-सिरिखण्डेंहिं ॥३॥
देवदारु-कप्पूर-सहासेंहिं । कञ्चण-मञ्च रइय चउ-पासेंहिं ॥४॥
चडिय राय आया गिव्वाण वि । इन्द-चन्द-रवि-हरि-बम्भाण वि ॥५॥
इन्धण-पुञ्जें चडिय परमेसरि । णं संठिय वय-सीलहुँ उप्परि ॥६॥
'अहों देवहों महु तणउ सइत्तणु । जोएज्जहों रहुवइ-दुट्ठत्तणु ॥७॥
अहों वइसाणर तुहु मि डहेज्जहि । जइ विरुआरी तो म खमेज्जहि' ॥८॥

[१०] सीताके वचन सुनकर जनसमूह हर्षित हो उठा। ऊँचे होकर उसने अपना रोमांच प्रकट किया। राजा मधुरके यशकी रेखा मिटानेवाले शत्रुघ्नके साथ लक्ष्मण भी यह सुनकर प्रसन्न हुआ। जनक, कनक और भामण्डल भी हर्षविभोर हो उठे। उनके कर्णकुण्डलोंके मणि चमक रहे थे। कठोर स्वभाव लवण और अंकुश भी प्रसन्न थे। वज्रजंघ ,नल और नील भी प्रसन्न थे। तार तरंग रंभ विश्वसेन भी, दधिमुख, कुमुद, महेन्द्र और सुषेण भी, गवय, गवाक्ष, शंख, शक्रनन्दन इन्द्रपुत्र, चन्द्रराशि चन्द्रोदर नन्दन लंकाधिप,सुग्रीव,अंग, अंगद, जम्बव,पवनञ्जय, पवनांगद, लोकपाल, गिरि, नदियाँ और समुद्र भी, नागराज, देवराज और नरराज भी प्रसन्न थे। तीनों लोकोंके भीतर जितने भी लोग थे वे सब हर्षित हुए। परन्तु एक अकेले राम नहीं हँसे। उनके मनमें अभी तक आशंका थी ॥ १–९ ॥

[११] सीताने जब गर्वके स्वरमें अपना प्रस्ताव रखा, तो रामने भी उसका समर्थन कर दिया। खनक बुलाये गये, और उन्होंने धरती खोदना प्रारम्भ कर दिया। साढ़े सात हाथ लम्बा चौकोर वह गड्ढा लकड़ियोंके समूहसे, कालागुरु चन्दन, श्रीखण्ड, देवदार, कपूर आदिसे भर दिया। उसके चारों ओर सोनेके मंच बना दिये गये। राजा लोग अपने-अपने यानोंपर बैठकर आये। देवता, इन्द्र, रवि, विष्णु और ब्रह्मा भी वहाँ पधारे। परमेश्वरी परमसती सीतादेवी लकड़ियोंके उस ढेर पर चढ़ गयीं, उस समय वे ऐसी लगीं मानो व्रत और शीलके ऊपर स्थित हों। उन्होंने सम्बोधित करते हुए कहा, "अरे देवताओ और मनुष्यो, आपलोग मेरा सतीत्व और रामकी दुष्टता, अपनी आँखों देख लें। हे अग्नि (देव), आप जलें, यदि मेरा आचरण अपवित्र है, तो मुझे कदापि क्षमा न करें।" कोलाहल

घत्ता

किउ कलयलु दिण्णु हुआसणु । महि जेँ आय सम-आकडिय ।
सो णाहिँ को वि तहिँ अवसरेँ जेण ण मुक्की धाहडिय ॥९॥

[१२]

लव-कङ्कुस-विच्छड्ड-पलित्तएँ । धाहाविउ कोसलएँ सुमित्तएँ ॥१॥
धाहाविउ सोमित्ति-कुमारेँ । 'अज्जु माय मुअ महु अवियारेँ' ॥२॥
धाहाविउ भामण्डल-जणएँहिँ । धाहाविउ लवणङ्कुस-तणएँहिँ ॥३॥
धाहाविउ लङ्कालङ्कारेँ । धाहाविउ हणुवन्त-कुमारेँ ॥४॥
धाहाविउ सुग्गीव-णरिन्देँ । धाहाविउ महिन्द-माहिन्देँ ॥५॥
धाहाविउ सव्वेँहिँ सामन्तेँहिँ । रामहोँ धिद्धिक्कारु करन्तेँहिँ ॥६॥
धाहाविउ वइदेहि-कएं विहिँ । लङ्कासुन्दरि-तियडाएविहिँ ॥७॥
उद्ध-मुहेण पवड्ढिय-सोएं । धाहाविउ णायरिएं लोएं ॥८॥

घत्ता

'णिट्ठुरु णिरासु मायारउ दुक्किय-गारउ कूर-मइ ।
णउ जाणहुँ सीय वहेविणु रामु कहेसइ कवण गइ' ॥९॥

[१३]

थिउ एत्थन्तरेँ कारणु भारिउ । णिरवसेसु जगु धूमन्धारिउ ॥१॥
जालउ विप्फुरन्ति तहिँ अवसरेँ । णं विज्जुलउ अकय-आडम्बरेँ ॥२॥
सीय सइत्तणेण णउ कम्पिय । 'हुक्कु हुक्कु सिहि' एम पजम्पिय ॥३॥
'एहु देहु गुण-गहण-णिवासणु । डहेँ डहेँ जइ सचउ जेँ हुआसणु ॥४॥
डहेँ डहेँ जइ जिण-सासणु कड्ढिउ । डहेँ डहेँ जइ णिय-गोत्तु ण मण्डिउ ॥५
डहेँ डहेँ जइ हउँ केण वि ऊणी । डहेँ डहेँ जइ चारित्त-विहूणी ॥६॥
डहेँ डहेँ जइ भत्तारहोँ दोही । डहेँ डहेँ जइ परलोय-विरोही ॥७॥

होने लगा, उसीके बीच आग लगा दी गयी। सारी धरती ज्वालाओंकी लपेटमें आ गयी। उस समय एक भी आदमी वहाँ पर ऐसा नहीं था जो दहाड़ मारकर न रोया हो॥ १-६ ॥

[१२] गड्ढे में लक्कड़ोंके समूहके जलते ही कौशल्या और सुमित्रा रो पड़ीं। लक्ष्मण रो पड़े। उन्होंने कहा, "आज मेरे अविचारसे माँ मर गयी।" भामण्डल और जनक भी खूब रोये। पुत्र लवण और अंकुश भी फूट-फूटकर रोये। लंका-अलंकार विभीषण रोये, हनुमान भी खूब रोये, राजा सुग्रीव भी रोये, महेन्द्र और माहेन्द्र भी रोये। सब सामन्त वह दृश्य देखकर रो रहे थे और रामको धिक्कार रहे थे। सीतादेवीके लिए विधाता तक रोया, लंकासुन्दरी और त्रिजटा भी रोयीं। शोकातुर अपना मुख ऊँचा किये हुए नागरिक लोग भी विलाप कर रहे थे। वे कह रहे थे कि राम निष्ठुर, निराश, मायारत, अनर्थकारी और दुष्ट बुद्धि हैं। पता नहीं सीतादेवीको इस प्रकार होमकर वह कौन-सी गति पायेंगे॥ १-९ ॥

[१३] इसी मध्यान्तरमें एक बड़ी घटना हो गयी। सारा संसार धुएँसे अन्धकारमय हो गया। उसमें ज्वालाएँ ऐसी चमक रही थीं, मानो मेघोंमें बिजली चमक रही हो। परन्तु सीतादेवी अपने सतीत्वसे नहीं डिग रही थीं। वह कह रही थीं, "आग मेरे पास आओ, यदि मेरे गुणोंका अपलाप करनेवाला निर्वासन ठीक है, तो तुम सचमुच मुझे जला दो, जला दो। यदि मैंने जिनशासन छोड़ा हो, तो तुम मुझे जला दो, यदि मैंने अपने गोत्रकी शोभा न रखी हो तो मुझे जला दो, जला दो। यदि मैं किसी भी प्रकार न्यून हूँ तो जला दो, यदि चरित्रहीन होऊँ तो मुझे जला दो, जला दो। यदि मैंने अपने पतिसे विद्रोह किया हो, तो मुझे जला दो, यदि मैंने परलोकसे विद्रोह

इहेँ इहेँ सयल-भुवण-सन्तावणु । अइ मइँ मणेंण वि इच्छिउ रावणु' ॥८॥
तं एवड्डु धीरु को पावइ । जिहि सीयलउ होइ ण पहावइ ॥९॥

घत्ता

तहिँ अवसरेँ मणेँ परितुट्ठउ कहइ पुरन्दरु सुर-यणहोँ ।
'जिहि सक्कइ इहेँ वि ण सक्कइ पेक्खु पहाउ सइत्तणहोँ' ॥१०॥

[१४]

ताम तरुण-तामरसेंहिँ छण्णउ । सो जेँ जलणु सरवरु उप्पण्णउ ॥१॥
सारस-हंस-कोञ्च-कारण्डेंहिँ । गुमगुमन्त-छप्पय-विच्छड्डेंहिँ ॥२॥
जलु अत्थक्कएँ कहि मि ण माइउ । मञ्च-सयइँ रेल्लन्तु पधाइउ ॥३॥
णासइ सव्वु लोउ सहुँ रामें । सलिलु पवड्ढिउ सीयहेँ णामें ॥४॥
अण्णु वि सहसवत्तु उप्पण्णउ । दियवरेँ आसणु णं अवइण्णउ ॥५॥
तासु मज्झेँ मणि-कणय-रवण्णउ । दिव्वासणु समुच्चु उप्पण्णउ ॥६॥
तहिँ जाणइ जण-साहुक्कारिय । सइँ सुरवर-वहूहिँ वइसारिय ॥७॥
तहिँ वेलहिँ सोहइ परमेसरि । णं पच्चक्ख लच्छि कमलोवरि ॥८॥
आहय दुन्दुहि सुरवर-सत्थें । मेल्लिउ कुसुम-वासु सइँ हत्थें ॥९॥

घत्ता

जय-जय-कारु पवुट्ठउ सुह-वयणावण्णण-भरिउ ।
णाणाविह-तूर-सद्दा-रउ जाणइ-जसु व पवित्थरिउ ॥१०॥

[१५]

तो एत्थन्तरेँ णिव दीहाउस । सीयहेँ पासु दुक्क लवणङ्कुस ॥१॥
जिह ते तिह विण्णि वि हरि-हलहर । तिह भामण्डल-णल-चेलन्धर ॥२॥

किया हो, तो मुझे जला दो। यदि मैंने सारी दुनियाको पीड़ा पहुँचायी हो तो मुझे जला दो, यदि मैंने मनसे रावणकी इच्छा की हो तो जला दो मुझे। दुनियामें भला इतना बड़ा धीरज किसके पास होगा कि आग उसके लिए ठण्डी हो जावे, और वह जले तक नहीं। उस अवसरपर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और उसने देवताओंसे कहा, "आग भी आशंकामें पड़ गयी है, वह जल नहीं सकती, शायद सतीत्वका प्रभाव देखना चाहती है" ॥ १-१० ॥

[१४] इसी बीच वह आग, नवकमलोंसे ढके हुए सरोवरके रूपमें बदल गयी। सारस,हंस,क्रौंच और कारण्डवों एवं गुनगुनाते भौंरोंके समूहसे युक्त सरोवरका अविश्रान्त जल कहीं भी नहीं समा पा रहा था। सैकड़ों मंचों पर रेलपेल मचाता हुआ वह रहा था। सीताके नामसे वह पानी इतना बढ़ा कि रामसहित सबलोगोंके नष्ट होनेकी आशंका उत्पन्न हो गयी। उस सरोवरमें एक विशाल कमल उग आया, मानो सीतादेवीके लिए आसन हो। उस कमलके मध्यमें मणियों और स्वर्णसे सुन्दर एक सिंहासन उत्पन्न हुआ। उसपर सुरवधुओंने स्वयं जनाभिनन्दित सीतादेवीको अपने हाथों उस आसन पर बैठाया। उस समय परमेश्वरी सीतादेवी ऐसी शोभित हो रही थीं मानो कमलके ऊपर प्रत्यक्ष लक्ष्मी ही विराजमान हों। देवताओंके समूहने दुन्दुभि बजाकर फूलोंकी वर्षा की। शुभ वचनोंसे परिपूर्ण जयजयकार शब्द होने लगा, तूर्योंका स्वर जानकीदेवीके यशकी भाँति फैलने लगा ॥१-१०॥

[१५] इतनेमें दीर्घायु लवण और अंकुश सीतादेवीके पास पहुँचे। उसी प्रकार राम और लक्ष्मण दोनों, भामण्डल, नल

तिह सुग्गीव-णील-मइसायर । तिह सुसेण-विससेण-असायर ॥३॥
तिह स-विहीसण कुमुअङ्गय । अणय-कणय-मारुइ-पवणञ्जय ॥४॥
तिह गय-गवय-गवक्ख-विराहिय । वज्जजङ्घ-लक्खण गुणाहिय ॥५॥
तिह महिन्द-माहिन्दि स-दहिमुह । तार-तरङ्ग-रम्भ-पहु-दुम्मुह ॥६॥
तिह मइकन्त-वसन्त-रविप्पह । चन्दमरीचि-हंस-पहु-दिढरह ॥७॥
चन्दरासि-सन्ताण णरेसर । रयणकेसि-पीइङ्कर खेयर ॥८॥
तिह अम्बव-अम्बवि-इन्दाउह । मन्दहत्थ-ससिपह-तारामुह ॥९॥
तिह ससिवद्धण-सेय-समुद्द वि । रइवद्धण-णन्दण-कुन्देद्द (?)वि ॥१०॥
कच्छिभुत्ति-कोलाहल-सरल वि । णहुस-कियन्तवत्त-चल-तरल वि ॥११॥

घत्ता

अवर वि एक्केक्क-पहाणा उर-रोमञ्च-समुच्छलिय ।
अहिसेय-समएँ णं लच्छिहेँ सयल-दिसा-गइन्द मिलिय ॥१२॥

[१६]

तो बोल्लिज्जइ राहव-चन्दें । 'णिक्कारणें खल-पिसुणहँ छन्दें ॥१॥
जं अवियप्पें मइँ अवमाणिय । अण्णु वि दुहु एवड्डु पराणिय ॥२॥
तं परमेसरि महु मरुसेज्जहि । एक्क-वार अवराहु खमेज्जहि ॥३॥
आउ जाहुँ घर-वासु णिहालहि । सयलु वि णिय-परियणु परिपालहि ॥४
पुप्फ-विमाणें चडहि सुर-सुन्दरें । वन्दहि जिण-भवणइँ गिरि-मन्दरें ॥५
उववण-णइउ महदह-सरवरें । खेत्तइँ कप्पद्दुम-कुलगिरिवरें ॥६॥
णन्दणवण-काणणइँ महायर । जणवय-वेइ-दीव-रयणायर ॥७॥

घत्ता

मणें चरहि एउ महु वुत्तउ मच्छरु सयलु वि परिहरहि ।
सइ जिह सुरवइ-संसग्गिएँ णीसावण्णु रज्जु करहि' ॥८॥

और वेलंधर, सुग्रीव नील और मतिसागर, सुसेन, विश्वसेन और जसाकर, विभीषण, कुमुद और अंगद, जनक, कनक, मारुति और पवनञ्जय, गय, गवय, गवाक्ष और विराधित, वज्रजंघ, शत्रुघ्न और गुणाधिप, महेन्द्र, माहेन्द्र, दधिमुख, तार, तरंग, रंभ, प्रसु और दुर्मुख, मतिकान्त, वसन्त और रविप्रभ, चन्द्रमरीची, हंस, प्रभु और दृढ़रथ, राजा चन्द्रराशिका पुत्र रतनकेशी और पीतंकर, विद्याधर, जम्ब, जाम्बव, इन्द्रायुध, मन्द, हस्त, शशिप्रभ, तारामुख, शशिवर्धन, श्वेतसमुद्र, रति-वर्धन, नन्दन और कुन्देदु, लक्ष्मीभुक्ति, कोलाहल, सरल, नहुष, कृतान्तपत्र और तरल ये सब उस अवसरपर वहाँ पहुँचे। और भी दूसरे रोमांचित हृदय, एक-एक प्रधान भी, आकर मिले मानो लक्ष्मीके अभिषेक समय समस्त दिग्गज ही आकर मिल गये हों ॥ १–१२ ॥

[१६] तब राघवचन्द्र ने कहना प्रारम्भ किया, "अकारण दुष्ट चुगलखोरोंके कहनेमें आकर, अप्रिय मैंने जो तुम्हारी अवमानना की, और जो तुम्हें इतना बड़ा दुःख सहन करना पड़ा, हे परमेश्वरी, तुम उसके लिए मुझे एक बार क्षमा कर दो, आओ चलें। तुम घर देखो और अपने सब परिजनोंका पालन करो, देवताओंके सुन्दर पुष्पक विमानमें बैठ आओ, मंदराचल और जिनमन्दिरोंकी वन्दना करो। उपवन, नदियों और विशाल सरोवरोंसे युक्त कल्पद्रुम, कुलगिरि पर्वतपर, और जो दूसरे क्षेत्र हैं, विशाल नन्दनवन और कानन, जनपद वेष्टित द्वीप तथा रत्नाकर आदिकी यात्रा करो। मेरा यह कहा अपने मनमें रखो, समस्त ईर्ष्याभाव छोड़ दो, इन्द्रके साथ जैसे इन्द्राणी राज्य करती है, उसी प्रकार तुम भी समस्त राज्य करो ॥ १–८ ॥

[१७]

तं णिसुणेंवि परिचत्त-सणेहिएँ । एव पजम्पिउ पुणु वइदेहिएँ ॥१॥
'अहों राहव मं जाहि विसायहों । ण वि तउ दोसु ण जण-सङ्घायहों ॥२॥
भव-भव-सएँहिं विणासिय-धम्महों । सव्वु दोसु एँउ दुक्किय-कम्महों ॥३॥
को सक्कइ णासणहँ पुराइउ । जं अणुलग्गउ जीवहुँ आइउ ॥४॥
बल मइँ बहुविह-देस-णिउत्ती । तुज्झु पसाएं वसुमइ भुत्ती ॥५॥
बहु-वारउ तम्बोलु समाणिउ । इहलोइउ सुहु सयलु वि माणिउ ॥६॥
बहु-वारउ पवहिय-बहु-भोग्गी । पइँ सहुँ पुप्फ-विमाणें वलग्गी ॥७॥
बहु-वारउ भवणन्तरेँ हिण्डिउ । अप्पउ बहु-मण्डणेंहिं पमण्डिउ ॥८॥
एवहिँ तिह करेमि पुणु रहुवइ । जिह ण होमि पडिवारी तियमइ ॥९॥

घत्ता

महु विषय-सुहेंहिं पजत्तउ छिन्दमि जाइ-जरा-मरणु ।
णिव्विण्णी भव-संसारहों लेमि अज्जु धुवु तव-चरणु' ॥१०॥

[१८]

एम ताएँ एँउ वयणु चवेप्पिणु । दाहिण-करेंण समुप्पाडेप्पिणु ॥१॥
णिय-सिर-चिहुर तिलोयाणन्दहों । पुरउ पघल्लिय राहव-चन्दहों ॥२॥
केस णिएवि सो वि मुच्छंगउ । पडिउ णाइँ तरुवरु मरु-आहउ ॥३॥
महिहिं णिसण्णु सुदट्ठु णिचेयणु । जाव कह वि किर होइ स-चेयणु ॥४॥
ताव णियन्ताहँ जिण-पय-सेवहुँ । विज्जाहर-भूगोयर-देवहुँ ॥५॥
सीयएँ लोक-तरण्डएँ थाएँवि । कइय दिक्ख रिसि-आसमें जाएँवि ॥६
पासेँ सव्वभूसण-मुणिणाहहों । णिम्मल-केवल-णाण-सणाहहों ॥७॥
जाय तुरिउ तव-भूसिय-विग्गहु । मुक्क-सव्व-पर-वत्थु-परिग्गहु ॥८॥

[१७] यह सुनकर स्नेहका परित्याग करनेवाली वैदेहीने कहा, "हे राम, आप व्यर्थ विषाद न करें, इसमें न तो आपका दोष है, और न जनसमूहका, सैकड़ों जन्मोंसे धर्मका नाश करनेवाले खोटे कर्मोंका यह सब दोष है। जो पुराना कर्म जीव के साथ लगा आया है उसे कौन नष्ट कर सकता है"। हे राम, मैंने आपके प्रसादसे नाना देशोंमें बँटी हुई धरतीका उपभोग कर लिया है। बहुत बार मेरा पानसे सम्मान हुआ है। मैंने इस लोकका समस्त सुख देख लिया है। बार-बार मैंने तरह-तरहके भोग भोग लिये हैं। आपके साथ पुष्पक विमानमें बैठी हूँ। बहुत बार भुवनान्तरोंमें घूमी हूँ। अपने आपको बहुविध अलंकारोंसे सुशोभित किया है। हे आदरणीय राम, अबकी बार ऐसा करूँ, जिससे दुबारा नारी न बनूँ। मैं विषय सुखोंसे अब ऊब चुकी हूँ। अब मैं जन्म जरा और मरणका विनाश करूँगी। संसारसे विरक्त होकर, अब अटल तपश्चरण अंगीकार करूँगी।१-१०॥

[१८] इस प्रकार कहकर तब सीतादेवी ने अपने सिरके केश दायें हाथसे उखाड़कर त्रिलोकको आनन्द देनेवाले श्री राघवचन्द्रके सम्मुख डाल दिये। उन्हें देखकर राम मूर्छित होकर धरतीपर गिर पड़े, मानो हवासे कोई महावृक्ष ही उखड़ गया हो। वह अचेतन धरतीपर बैठ गये। वह किसी तरह होशमें आयें; इसके पहले ही शीलकी नौकासे युक्त सीतादेवीने जिनचरणोंके सेवक देवताओं और मनुष्योंके देखते-देखते, ऋषिके आश्रममें जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। उन्होंने केवलज्ञानसे युक्त सर्वभूषण मुनिके पास दीक्षा ली। तत्काल उन्होंने सब चीजोंका परिग्रह छोड़ दिया, अब उनका शरीर तपसे विभूषित था।

घत्ता

एत्थन्तरेँ वलु उम्मुच्छियउ जो रहु-कुल-आयास-रवि ।
तं आसणु जाव णिहालइ जणय-तणय तहिँ ताव ण वि ॥१८॥

[१९]

पुणु सव्वाउ दिसाउ णियन्तउ । उट्ठिउ 'केत्तहेँ सीय' भणन्तउ ॥१॥
केण वि स-विणएण तो सीसइ । 'पवरुज्जाणु एउ जं दीसइ ॥२॥
इह णिय-सुरेँ हिँ सुसीलालङ्किय । मुणि-पुङ्गवहोँ पासु दिक्खङ्किय' ॥३॥
तं णिसुणेँवि रहु-णन्दणु कुद्धउ । जुअ-खएँ णाइँ कियन्तु विरुद्धउ ॥४॥
रत्त-णेत्तु भउहा-भङ्गुर-मुहु । गउ तहोँ उज्जाणहोँ सवडंमुहु ॥५॥
गएँ आरूढउ मच्छर-भरियउ । वहु-विज्जाहरेहिँ परियरियउ ॥६॥
उब्भिय-ससि-धवलायवयारणु । दाहिण-करेँ कय-सीर-प्पहरणु ॥७॥
'जं किउ चिरु मायासुग्गीवहोँ । जं लक्खणेँण समरेँ दहगीवहोँ ॥८॥
तं करेमि वड्ढिय-अवलेवहँ । वासव-पमुह-असेसहँ देवहँ' ॥९॥
सहुँ णिय-मित्तेहिँ एव चवन्तउ । तं महिन्द-णन्दणवणु पत्तउ ॥१०॥
पेक्खेँवि णाणुप्पण्णु मुणिन्दहोँ । वियलिउ मच्छरु सयलु णरिन्दहोँ ॥११

घत्ता

ओयरेँवि महा-गय-खन्धहोँ पयहिण देवि स-णरवरेँण ।
कर मउलि करेँवि मुणि वन्दिउ णय-सिरेण सिरि-हलहरेँण ॥१२॥

[२०]

जिह तेँ तिह वन्दिउ साणन्देँ हिँ । लक्खण-पमुह-असेस-णरिन्देँ हिँ ॥१॥
दिट्ठ सीय तहिँ राहव-चन्देँ । णं तिहुअण-सिरि परम-जिणिन्देँ ॥२॥
ससि-धवलम्बर-उवलालङ्किय । महि-णिविट्ठ सुह सुह दिक्खङ्किय ॥३॥

इसके अनन्तर, रघुकुल रूपी आकाशके सूर्य राम मूर्छासे उठे। उन्होंने जाकर आसन देखा, परन्तु सीतादेवी वहाँ नहीं थीं ॥१-९॥

[१९] वे सब ओर देखते हुए उठे, वे कह रहे थे, "सीता कहाँ हैं, सीता कहाँ हैं"। तब किसी एकने विनयपूर्वक उन्हें बताया—"यह जो विशाल उद्यान दिखाई देता है, वहाँ शीलसे शोभित सीतादेवीने देवताओंके देखते-देखते एक मुनिश्रेष्ठके पास दीक्षा ग्रहण कर ली है।" यह सुनकर, राम सहसा क्रुद्ध हो उठे। मानो युगका क्षय होनेपर कृतान्त ही विरुद्ध हो उठा हो। उनकी आँखें लाल थीं, मुख भौंहोंसे भयंकर था। वह उद्यानके सम्मुख गये। ईर्ष्यासे भरकर वह हाथीपर बैठ गये। वह बहुत-से विद्याधरोंसे घिरे हुए थे। ऊपर चन्द्रके समान धवल आतपत्र था। दायें हाथमें उन्होंने 'सीर' अस्त्र ले रखा था। वे अपने अनुचरों-से कह रहे थे "जो मैंने माया सुग्रीवके साथ किया, और जो लक्ष्मणने युद्धमें रावणके साथ किया, वही मैं इन्द्र प्रमुख इन घमंडी देवताओंका करूँगा"। वे उस महेन्द्रके नन्दन वनमें पहुँचे। वहाँ केवलज्ञानसे युक्त महामुनिको देखकर उनकी सारी ईर्ष्या काफूर हो गयी। वह महागजसे उतर पड़े। श्रेष्ठ नरोंके साथ, दोनों हाथ जोड़कर श्रीरामने प्रदक्षिणा दी और तब नतसिर होकर उन्हें प्रणाम किया ॥१-१२॥

[२०] रामकी ही भाँति लक्ष्मणप्रमुख अनेक राजाओंने आनन्द और उल्लाससे महामुनिकी वन्दना की। फिर रामने सीतादेवीके दर्शन किये, मानो महामुनीन्द्रने त्रिभुवनकी लक्ष्मीको देखा हो। वह चन्द्रमाके समान स्वच्छ वस्त्रोंसे शोभित थीं। धरतीपर बैठी हुई थीं, अभी-अभी उन्होंने दीक्षा ग्रहण की

पुणु णिय-जस-भुवण-त्तय-धवलें । सिर-सीहरोवरि-किय-कर-कमलें ॥४॥
पुच्छिउ थक्कें 'अणङ्ग-वियारा । परम-धम्मु वज्जरहि भडारा' ॥५॥
तेण वि कहिउ सव्वु सङ्खेवें । भरहेसरहों जेव पुरएवें ॥६॥
तव-चरित्त-वय-दंसण-णाणइँ । पञ्च वि गइउ जीव-गुणथाणइँ ॥७॥
सम-दम-धम्माहम्म-पुराणइँ । जग-जीवुच्छेआउ-पमाणइँ ॥८॥
समय-पञ्च-रयणायर-पुव्वइँ । वन्ध-मोक्ख-लेसउ वर-दव्वइँ ॥९॥

घत्ता

आयइँ अवरइँ वि असेसइँ कहियइँ मुणि-गण-सारएँण ।
परमागमें जिह उद्दिट्ठइँ आसि सयम्भु-भडारएँण ॥१०॥

इय पउमचरिय-सेसे । सयम्भुएवस्स कह वि उव्वरिए ।
तिहुवण-सयम्भु-रइए । समाणियं सीय-दीव-पव्वमिणं ॥१॥
वन्दइ-आसिय-तिहुअण-सयम्भु-कइ-कहिय-पोमचरियस्स ।
सेसे भुवण-पगासे । तेआसीमो इमो सग्गो ॥२॥

कइरायस्स विजय-सेसियस्स । वित्थारिओ जसो भुवणे ।
तिहुअण-सयम्भुणा । पोमचरियसेसेण णिस्सेसो ॥३॥

थी। अपने यशसे दुनियाको धवलित करनेवाले रामने अपने करकमल सिरसे लगा लिये, और विनयपूर्वक पूछा, "हे आदरणीय, धर्मका स्वरूप समझाइए"। तब उन्होंने भी संक्षेपमें वही सब कहा, जो आदि जिनभगवान्‌ने भरतसे कहा था। तप, चरित, व्रत दर्शन, ज्ञान, पाँच गतियाँ, जीव गुणस्थान, क्षमा, दयादि धर्म, अधर्म, पुराण, जग, जीव, उच्छेद आयुप्रमाण, समय पल्य, रत्नाकर पूर्व, और दिव्य बन्ध मोक्ष और लेश्याएँ, इन सबका उन्होंने वर्णन किया। ये, और दूसरी समस्त बातें मुनियोंमें सर्वश्रेष्ठ उन सर्वभूषण मुनिने उसी प्रकार बतायीं जिस प्रकार ऋषभ भगवान्‌ने परमागममें बतायी हैं ॥१-१०॥

महाकवि स्वयंभूसे किसी प्रकार बचे हुए, पद्मचरितके शेषभागमें त्रिभुवन स्वयंभू द्वारा रचित, सीतादेवीकी प्रव्रज्या नामक आदरणीय पर्व समाप्त हुआ ॥१॥

'वन्दइ' के आश्रित त्रिभुवन स्वयंभू कवि द्वारा कथित पद्मचरितको भुवन प्रसिद्ध शेषभागमें यह तेरासीवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२॥

विजय शेष, कविराज स्वयंभूका यश, त्रिभुवन स्वयंभूने पद्मचरितका शेषभाग लिखकर संसारमें प्रसारित किया ॥३॥

●

[८४. चउरासीमो सन्धि]

एत्थन्तरें सयलविहूसणु पणवेंवि वुत्तु विहीसणेंण ।
'कहें मुणिवर सीय महासइ किं कओं हिय रावणेंण ॥

[१]

अण्णु वि जिय-रयणियराहवेण । अण्णहिँ जम्मन्तरें राहवेण ॥१॥
कहें गुरु किउ सुकिउ काइँ एण । एवड्डु पहुत्तणु पत्तु जेण ॥२॥
अण्णु वि धारायर-वंस-सारु । परमागम-जलणिहि-विगय-पारु ॥३॥
दसकन्धरु तरणि व दोस-वत्तु । किह मूढउ पेक्खेंवि पर-कलत्तु ॥४॥
जो ण वि आयामिउ सुरवरेहिँ । विसहर-विज्जाहर-णरवरेहिँ ॥५॥
सो दहमुहु कमल-दलक्खणेण । किह रणें विणिवाइउ लक्खणेण ॥६॥
मेल्लेप्पिणु णिय-मायरु महन्तु । हउँ किह हरि-बलहँ सणेहवन्तु ॥७॥
किह भामण्डलु सुग्गीउ एहु । रामोवरि वड्ढिय-गरुअ-णेहु ॥८॥

घत्ता

अण्णहिँ भवें जणयहों दुहिअएँ काइँ कियइँ गुरु-दुक्कियइँ ।
जें जम्महों लग्गें वि दुस्सहइँ पत्त महन्त-दुक्ख-सयइँ' ॥९॥

[२]

तं णिसुणेप्पिणु हय-मयरद्धउ । कहइ सयलभूसणु धम्मद्धउ ॥१॥
'इह जम्बूदीवहों अब्भन्तरें । भरह-खेत्तें दाहिण-कच्छन्तरें ॥२॥
खेमउरिहें णयदत्तु वणीसरु । धाव-वडाउ णाइँ कोडीसरु ॥३॥
तहों सुणन्द पिय पीण-पओहर । णं धणयहों धणएवि मणोहर ॥४॥
तहों धणदत्त पुत्तु पडिकारउ । पुणु वसुदत्तु बीउ दिहि-गारउ ॥५॥
तहों जण्णवलि-णाउ सुहि दियवरु । सायरदत्तु अवरु पुरें वणिवरु ॥६॥

चौरासीवीं संधि

इसके अनन्तर, मुनि सकलभूषणको प्रणाम कर विभीषण-ने पूछा, "हे मुनिवर, बताइए, रावणने महासती सीता देवीका अपहरण क्यों किया ?"

[१] और यह भी बताइए, निशाचर-युद्धके विजेता राघव ने उस जन्ममें क्या पुण्य किया था, जिससे उन्हें इस जन्ममें इतनी अधिक प्रभुता मिली। यह भी बताइए कि निशाचर वंशमें श्रेष्ठ परमशास्त्र-रूपी समुद्रके वेत्ता रावण, जो कि सूर्यके समान स्वयं निर्दोष है, दूसरेको स्त्रीको देखकर क्यों मुग्ध हो गया। बड़े-बड़े देवता नागराज और विद्याधर जैसी बड़ी-बड़ी शक्तियाँ, जिस रावणको नहीं जीत सकीं, उसे कमल नयन लक्ष्मणने कैसे परास्त कर दिया? मैं स्वयं अपने भाई रावणकी अपेक्षा राम और लक्ष्मणसे इतना प्रेम क्यों करता हूँ? दूसरे जन्ममें सीता देवीने ऐसा क्या भारी पाप किया था जिसके कारण उसे इस जन्ममें सैकड़ों दुःख झेलने पड़े ॥ १-९ ॥

[२] यह सुनकर कामका नाश करनेवाले धर्मध्वज सकलभूषण महामुनिने कहा, "जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रके भीतर, दक्षिण दिशामें क्षेमपुरी नगरी है। उसमें नयदत्त नामका श्रेष्ठ बनिया था। त्यागकी पताकामें वह कोटीश्वर था, उसकी पीन पयोधर सुनन्दा नामकी पत्नी थी, मानो कुबेरकी सुन्दर पत्नी धनदेवी हो। उसका पहला बेटा धनदत्त था, दूसरा भाग्य-शाली पुत्र वसुदत्त था। उसी नगरमें यज्ञबलि नामका पण्डित द्विजवर था। सागरदत्त नामका एक और बनिया था। उसकी

रयणप्पह-पिय-गेहिणि-वन्तउ । तहों गुणवइ सुअ सुउ गुणवन्तउ ॥७॥
बिण्णि वि णव-जोव्वण-पायडियइँ । सुरवर इव छुड्डु सग्गहों पडियइँ ॥८॥
एक्क-दिवसें परमुत्तम-सत्तें । सायरदत्तु वुत्तु णयदत्तें ॥९॥

घत्ता

"तरुणीयण-मण-धण-थेणहों अहिणव-जोव्वण-धाराहों ।
तुह तणिय तणय धणदत्तहों दिज्जउ सुयहों महाराहों" ॥१०॥

[३]

तण्णिसुणेंवि वड्डिय-अणुराएं । दिण्ण वाय तहों गुणवइ-ताएं ॥१॥
सो पुरें तहिं जें अवरु णिरु वहु-धणु वणि-तणुरुहु कुमारि-तेण्हण-मणु ॥२॥
सिरि-कन्तु व सिरिकन्तु पसिद्धउ । वर-सिय-सम्पय-रिद्धि-पसिद्धउ ॥३॥
तासु जणणि सुय देवि समिच्छइ । थोव-धणहों चिर-वरहों न इच्छइ ॥४॥
एह वत्त णिसुणेंवि वसुदत्तें । पउम-सहोयर-अणयाणन्तें ॥५॥
सुहि-जण्णवलि-दिण्ण-उवएसें । परिहिय-णव-जलयासिय-वासें ॥६॥
फुरिय-दट्ठ-ओट्ठभड-वयणें । चलिय-गण्ड-भू-भङ्गुर-णयणें ॥७॥
णिरु-णीसद्द-चलण-संचारें । सिहि-सिह-णिह-असिवर-कर-धारें ॥८॥
मन्दिर-पासुआणें पमाइउ । गम्पिणु रयणि-समएँ सम्माइउ ॥९॥
आयामें वि आहउ असि-घाएं । णाइँ महीरुह असणि-णिहाएं ॥१०॥
तेण वि दुण्णिरिक्ख-तिक्खग्गें । ताडिउ णन्दा-णन्दणु खग्गें ॥११॥
बिण्णि वि वण-विणित्त रुहिरोल्लिय । णं फग्गुणें पलास पप्फुल्लिय ॥१२॥

प्रिय पत्नीका नाम रत्नप्रभा था। उसकी एक गुणवती लड़की और एक गुणवान् लड़का था। दोनों ही नवयौवनकी देहली पर पैर रख चुके थे, जो ऐसे लगते थे, मानो देवता ही स्वर्गसे आ टपके हों। एक दिन उदाराशयवाले नयदत्तने सागरदत्तसे पूछा—"नवयौवनाओंके मनरूपी धनको चुरानेवाले, अभिनव यौवनसे युक्त, मेरे बेटे धनदत्तको अपनी कन्या दो" ॥१–१०॥

[२] यह सुनकर गुणवतीके मनमें अनुराग उमड़ आया, उसने वचन दे दिया। उस नगरमें एक और बनियेका बेटा था, उसके पास बहुत धन था, और वह उस कन्यासे विवाह करना चाहता था। वह श्रीकान्त विष्णुके समान श्रीसे सम्पन्न था। उत्तम श्री सम्पदा और वैभवमें वह विख्यात था। गुणवतीकी माता उसे अपनी लड़की देना चाहती थी। वह पुराने वरको कन्या देनेके पक्षमें नहीं थी, क्योंकि उसके पास पैसा थोड़ा था।" इस बातका पता वसुदत्तको लग गया। पण्डित यज्ञबलिके उपदेशके प्रभावमें आकर अपने बड़े भाईको बिना बताये ही उसने नवमेघके समान काले वस्त्र पहन लिये। उसके दाँत, ओठ और जबड़े चमक रहे थे। कपोल हिल रहे थे, आँखें, भ्रूभंगसे भयानक लग रही थीं। वह निःशब्द चुपचाप जा रहा था। उसके हाथमें तलवारकी धार आगकी ज्वालाके समान चमचमा रही थी, वह पागल पासके उद्यानमें रातके समय गया। उसने अपनी तलवारसे श्रीकान्तको उसी प्रकार आहत किया, जिस प्रकार वज्रके आघातसे पहाड़ आहत हो जाता है। श्रीकान्तने भी दुर्दर्शनीय, तीखी धारवाली तलवारसे नन्दाके पुत्र वसुदत्तको आहत कर दिया। दोनों वणिक्-पुत्र खूनसे लथपथ होकर उद्यानसे निकलते हुए ऐसे लग रहे थे, मानो फागुनके महीनेमें टेसू फूल उठा हो। इतनेमें वे दोनों

घत्ता

तो ताव एव बहु-मच्छर जुज्झिय उज्झिय-मरण-भय ।
आपाण विहि मि सम-घाएँहिं विहुरें कु-मित्त व मुएँवि गय ॥११॥

[४]

पुणु उत्तुङ्ग-विसाल-पईहरें । जाय वे वि मिग विञ्झ-महीहरें ॥१॥
धणदत्तु वि गुणवइ अ-लहन्तउ । माइहें तणउ दुक्खु अ-सहन्तउ ॥२॥
मुएँवि णियय-घरु सुट्ठु रमाउलु । गउ पुरवरहों देस-भमणाउलु ॥३॥
बाल वि णिय-मणें तहों अणुरत्ती । सयलावर वर वरहँ विरत्ती ॥४॥
धणदत्तहों गमणें विच्छाइय । जणणें अण्ण णिओयहों लाइय ॥५॥
छाइय अइ-रउद्द-परिणामें । सिहि व पलिप्पइ साहुहुँ णामें ॥६॥
णियवि मुणिन्द-रूवु उवहासइ । कडुयक्खर-खर-वयणइं भासइ ॥७॥
अक्कोसइ णिन्दइ णिडमच्छइ । जइण-धम्मु सुइणे वि ण इच्छइ ॥८॥

घत्ता

बहु-कालें अट्ट-झाणेण पुण्णाउस अवसाणें मय ।
उप्पण्ण तेत्थु पुणु काणणें जहिं वसन्ति ते वे वि मय ॥९॥

[५]

मारुय-वाहण-हरिण-समाणा । विण्णि वि मिग पुण्णाउ पमाणा ॥१॥
तहिं वि ताहें कारणेंण विरुज्झेंवि । मरणु पत्त अवरोप्परु जुज्झेंवि ॥२॥
जाय महिस जम-महिस-भयङ्कर । पुणु वराह अण्णोण्ण-खयङ्कर ॥३॥
पुणु अञ्जण-गिरि-गरुअ महागय । कण्ण-पवण-उड्डाविय-छप्पय ॥४॥

मौतका डर छोड़कर और मत्सरसे भरकर एक दूसरेसे जा भिड़े। आपसके एक-से आघातसे एक दूसरेके प्राण खोटे अनुचरकी भाँति छोड़कर चले गये ॥ १–१३ ॥

[४] मर कर वे दोनों विशाल ऊँचे और लम्बे विंध्याचलमें हरिण बनकर उत्पन्न हुए। धनदत्त को एक तो गुणवती नहीं मिली, दूसरे वह भाईके मरनेका दुःख सहन नहीं कर सका, स्त्रीके दुःखसे व्याकुल होकर वह घर छोड़कर चल दिया; अपने नगरसे दूर वह देशान्तरोंमें भ्रमण करनेके लिए निकल पड़ा। कन्या गुणवती भी मन ही मन धनदत्तमें अनुरक्त थी। यह दूसरे बढ़ियासे बढ़िया वरमें अनुरक्त नहीं थी। धनदत्तके विदेश गमनसे वह इतनी व्याकुल हो उठी कि पिता जब किसी योग्य वरसे विवाहका प्रसंग लाता, तो वह अत्यन्त रौद्र भावसे भर उठती। सबका नाम सुनकर आगकी तरह भड़क उठती। किसी मुनिका रूप देखती तो उसका मजाक करने लगती और कड़ुवे लाखों वचन बोलने लगती। वह गुस्सेसे भर उठती, निन्दा करने लगती, झिड़कती और जैन-धर्म उसे स्वप्नमें भी अच्छा नहीं लगता। बहुत समय तक इस प्रकार वह आर्तध्यानमें लगी रही, फिर आयुका अवसान होने पर वह मर गयी। अगले जन्ममें वह उसी जंगलमें उत्पन्न हुई जहाँ वे दोनों मृग थे ॥ १–९ ॥

[५] मारुतवाहन हरिणोंके समान, दोनों मृग पूर्णायुके थे। वहाँ भी वे (उसी गुणवतीके कारण) आपसमें विरुद्ध हो गये, और एक दूसरेसे लड़कर मरणको प्राप्त हुए। और यम-महिषके समान भयंकर महिष हुए और फिर एक दूसरेके लिए विनाशकारी वराह हुए। फिर अंजनगिरिके समान भारी महागज बने, जो अपने कानोंसे भौंरोंको उड़ा रहे थे। फिर वे शिव

पुणु ईसाण-विसोह-धुरन्धर ।　उण्णय-कउभ धोर-थिर-कन्धर ॥५॥
पुणु चित्तदंस घोर पुणु वाणर ।　पुणु विग पुणु कसणुज्जल मिगवर ॥६॥
पुणु णाणाविह अवर वि थलयर ।　पुणु कमेण णहयर पुणु जलयर ॥७॥
अइ-दूसह-दुक्खइँ विसहन्ता ।　एक्कमेक्क-सामरिस-वहन्ता ॥८॥

घत्ता

भवेँ एव भमन्ति भयङ्करेँ　पुब्व-वइर-सम्बन्ध-पर ।
तें कज्जें अर्णे रिण-वइरइँ　जो ण कुणइ स(?) चियइड्डु पर ॥९॥

[६]

तो धणदत्तु वि दुक्खाहिउ ।　मल-धूसरु तिस-भुक्खहिं वाहिउ ॥१॥
देसें देसु असेसु भमन्तउ ।　दूरागमण-परीसम-सन्तउ ॥२॥
पत्तु जिणालउ रयणिमुहन्तरें ।　लग्गु चवेवएँ णिविसब्भन्तरें ॥३॥
"अहोँ अहोँ सुकिय-किय पव्वइयहोँ ।　मइ तिस-छुह-महवाहिँ लइयहोँ ॥४॥
देहुँ कहि मि अइ अत्थि जलोसहु ।　जं कारणु महन्त-परिओसहोँ" ॥५॥
विहसेँवि चवइ पहाण-मुणीसरु ।　"सलिलु पियवएँ को किर अवसरु ॥६
मूढ हियत्तणेण तउ सीसइ ।　जंहिँ अन्धारएँ किं पि ण दीसइ ॥७॥
सुरत्थवणहोँ लग्गेँ वि दिढ-मणु ।　जहिँ भविय-यणु ण भुअइ भोयणु ॥८
जहिँ पर-गोयरु अत्थि पहूअइँ ।　पेय-महग्गह-डाइणि-भूअइँ ॥९॥

घत्ता

अइ-पीडियइ मि वर-वाहिएँ　ण कइअइ ओसहु वि जहिँ ।
इय सव्वरि-समएँ दुसञ्चरेँ　किह परिपिज्जइ सलिलु तहिँ ॥१०॥

के नन्दीकी तरह बैल बने उनकी काँधोर ऊँची थी, और कन्धे मजबूत और मोटे थे। फिर वे साँप बने, और तब बन्दर, फिर वे मेंढक बने, और फिर काले चिकने हरिण, फिर और दूसरे प्रकारके थलचर बने। फिर क्रमसे दूसरे-दूसरे नभचर और थलचर जीव बने। इस प्रकार वे अत्यन्त दुःसह दुखोंको सहन करते रहे। फिर भी उनका एक दूसरेके प्रति ईर्ष्याका भाव बना रहा। इस प्रकार पुरबले वैरके सम्बन्धसे वे भयंकर संसारमें भटकते रहे, इसलिए संसारमें सबसे बड़ा पण्डित वह है जो किसीके प्रति भी वैर-भावका क्षण धारण नहीं करता ॥ १-९ ॥

[६] इधर धनदत्त भी अत्यन्त व्याकुल होकर मलसे धूसरित और भूख-प्याससे पीड़ित होकर देश-देशमें भटकता फिरा। काफी दूर-दूर तक भटकनेके श्रमसे वह थक चुका था। सन्ध्या समय उसे एक जिनालय मिला। उसे देखते ही, वह एक ही पलमें बड़बड़ाने लगा, "अरे पुण्य प्रिय प्रव्रजित मुनियो, मेरी इन भूख, प्यास आदि व्याधियोंको ले लीजिए, यदि तुम्हारे पास जलरूपी औषधि हो तो मुझे दे दो, ताकि मैं अपनी प्यास बुझा सकूँ।" यह सुनकर उनमें-से मुख्य मुनि हँसकर बोले, "अरे पानी पीनेका यह कौन-सा अवसर है, अरे मूर्ख, मैं तुम्हें हृदयसे शिक्षा देता हूँ, जहाँ इतना अन्धकार है कि तुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता। सूर्यास्त होते ही, दृढ़ मनके भव्य जन भोजन भी नहीं करते। रातमें प्रेत, महाग्रह, डाइन, और भूत ही प्रचुरतासे दिखाई देते हैं। बड़ीसे बड़ी व्याधिसे भी पीड़ित होने पर रातमें जब दवा तक नहीं ली जाती, वहाँ इस घोर रातमें पानी कैसे पिया जा सकता है ॥ १-१० ॥

[७]

जहिँ णिएँवि सया रवि अत्थमिउ । जो थाकइ जीउ अणत्थमिउ ॥१॥
सो पावइ मणहर देव-गइ । सुहु भुञ्जइ होएँवि अमर-वइ ॥२॥
अणुभवेंवि उत्तमु कुलु लहइ । पुणु अट्ठ वि कम्मइँ णिड्डहइ ॥३॥
णिसि-भोजु ण छण्डिउ जेण पुणु । तहोँ भवेँ भवेँ दुक्खु अणन्त-गुणु ॥४॥
अकुल-मंसु तेँ भक्खियउ । तेँ पिय महरा महु चक्खियउ ॥५॥
सण-हुल्ला णिन्द-समिद्धाइँ । तेँ पञ्चुम्बरइँ मि खद्धाइँ ॥६॥
तेँ वयणु असच्चउ जम्पियउ । तेँ अण्णहोँ तणउ दव्वु हियउ ॥७॥
तेँ जुट्ठु णिरन्तर हिंस किय । पर णारि वि तेँ णिरुत्तु लइय ॥८॥

घत्ता

अहवइ किं बहुएं चविएँण एउ जें मूलु सव्वु वयहँ ।
जें होन्तें होइ समीयउ । मोक्खु वि भव्व-जीव-सयहँ" ॥९॥

[८]

णिसि-वयणें विमुक्क-मिच्छत्तें । लइयइँ अणुवयाइँ धणदत्तें ॥१॥
गउ तेत्थहोँ वि णउण तमालें । ममें वि महीयलें बहुवें कालें ॥२॥
समउ समाहिएँ मरणु पवण्णउ । पुणु सोहम्में देउ उप्पण्णउ ॥३॥
तहिँ बे सायराइँ णिवसेविणु । किं वि सेसेँ थिएँ पुण्णें चवेप्पिणु ॥४॥
आउ महा-पुर बहु-धण-जुत्तउ । छत्तच्छाय-णरेसर-मत्तउ ॥५॥
पहु पियमम सिरिंदत्ताकङ्खिय । पर-पुरवर-णर-णियरासङ्खिय ॥६॥
धारिणि-भेर-वणीतहेँ तणुरुहु । णामें पउमरुइ पङ्कय-मुहु ॥७॥
एक्कहिँ दिणेँ स-तुरङ्गु पयट्टउ । गोट्ठु पलोएँवि पडिपल्हट्टउ ॥८।

[७] जो सदैव सूर्यको अस्त देखकर इस व्रतका आचरण करता है, वह सुन्दर देवगतिको प्राप्त करता है, और इन्द्र होकर सुखका भोग करता है। फिर वहाँसे आकर उत्तम सुख प्राप्त करता है। अन्तमें आठों कर्मका नाश करता है। जो निशा-भोजनका परित्याग नहीं करता, उसे जन्म-जन्मान्तरमें अनन्त दुःख देखने पड़ते हैं। जो रातमें भोजन कर लेता है, उसने गीला मांस (कच्चा) खा लिया, मदिरा पी ली, और शहद चख लिया, सनके फूल, (सणहुल्ल) निम्ब समृद्धि (?) और पाँच उदुम्बर फल खा लिये। उसने असत्य कथन किया, और दूसरेके धनका अपहरण किया, वह निरन्तर हिंसाका दोषी है, और यहाँ तक कि दूसरेकी स्त्रीका भी उसने अपहरण किया। अथवा बहुत कहनेसे क्या, व्रतोंकी सच्ची जड़ यही है। जिसके समीप होने पर सैकड़ों भव्य जीवोंके लिए मोक्ष भी समीप हो जाता है॥ १-९॥

[८] महामुनिके उपदेशसे धनदत्तने मिथ्यात्व छोड़कर अणुव्रत ग्रहण कर लिये। अन्धकार दूर होने पर उसने वहाँसे कूच किया। बहुत समय तक धरती पर भ्रमण करनेके अनन्तर समाधिपूर्वक मर कर वह सौधर्म स्वर्गमें देव रूपमें उत्पन्न हुआ। वहाँ कई सागर प्रमाण रहकर जब कुछ ही पुण्य शेष रहा तो धारणी और मेरु नामक वणिकराजके यहाँ पुत्ररूपमें जन्मा। उसका नाम पंकजरुचि (पद्मरुचि) था। उसका मुख भो कमलके समान था। वह उस महापुर नगरमें जन्मा जो धन-धान्यसे प्रचुर था, जहाँ छत्रछाय नामक राजाका राज्य था। श्रीदत्ता उस राजाकी प्रियतमा पत्नी थी। शत्रुओंके नगर और नागरिक उससे सदैव आशंकित रहते थे। एक दिन वह घोड़े पर घूमने निकला, और गोठ देखकर वापस लौट

घत्ता

तावग्गएँ महिहेँ णिसण्णउ सुहिणगिरिन्दु व णिरु धवलु ।
पुण्णाउसु पाणछन्तउ दीसइ एक्कु जुण्ण-धवलु ॥९॥

[९]

तं गोइन्दु णिएँवि चडुलङ्गहोँ । मेरु-तणउ ओयरिउ तुरङ्गहोँ ॥१॥
पासु पढुक्केवि तहोँ कण्णन्तरेँ । दिण्ण पञ्च णमुकार खणन्तरेँ ॥२॥
तहोँ फलेण जिण-सासण-भत्तहोँ । गब्भब्भन्तरेँ तहोँ सिरिदत्तहोँ ॥३॥
जाउ पुत्तु परिवड्ढिय-छायहोँ । वसहद्धउ तहोँ छत्तच्छायहोँ ॥४॥
एक्कहिँ दिणेँ णन्दणवणु जन्तउ । णिय थिरु मरण-भूमि सम्पत्तउ ॥५॥
थिउ णिच्चलु जोयन्तु णिरन्तरु । सुमरिउ सयलु वि णियय-भवन्तरु ॥६॥
दिसउ णिएँवि गउ परम-विसायहोँ । पुणु उत्तरिउ अणोवम-णायहोँ ॥७॥
"एत्थु आसि अणडुहु हउँ होन्तउ । एत्थु पएसेँ आसि णिवसन्तउ ॥८॥
इहं चरन्तु इह सलिलु पियन्तउ । इह णिवडिउ थिरु पाणछन्तउ ॥९॥

घत्ता

तहिँ कालेँ कण्णेँ महु केरएँ जेण दिण्णु महु जीव-हिउ ।
पेक्खेमि केणोवाएण (?)" एम सुहरु चिन्तन्तु थिउ ॥१०॥

[१०]

पुणु सहसा उत्तुङ्गु विसालउ । तेत्थु कराविउ परम-जिणालउ ॥१॥
णियय-भवन्तरु पढेँ वि लिहावेँवि । बार-पएसेँ तासु बन्धावेँवि ॥२॥
थवेँवि अणेय सुहड परिरक्खणु । गउ राउलु कुमारु बहु-लक्खणु ॥३॥
एक्कहिँ दिणेँ पउमरुइ महाइउ । वन्दणहत्तिएँ जिणहरु आइउ ॥४॥
दिट्ठु ताव पडु लिहिय-कहन्तरु । विम्भिउ जोवइ जाव णिरन्तरु ॥५॥
तावारक्खिएहिँ तुरन्तहोँ । कहिउ गम्पि तहोँ राय-कुमारहोँ ॥६॥

पड़ा। उसने देखा कि आगे धरती पर एक बूढ़ा बैल पड़ा हुआ है, जो हिमगिरिके समान धवल है, जिसकी आयु समाप्त प्राय है, और जिसके प्राण छटपटा रहे हैं ॥ १-८ ॥

[९] उस मरणासन्न बूढ़े बैलको देखकर मेरुका बेटा पंकजरुचि घोड़ेसे उतर पड़ा। उसके पास जाकर एक पलमें ही उसके कानमें पंचणमोकार मन्त्र सुना दिया। उस मन्त्रके प्रभावसे उस बूढ़े बैलका जीव जिनधर्मकी भक्त श्रीवृत्ताके गर्भमें जाकर पुत्र बन गया, और कान्तिमान राजा छत्रछायके वृषभध्वज नामका पुत्र हुआ। एक दिन वह राजपुत्र नन्दनवनके लिए जा रहा था। अचानक वह अपनी मरणभूमि पर पहुँच गया। उसे देखकर वह एकदम अचल हो उठा। उसे अपने सब जन्म-जन्मान्तर याद आ गये। उस दशाको देखकर उसके मनमें गहरा विषाद हुआ। वह अपने अद्वितीय गजसे उतर पड़ा। वह पहचान रहा था, "अरे यहाँ मैं बैलके रूपमें पड़ा था। मैं यहाँ रहता था। यहाँ चरता था, यहाँ पानी पीता था, और यहाँपर अपने छटपटाते प्राण लेकर पड़ा हुआ था। उस अवसरपर जिसने जीवकल्याणकारी, पाँच नमस्कार मंत्रका जाप मेरे कान में दिया, उसे मैं किस प्रकार देख सकता हूँ, यह सोचकर वह बहुत देरतक बैठा रहा ॥ १-१० ॥

[१०] फिर उसने उस जगहपर एक विशाल जिनालयका निर्माण कराया। एक पटपर अपने जन्मान्तर लिखवाये, और द्वारपर उन्हें टँगवा दिया। अनेक योद्धाओंको वहाँ रक्षक नियुक्त करके अनेक लक्षणोंसे युक्त वह राजकुमार राजकुल लौट गया। एक दिन आदरणीय पद्मरुचि वन्दनाभक्तिके लिए उस महान् जिनालय में आया। जब उसने उसपर लिखे हुए कथान्तरोंको देखा तो वह अचरजमें पड़ गया। इसी बीच द्वारके

सो वि इट्ठ-सङ्गम-अणुराइउ । झसि परम-जिण-भवणु पराइउ ॥७॥
दिट्ठु तेण पउँ विसु णिबन्तउ । अचल-दिट्ठि वर-विम्हय-वन्तउ ॥८॥

घत्ता

पुणु वसहद्धएण पपुच्छिउ णिय-णिय-वंसुद्धारणेंण ।
"एहु पडु णिएवि तउ हूअउ कोऊहलु किं कारणेंण" ॥९॥

[११]

तं णिसुणेंवि अक्खइ वणि-तणुरुहु । "एत्थु पएसेँ एक्कु मुउ अणडुहु ॥१॥
तहों णवकार पञ्च मइँ दिण्णा । जे पणतीसक्खर-सम्पुण्णा" ॥२॥
तं एँउ सयलु वि णिएँवि णिराणउ । गउ विम्हयहों सरेवि कहाणउ ॥३॥
तो सिरिदत्ता-सुएँण सुवीरें । रहसाऊरिय-सयल-सरीरें ॥४॥
"सो गोवइ हउँ" एव चवेप्पिणु । कर-मउलञ्जलि तुरिउ करेप्पिणु ॥५॥
हार-कडय-कडिसुत्तेंहिँ पुज्जिउ । गुरु व सु-सीसें कुमइ-विवज्जिउ ॥६॥
"ण वि तं करइ पियरु ण वि मायरि । ण वि कलत्तु ण वि पुत्तु ण भायरि ॥७
ण वि सस दुहिय ण मित्त ण किङ्कर । सहसणयण-पमुह वि ण वि सुरवर ॥८॥
जं पइँ महु सुहि-इट्ठु समारिउ । णरय-तिरिय गइ-गमणु-णिवारिउ ॥९

घत्ता

जं दिण्णु समाहि-रसायणु तेत्थु विहुरेँ पइँ णिरुवमउ ।
तहों फलेंण णरिन्दहों णन्दणु पुणु एत्थु जेँ पुरेँ हूउ हउँ ॥१०॥

[१२]

जं उवयरिउ मइँ मणुअत्तणु । अण्णु वि एहु विहउ वड्डत्तणु ॥१॥
जं भुञ्जमि-णरवर-सङ्घाएं । तं सयलु वि एँउ तुज्झु पसाएं ॥२॥

रक्षकोंने जाकर राजकुमारको सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजकुमार भी इष्ट मिलनकी रागवती उत्कंठासे तत्काल जिनमन्दिर पहुँचा। उसने देखा कि पद्मरुचिकी पटको देखकर पलकें नहीं झप रही हैं, और वह गहरे आश्चर्यमें पड़ा हुआ है। तब अपनी श्री और वंशका उद्धार करनेवाले राजकुमार वृषभध्वजने पूछा, "इस पटको देखकर आपके लिए इतना कोलाहल किसलिए हुआ" ॥१–२॥

[११] यह सुनकर वणिकपुत्रने कहा, "इस प्रदेशमें एक बैल मरा था। उसे मैंने पंच नमोकार मन्त्र दिया था जो पैंतीस अक्षरोंसे पूरा होता है। यह सब पुराना स्थान देखकर और उस कहानीको याद कर मैं आश्चर्यमें पड़ गया। यह सुनकर, श्रीदत्ताका पुत्र सुवीर वृषभध्वजका शरीर हर्षसे पुलकित हो उठा। 'मैं वही बैल हूँ' यह कहकर उसने दोनों हाथ जोड़कर शीघ्र उसे प्रणाम किया। हार, कटक और कटिसूत्रसे उसका ऐसा सत्कार किया, जैसे कोई शिष्य दुर्बुद्धिसे रहित अपने गुरुका करता है। उसने निवेदन किया, "नरक और तिर्यंच गतिको रोकनेवाली पंडितोंके अभीष्ट जो सन्मति मुझे दी, वैसे न तो पिता दे सकता है, और न माता, न स्त्री, न पुत्र और न भाई, न बहन, न बच्ची, न मित्र और न अनुचर और न इन्द्रप्रमुख बड़े-बड़े देवता ही, वह दे सकते हैं। उस घोर दुरवस्था में जो आपने मुझे अनुपम समाधिरसायन दिया था, उसीका यह फल है कि जो मैं इन नगरमें राजाका पुत्र हो सका ॥१–१०॥

[१२] मुझे जो यह मनुष्य शरीर मिला, और जो यह वैभव और बड़प्पन मिला, जो यह नरसमूह मेरी स्तुति करता है, वह सब सचमुच आपके प्रसादसे। इसलिए आप यह सब

कइ णीसेसु रज्जु सिंहासणु। हउँ तउ दासु पडिच्छिय-पेसणु" ॥३॥
एवमाइ संभासेँ वि वणि-वरु। पुणु णिउ णिय-राउलु जण-मणहरु ॥४॥
बिण्णि वि जण णिविट्ठ एक्कासणेँ। चन्दाइच्च णाइँ गयणङ्गणेँ ॥५॥
इन्द-पडिन्द व सुन्दर-देहा। अवरोप्परु परिवड्ढिय-णेहा ॥६॥
बिण्णि वि जण सम्मत्त-णिउत्ता। सावय-वय-भर-धुर-संजुत्ता ॥७॥
बिहि वि करावियाइँ जिण-भवणइँ। उण्णय-सिहरुल्लङ्घिय-गयणइँ ॥८॥

घत्ता

जिह सायर-गिरि-मणि-रयणेँहिँ जिह कुलवहु गुणेँहिँ वरेँहिँ।
जिह सुकइ सुहासिय-वयणेँहिँ तिह महि भूसिय जिणहरेँहिँ ॥९॥

[१२]

बहु-कालेँ सल्लेहणेँ मरेवि। ईसाण-सग्गेँ सुर जाय बे वि ॥१॥
रयणायराइँ तहिँ दुइ गमेवि। पउमप्पहु सुरवरु पुणु चवेवि ॥२॥
हुउ अवरविदेहेँ जयइरि-सिहरेँ। सु-मणोहरेँ चन्दावत्त-णयरेँ ॥३॥
णन्दीसरपहु-कणयप्पहाहेँ। सुउ णयणाणन्दणु णामु ताहेँ ॥४॥
तहिँ रज्जु अमर-लीलएँ करेवि। तव-चरणु चरेप्पिणु पुणु मरेवि ॥५॥
माहिन्द-सग्गेँ गिव्वाणु जाउ। सायरइँ सत्त णिवसेवि आउ ॥६॥
मेरुहेँ पुव्वेँ खेमाउरीहेँ। णिय-विहि-ओहामिय-सुरपुरीहेँ ॥७॥
पउमावइ-गब्भेँ गुणाहिउत्तु। णरवइहेँ विमलवाहणहोँ पुत्तु ॥८॥
सुहयन्द-रुन्दु सिरिचन्द-णामु। थिउ माणुस-वेसेँ णाइँ कामु ॥९॥
बहु-कालु करेवि मणोज्जु रज्जु। पुणु चिन्तिउ मणेँ परलोय-कज्जु ॥१०॥

राज्य और सिंहासन स्वीकार कर लें। मैं तो आपका केवल एक दास हूँ और आपके इच्छित आदेशका पालन करूँगा।" इस प्रकार संभाषण कर वह वणिग्वर उसे अपने सुन्दर राजकुल-में ले गया। वे दोनों एक आसनमें बैठे थे, मानो आकाशमें सूर्य और चन्द्र स्थित थे। उनके शरीर इन्द्र और प्रतीन्द्रके समान सुन्दर थे। एक दूसरेके प्रति उनका स्नेह बहुत बढ़ा-चढ़ा हुआ था। दोनों ही जन सम्यग्दर्शनसे युक्त थे, और श्रावक व्रतोंके भारको धारण किये हुए थे। दोनोंने जिनमन्दिरों-का निर्माण किया था। ऊँचे इतने कि ऊपरके ऊँचे शिखर आकाशको छू रहे थे। मणिरत्नोंसे जैसे समुद्रकी शोभा होती है, जैसे वर गुणोंसे कुलवधू शोभित होती है, जैसे सुकथा सुभाषित वचनोंसे शोभित होती है, वैसे ही उन्होंने जिन-मन्दिरोंसे धरतीकी शोभाको बढ़ा दिया ॥१-९॥

[१३] उसके बाद बहुत समयके अनन्तर सल्लेखना पूर्वक मरकर वे दोनों ईशान स्वर्गमें जाकर देव हो गये। वहाँ दो सागर समय तक रहकर पद्मरुचि वहाँसे च्युत होकर अपरविदेह-के विजयार्ध पर्वत पर सुन्दर चन्द्रावर्त नगरमें उत्पन्न हुआ। वहाँ वह नन्दीश्वर प्रभु और कनकप्रभका बेटा था। उसका नाम था—नयनानन्दन। वहाँ देवक्रीड़ाके समान राज्य कर फिर उसने तप किया। मरकर वह फिरसे महेन्द्र स्वर्गमें देव हुआ। उसमें उसने सात सागर समय तक निवास किया। तदनन्तर भाग्यवश स्वर्ग छोड़कर मेरु पर्वतसे पूर्व क्षेमपुरी नगरीमें, रानी पद्मावती और राजा विमलवाहनके गुणोंसे अधिष्ठित पुत्र हुआ। उसका मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर था। नाम श्रीचन्द्र था, लगता था जैसे मनुष्यके रूपमें काम हो। बहुत समय तक सुन्दरतासे राज्यका सम्पादन कर, अन्तिम समय उसे परलोक-

घत्ता

णिय-पुत्तहों पहु णिक्खेंवि दिहिकन्तहों सुन्दरमइहें ।
तव-चरणु लइउ सिरिचन्देंण पासें समाहिगुत्त-जइहें ॥११॥

[१४]

सो सिरिचन्द-साहु अ-परिग्गहु । घण-मलकञ्चुअ-भूसिय-विग्गहु ॥१॥
णिरु णिरुवम-रयण-त्तय-मण्डणु । पञ्चेन्दिय-दुद्दम-दणु-दण्डणु ॥२॥
पञ्च-महव्वय-भारुद्धारणु । मास-पक्ख-छट्ठट्ठम-पारणु ॥३॥
कन्दर-पुलिणुज्जाण-णिवासणु । राग-दोस-भय-मोह-विणासणु ॥४॥
एक्कु चित्तु सुह-भावण-भावणु । जिण-सासण-वच्छल्ल-पहावणु ॥५॥
बहु-कालें अवसाणु पवण्णउ । गम्पिणु बम्भलोएँ उप्पण्णउ ॥६॥
सुरवर-णाहु विमाणेँ विसालएँ । मणि-मुत्ताहल-विद्दुम-मालएँ ॥७॥

घत्ता

तहिँ वियसाहिव-सिव माणेंवि दस-सायरेंहिँ गएहिँ चुउ ।
उप्पण्णु एत्थु एँहु राहउ दसरह-रायहों पउम-सुउ ॥८॥

[१५]

चिर-तव-चरण-पहावें आयहों । विक्कम-रूव-विहूइ-सहायहों ॥१॥
इय-भुवण-त्तएँ को उवमिज्जइ । जासु सहस-णयणु वि णउ पुज्जइ ॥२॥
जो चिरु वसहमहद्धउ होन्तउ । जो ईसाणें सुरत्तणु पत्तउ ॥३॥
दुइ सायरइँ वसेप्पिणु आयउ । कालें सो तारावइ आयउ ॥४॥
सुउ सुररयहों खेयर-णेसरु । गिरि-किक्किन्ध-णयर-परमेसरु ॥५॥
एँहु सुग्गीवु अणत्तय-पायडु । वालि-कणिट्ठउ वाणर-धयवडु ॥६॥
सिरिकन्तु वि गुरु-दुक्ख-णिवासहिँ । परिभमन्तु बहु-जोणि-सहासहिँ ॥७॥

की चिन्ता हुई। अपने भाग्यशाली पुत्र सुन्दरपतिको राज्यपट्ट बाँधकर श्रीचन्द्रने समाधिगुप्त मुनिके पास तपश्चरण ले लिया ॥१-११॥

[१४] वह श्रीचन्द्र अब साधु था, परिग्रहसे शून्य। घने मैले बालोंसे उनका शरीर आभूषित था। वे तीन रत्नोंसे अत्यन्त मण्डित थे। उन्होंने पंचेन्द्रियोंके दुर्दम दानवको दण्डित कर दिया था। वे पाँच महाव्रतोंका भार उठानेवाले थे, और मास, पक्ष, छठं आठं पारणा करते थे। कन्दराओं, किनारों और उद्यानोंमें निवास करते थे। उन्होंने राग, द्वेष भय और मोहका विनाश कर दिया था। एकचित्त होकर, शुभभावनाओंका ध्यान करते थे। इस प्रकार उन्होंने जिनशासनकी ममताभरी प्रभावना की। बहुत समयके अनन्तर मरकर वह ब्रह्मलोक स्वर्गमें उत्पन्न हुआ। मणि मोतियों और विद्रुममालाओंसे सुन्दर विशाल विमानमें अब वह इन्द्र था। वहाँ उसने दस सागर तक इन्द्रका सुख भोगा, और फिर च्युत होकर यहाँपर वह राजा दशरथके प्रथम पुत्रके रूपमें रामके नामसे उत्पन्न हुआ ॥ १-८ ॥

[१५] निरन्तर तपके प्रभावसे ही इसे यह पराक्रम और रूप मिला है। तीनों लोकोंमें उसकी उपमा किसीसे नहीं दी जा सकती, और तो और, जिसके एक हजार आँखें हैं, ऐसा इन्द्र भी उसकी समानता नहीं कर सकता। और जो पुराना वृषभध्वज था वह भी ईशान स्वर्गमें देवता हुआ। वहाँ दो सागर तक रहकर कालान्तरमें तारापति सुग्रीव नामसे उत्पन्न हुआ। विद्याधर राजा सूर्यरजका पुत्र और किष्किन्धा पर्वतका परमेश्वर यह सुग्रीव अब तीनों लोकोंमें विख्यात है। वह बालिका अनुज और वानरध्वजी है। स्त्रीकान्त भी भारी दुःखोंकी खान

णयरें मुणालकुण्डें रिउ-मद्दहों । हेमवइहें वइकण्ठ-णरिन्दहों ॥८॥
जाउ सम्भु-णामें वर-णन्दणु । सुरहँ मि दुज्जउ णयणाणन्दणु ॥९॥
वसुदत्तु वि जम्मन्तर-लक्खेंहिँ । उप्पज्जन्तु कमेण असङ्खेंहिँ ॥१०॥

घत्ता

सिरिभूइ-णामु तेत्थु जें पुरें णिय-जस-भुवणुज्जालियहों ।
हुउ सम्भुहें परम-पुरोहिउ सरसइ-णामें भज्ज तहों ॥११॥

[१६]

गुणवइ वि अणेय-भवेहिँ आय । पुणु करिणि अमरसरि-तीरें आय ॥१॥
एक्कहिँ दिणें पङ्कुप्पङ्कें खुत्त । पाणाउक मउलीहूअ-णेत्त ॥२॥
पेक्खेंवि तरङ्गजव-खेयरेण । णवकार पञ्च तहिँ दिण्ण तेण ॥३॥
पुणु सिरिभूइहें उप्पण्ण दुहिय । वेयवइ णामु छण-यन्द-मुहिय ॥४॥
णं का वि देवि पच्छण्ण आय । सा मग्गिय सम्भुं जणिय-राय ॥५॥
सिरिभूइ पजम्पिउ "कणय-वण्ण । किह मिच्छादिट्ठिहें देमि कण्ण" ॥६॥
सो तेण वि दुट्ठु विरुद्धएण । णिट्ठविउ पुरोहिउ कुद्धएण ॥७॥
जिण-धम्में सुरवरु सग्गें जाउ । जरढारुण-छवि सच्छाय-छाउ ॥८॥

घत्ता

तो वेयवइहेँ णरणाहेंण जें सयलुत्तम-मण्डणउ ।
वलिमण्डएँ ण समिच्छन्तिहें किउ तहें सीलहों खण्डणउ ॥९॥

[१७]

जं धरिसिय विणासिउ ताएं । जणणु चिवाइउ गरुअ-कसाएं ॥१॥
णं सरसइ-सुअ हत्थि पलित्ती । अज्जण-विसिह पकाकें व भित्ती ॥२॥

हज़ारों योनियोंमें भटककर शत्रुविजेता राजा वैकुण्ठ और हेमवतीके यहाँ मृणालकुण्ड नगरमें उत्पन्न हुआ। उसका स्वयंभू नामका नयनानन्दन पुत्र था, जो देवताओंके लिए भी अजेय था। और वसुदत्त भी क्रमसे असंख्य लाखों जन्मान्तरोंमें भटकता रहा। वहीं पर अपने यशसे दुनियामें उजाला करने-वाले स्वयंभू राजा के यहाँ श्रीभूति नामका पुरोहित प्रधान हुआ। उसकी पत्नीका नाम सरस्वती था ॥ १-११ ॥

[१६] अनेक भवोंमें भटकती हुई गंगाके किनारे हथिनी बनी। एक दिन वह कीचड़में खप गयी। उसके नेत्र मुँदने लगे, और प्राण व्याकुल हो उठे। यह देखकर तरंगजव विद्याधरने उसे उसी समय पंचनमस्कारमन्त्र दिया। वह फिर श्रीभूति के यहाँ कन्या उत्पन्न हुई। उसका नाम था वेदवती, और उसका मुख पूर्णेन्दुके समान सुन्दर था। ऐसी लगती थी जैसे प्रच्छन्न रूपसे कोई देवी हो। तब राजा स्वयंभूने अनुराग उत्पन्न करनेवाली वह लड़की मांगी। इसपर श्रीभूतिने कहा, "अपनी सोने सी बेटी मिथ्यादृष्टिको कैसे दे दूँ ?" यह सुनकर राजा क्रुद्ध हो उठा। उसने पुरोहितका काम तमाम कर दिया। परन्तु जिन-धर्मके प्रभावसे वह स्वर्गमें उत्पन्न हुआ। उसकी बालसूर्यके समान छवि थी, जो सुन्दर कान्तिसे युक्त थी। वेदवती राजाको बिलकुल नहीं चाहती थी, फिर भी उसने उसके शीलका खण्डन बलपूर्वक कर दिया, जो उसकी सब कुछ शोभा थी ॥१-९॥

[१७] जब राजाने उसका चरित्र खण्डित कर दिया तो पिता भयंकर कषायसे अभिभूत हो उठा। सरस्वतीकी बेटी, वेदवती सहसा आगबबूला हो गयी, मानो आगका कण पुआलको

वेविरङ्गि आयम्बिर-णयणी । पभणइ दर-फुरियाहर-वयणी ॥३॥
"रे णिसंस कप्पुरिस अ-कज्जिय । खल वराय दुग्गइ-गम-सज्जिय ॥४॥
जं पइँ महु अणेय सङ्कारेंवि । हउँ परिवुत्त वत्ता महों हारेंवि ॥५॥
तं तउ गरुअ-कम्म-संचरणहों । होसमि वाहि व कारणु मरणहों" ॥६
एव भणेंवि णरवइहें णिलुक्केंवि । कह वि कह वि जिण-भवणु पढुक्केंवि ७
हरिकन्तियहें पासु णिक्खन्ती । वम्भ-लोउ बहु-कालें पत्तो ॥८॥

घत्ता

सम्भु वि सिय-सवण-विमुक्कउ जिणवर-वयण-परम्मुहउ ।
मिच्छाहिमाणु मणें मूढउ बहु-दिवसेंहिँ दुग्गइहें गउ ॥९॥

[१८]

तहिँ महन्त-दुक्खइँ पावेप्पिणु । तिरिय-गइ वि णीसेस भमेप्पिणु ॥१॥
पुणु सावित्ति-गब्में पङ्कय-मुहु । जाउ कुसद्धय-विप्पहों तणुरुहु ॥२॥
णामु पहासकुन्दु सुपसिद्धउ । दुल्लह-वोहि-रयण-सुसमिद्धउ ॥३॥
दिक्खङ्किउ चउ-णाण-सणाहहों । पासें विचित्तसेण-मुणिणाहहों ॥४॥
तवु करन्तु परमागम-सुसिएँ । एक्क-दिवसें गउ वन्दणहत्तिएँ ॥५॥
सम्मेइरिहें परायउ जावेंहिँ । कणयप्पहु विज्जाहरु तावेंहिँ ॥६॥
गयणङ्गणें लक्खिज्जइ जन्तउ । जो सुरवइहें वि सियएँ महन्तउ ॥७॥
तं णिएवि परिचिन्तिउ साहुहुँ । मयरकेउ-मयलञ्छण-राहुहुँ ॥८॥
"होउ ताव महु सासय-सोक्खें । विहव-विवज्जिएण तें मोक्खें ॥९॥

घत्ता

दूसहहों जिणागम-कहियहों अत्थि किं पि जइ तवहों फलु ।
तो एहउ अण्ण-भवन्तरें होउ पहुत्तणु महु सयलु" ॥१०॥

छू गया हो। उसका अंग-अंग थर-थर काँप रहा था और उसकी आँखें लाल थी। उसके ओंठ और मुख फड़क रहे थे। उसने कहा, "हे हृदयहीन लज्जाहीन कापुरुष, दुष्ट और नीच, अब तेरा खोटी गतिमें जाना निश्चित है। जो तूने मेरे पिता की हत्या कर, बलपूर्वक अपहरणकर, मेरा शीलापहरण किया है; सो मैं, भारी कर्मोंमें लिप्त रखनेवाली तेरी मृत्युकी कारण बनूँगी।" यह कहकर, वह किसी प्रकार राजासे बचकर जिनमन्दिरमें पहुँची। वहाँ उसने हरिकान्तिके पास दीक्षा ग्रहण की, और बहुत समयके अनन्तर ब्रह्मलोकमें पहुँची। जिन-वचनोंसे विमुख राजा स्वयंभू भी वैभव और स्वजनोंसे अलग हो गया। मनमें मिथ्याभिमान रखनेके कारण बहुत दिनोंमें मरकर खोटी गतिमें पहुँचा ॥१-२॥

[१८] वहाँ बड़े-बड़े दुःखोंसे उसका पाला पड़ा। वह समस्त तिर्यंच गतियोंमें घूमता फिरा। फिर सावित्रीके गर्भसे कुशध्वज ब्राह्मणके पंकजमुख नामका बेटा हुआ। उसका नाम प्रभासकुन्द था। वह दुर्लभज्ञान रत्नसे अलंकृत था। चार ज्ञान से सम्पन्न विचित्रसेन मुनिनाथके पास उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। तप करते-करते एक दिन वह आगमके अनुसार जिनेन्द्र भगवान्की वन्दनाभक्तिके लिए गया। जब वह सम्मेद शिखर-पर पहुँचा, तो उसने देखा कि आकाशमें विद्याधर कनकप्रभ जा रहा है, उसका वैभव इन्द्रसे भी महान् था। उसे देखकर कामदेव और चन्द्रके समान सुन्दर उस साधुने सोचा, "वैभव से हीन, शाश्वत सुखोंवाले मोक्षसे तो अब दूर रहा। (मैं तो चाहता हूँ) कि जिनागममें दुःसह तपका जो फल बताया गया है, उससे दूसरे जन्ममें यह सब प्रभुता मुझे प्राप्त हो ॥१-१०॥

[१९]

इय णियाण-दूसिय-तव-चिण्णउ । परम-समाहिएँ मरणु पवण्णउ ॥१॥
सग्गें सणकुमारें उप्पज्जेंवि । तहिँ सायरइँ सत्त सुहु भुञ्जेंवि ॥२॥
चवेंवि आउ सुउ जय-सिरि-माणणु । कइकसि-रयणासवहुँ दसाणणु ॥३॥
णिय-जस-भूसण-भूसिय-तिहुअणु । कम्पाविय-विसहर-णर-सुरयणु ॥४॥
तोयदवाहण-वंसुद्धारणु । सहसणयण-णिणिबन्धण-कारणु ॥५॥
जो सम्भू सिरिभूइ-विवाइउ । पुणु सोहम्म-सग्गु सम्पाइउ ॥६॥
चवेंवि परिट्ठापुरें उप्पज्जेंवि । खयरु पुणव्वसु तवु आवज्जेंवि ॥७॥
तइयउ तियसावासु चडेप्पिणु । सत्त समुद्दोवमइँ गमेप्पिणु ॥८॥

घत्ता

सो जायउ गब्भें सुमित्तिहेँ दससन्दण-णरवइहेँ सुउ ।
एउ लक्खणु लक्खणवन्तउ चक्काहिवु राहव-मणुउ ॥९॥

[२०]

जो गुणवइहेँ आसि गुणवन्तउ । भायरु कहिउ पगुण-गुण-वन्तउ ॥१॥
भवेँ परिभमेंवि चारु-मुह-मण्डलु । सो उप्पण्णु एहु भामण्डलु ॥२॥
जो जण्णवक्कि आसि गुण-भूसणु । सो तुहुँ एँहु संजाउ विहीसणु ॥३॥
तें सव्व वि रामहों अणुरत्ता । पुव्व-भवन्तर-णेह-णिउत्ता ॥४॥
जा चिरु हुन्ती गुणवइ वणि-सुय । भवेँ परिभमेंवि कमेंण दियहरें हुय॥५
सिरिभूइहेँ सुअ रूव-रवण्णी । जा चिरु बम्भ-कप्पेँ उप्पण्णी ॥६॥
तहिँ तेरह पल्लइँ णिवसेप्पिणु । पुण्ण-पुञ्जें थिएँ सेसें चवेप्पिणु ॥७॥
एँह सा जाय सीय जणयहों सुय । णिरु महुराकाविणि णं परहुय ॥८॥
चिरु वेयवइ णेह-सम्बन्धें । हिय दसकन्धरेण कामन्धें ॥९॥

[१९] इस प्रकारके संकल्पसे उसने अपना मन दूषित कर लिया और परमसमाधिसे उसका शरीरान्त हो गया। स्वर्गमें वह सनत्कुमार नामका देव हुआ। वहाँ सात सागर तक सुख-का भोगकर वहाँसे च्युत होकर फिर अयश्रीका अभिमानी वह कैकशी और रत्नाश्रवका पुत्र रावण हुआ। उसने अपने यशसे तीनों लोकोंको भूषित कर दिया है, और विषधर नर और देवताओंको थर्रा दिया है। उसने तोयदवाहन के वंशका उद्धार किया है, सहस्रनयनके बन्दी बनाये जानेमें प्रमुख कारण वही है, और जो स्वयंभू श्रीभूति नामका पुरोहित था, वह सौधर्म स्वर्गमें जाकर उत्पन्न हुआ। वहाँसे आकर उसने प्रतिष्ठापुरमें जन्म लिया, फिर पुनर्वसु नामका विद्याधर बना। वहाँसे आकर तीसरे स्वर्गमें देव उत्पन्न हुआ। वहाँ सात सागर पर्यन्त सुखोपभोग करता रहा। वही सुमित्रादेवीके गर्भसे राजा दशरथका पुत्र हुआ। लक्षणोंवाला सुन्दर लक्ष्मण है, जो रामका छोटा भाई और चक्रवर्ती है ॥१-२॥

[२०] और जो गुणवतीका महान् गुणोंसे युक्त, गुणवान छोटा भाई है, सुन्दर मुखवाला छोटा भाई था। वही भामण्डल-के रूपमें उत्पन्न हुआ। जो गुणालंकृत यज्ञबलि था, वही तुम विभीषण हो, पूर्वभवके स्नेहके कारण ये सब रामसे असाधा-रण प्रेम रखते हैं। जो गुणवती नामकी बनिया की बेटी है, वह घूम-फिरकर द्विजघरमें उत्पन्न हुई श्रीभूतिकी रूपसम्पन्न पुत्रीके रूपमें। फिर ब्रह्मस्वर्गमें तेरह पल्य रहनेके अनन्तर जब पुण्य समूह बहुत थोड़ा रहा तो वही यह जनकनन्दिनी सीता देवी है, मानो जैसा मीठा बोलनेवाली कोयल हो। वेदवतीके स्नेह सम्बन्धके कारण, कामान्ध होकर रावणने इसका अपहरण किया। और जो इसे इतना अधिक दुःख उठाना पड़ा

जं मुणि पुव्व-जम्में णिन्दन्ती । तं इह दुहइँ महन्तइँ पत्ती ॥१०॥

घत्ता

सिरिभूइ कालें सुअ-कारणें जं हउ सम्भु-णरेसरेंण ।
तें लक्केसरु चिरु हिंसणु विणिवाइउ लक्खीहरेंण' ॥११॥

[२१]

गुरु-वयणेहि तेहिं गओहिउ । पुणु वि विहीसणु एम पवोहिउ ॥१॥
'कहें कें कम्में जणण विणीयहँ । सहहें वि कच्छणु काइउ सीयहें॥२॥
तं णिसुणेवि वयणु मुणि-पुङ्गमु । अक्खइ णाण-महाणइ-सङ्गमु ॥३॥
'मुणि सुअरिसणु आसि विहरन्तउ । मण्डलि-गामु गामु संपत्तउ ॥४॥
थिउ णन्दणवणें णिरु णिम्मल-मणु । तं वन्देप्पिणु गउ सयलु वि जणु ॥५॥
मुणिवरो वि लहु-वहिणिएँ सवणएँ । सइ महसइएँ समउ सुअरिसणएँ ॥६॥
किं पि चवन्तु णिएँवि वेगवइएँ । कहिउ असेसहँ लोयहँ कुमइएँ ॥७॥

घत्ता

किं चोज्जु एउ जं णाएँहिं दूसिज्जइ वरु हरिहिं वणु ।
राउल-णिहाउ दुच्चरिणिहिं तिहुण-सहासें साहु-जणु ॥८॥

[२२]

"तुम्हहिं मणहु चारु बम्भदउ । णिज्जिय-पञ्चेन्दिय-मयरद्धउ ॥१॥
महँ पुणु एँहु सयमेव परिक्खिउ । सहुँ महिलएँ एक्कन्तें परिट्ठिउ" ॥२॥
एम ताएँ तव-णियम-सणाहहों । कोएँ अणायरु किउ मुणि-णाहहों ॥३॥
सो वि करेवि अवग्गहु थक्कउ । "जा ण फिट्टइ संवाउ गुरुक्कउ ॥४॥
ता णिवित्ति महु सयलाहारहों" । आणवि णिप्फल इय-संसारहों ॥५॥
सासण-देवयाएँ अत्थक्कएँ । मुहु सूणाविउ गरुआसङ्कएँ ॥६॥

उसका कारण यही है कि उसने पूर्व जन्ममें मुनिकी निन्दा की थी। और जो स्वयंभू राजाने अपने पुत्रके कारण श्रीभूति-की हत्या की थी, उसी हिंसक स्वभाववाले रावणको चक्रवर्ती लक्ष्मणने मार गिराया ॥१-१०॥

[२१] मुनिके दिव्य वचन सुनकर विभीषण गद्‌गद हो उठा। उसने फिर पूछना प्रारम्भ किया, "कृपया बताइए, किस कर्मसे पिताके लिए विनीत सीतादेवी जैसी सती स्त्रीको कलंक लगा?" यह सुनकर महामुनिने जो अक्षय ज्ञानरूपी नदीके संगम थे बताया, "सुदर्शन नामके मुनि विहार करते हुए मण्डल नामक गाँवमें पहुँचे। निर्मल मन वह नन्दन वनमें ठहरे। सब लोग उनकी वन्दना भक्ति करनेके लिए गये। महामुनि अपनी छोटी बहन महासती सुदर्शना अर्जिका से कुछ बात कर रहे थे। यह देखकर दुष्ट बुद्धि वेदवतीने यह बात सब लोगोंसे कह दी। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। क्योंकि स्त्रियाँ घरको दूषित करती हैं और बन्दर वनको! खोटी स्त्रियाँ राजकुलको दूषित करती हैं और दुष्ट लोग सज्जनोंको दूषण लगाते हैं ॥१-८॥

[२२] इसपर विभीषणने कहा, "हे धर्मध्वज और इन्द्रियों और कामदेवके विजेता, आपने जो कुछ कहा वह बहुत सुन्दर कहा। मैंने इन स्त्रियोंके साथ रहकर इस बातकी स्वयं परीक्षा कर ली है।" तब महामुनिने फिर कहा, "जब इसने तप और नियमोंसे परिपूर्ण महामुनिको इस प्रकार लोकमें अपवाद लगाया, तो उन्होंने भी यह प्रतिज्ञा कर ली कि जब-तक यह भारी अपवाद नहीं मिटता मैं तबतक सब प्रकारके आहारका त्याग करता हूँ। संसारका विनाश करनेवाले महामुनि के निश्चयको जानकर शासनदेवीका मुख बहुत भारी आशंकासे तत्काल झुक गया। तब वेदवतीने लोगोंसे कहा,

ताएँ वि एउ वुत्तु "अहों लोयहों। णिय-मणु मा सन्देहहों ढोयहों ॥७॥
जं मइँ कहिउ सव्वु तं अलियउ । अज्जु वि पाउ असेसु वि फलियउ" ।८

घत्ता

जं माइ-जुअलु तं णिन्दियउ पुव्व-भवन्तरें खल-मइएँ ।
संवाउ एत्थ उवलद्धउ जणहों मज्झें तें आणइएँ' ॥९॥

[२३]

पडिभणइ विहीसणु विमल-मइ । 'कहि वालि-भवन्तर परम-जइ' ॥१॥
तो कहइ भडारउ गहिर-गिरु । 'विन्दारण्ण-स्थलें विउलें थिरु ॥२॥
होन्तु भमन्तु वि एक्कु मउ । सो रिसि-सज्झाउ सुणेवि मउ ॥३॥
पुणु जाउ कणय-घण-कण-पउरें । अइरावएँ खेत्तें दिसि-णयरें ॥४॥
सावयहों विहिय-णामहों सु-सुउ । सिवमइहें गब्भें मेहदत्तु हुउ ॥५॥
जाहें पालेंवि पञ्चाणुव्वयइँ । तिण्णि गुणव्वय (चउ) सिक्खावयइँ ६
जिणवर-पुज्जउ ण्हवणउ करेंवि । बहु-कालें सण्णासेंण मरेंवि ॥७॥
ईसाण-सग्गें वर-देवु हुउ । विहि रयणायरेंहिं गए हिं चुउ ॥८॥
इह पुव्व-विदेहब्भन्तरएँ । विजयावइ-पुरें णियडन्तरएँ ॥९॥
णामेण मत्तकोइलरविउलु । वर-गामु रहङ्गि व धण-बहुलु ॥१०॥

घत्ता

तहिं कन्तसोउ वर-राणउ रयणावइ पिय हंस-गइ ।
तहुँ बीहि मि सुप्पहु णामेंण णन्दणु जाउ (?) विमल-मइ ॥११॥

[२४]

तेण जुवाण-भाउ पावन्तें । णिय-मणें अइण-धम्मु भावन्तें ॥१॥
सम्मत्तोरु-भारु धवहन्तें । दिणें दिणें जिणु ति-कालु पणवन्तें ॥२
णिरु णिरुवम-गुण-गाम-संजुत्तें । कन्तसोय-रयणावइ-पुत्तें ॥३॥

"आप लोग अपने मनमें किसी प्रकारकी शंका न करें, जो कुछ भी मैंने कहा है, वह सब झूठ है, आज ही मेरा सब पाप फलित हो गया है"। उस दुष्टमति वेदवतीने पूर्व जन्ममें जो भाई-बहनकी निन्दा की थी, उसीका यह फल है कि जानकीके बारेमें इस जन्ममें लोगोंके बीच यह अपवाद फैला ॥१-२॥

[२३] तब विमलबुद्धि विभीषणने पूछा, "हे महामुनि, कृपया बालिके जन्मान्तरोंको बतलाइए।" इसपर, गम्भीरवाणी महामुनिने बताना प्रारम्भ किया, "महान् विन्दारण्यमें अपांग होकर एक हिरन विचरण कर रहा था, वह मुनिसे कुछ सुनकर मर गया। मरकर वह ऐरावत क्षेत्रके स्वर्ण और धनधान्यसे भरपूर दीप्तिनगरमें उत्पन्न हुआ। एक प्रसिद्ध नाम श्रावककी पत्नी शिवमतीके गर्भसे महद्दत्त नामका पुत्र हुआ। वहाँ उसने पाँच अणुव्रतों, तीन गुणव्रतों और शिक्षाव्रतोंका परिपालन किया। जिनवरकी पूजा और अभिषेक किया। बहुत समयके अनन्तर संन्यास विधिसे मरकर ईशान स्वर्गमें उत्तमदेव उत्पन्न हुआ। दो सागर पर्यन्त रहकर वहाँसे च्युत हुआ। पूर्वविदेहके मध्य विजयावती नगरके निकट मत्तकोकिलविपुल गाँव था जो चक्रवाक की तरह अत्यन्त स्वच्छ था? उसमें कन्तशोक नाम का एक राजा था। उसकी हंसकी तरह चालवाली रत्नावती नामकी सुन्दर पत्नी थी। उन दोनोंके वह सुप्रभ नाम का पुत्र हुआ जो अत्यन्त विमलमति था ॥१-११॥

[२४] जब वह यौवन-अवस्थामें पहुँचा तो उसके मनमें जैनधर्मके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसने सम्यक्त्वका भार अपने ऊपर ले लिया। प्रतिदिन तीनों समय वह जिन-भगवान्‌की वन्दना करता था। कन्तशोक और रत्नावतीका वह पुत्र अनुपम गुणसमूहसे युक्त था, यशमें चन्द्रमाके समान

ससहर-सण्णिहेण जस-वन्तें। तणु-तेओहामिय-रइकन्तें ॥४॥
दुलह-भव-णिहाणु उवलद्धउ। णाणाविह-रिद्धिहिँ समिद्धउ ॥५॥
बहु-संवच्छर-सहसेँहिँ विगएँहिँ। दुद्धर-विसय-महारिहिँ णिहएँहिँ ॥६॥
आऊरिउ सुज्झाणु पहाणउ। किर उप्पज्जइ केवल-णाणउ ॥७॥
ता अवसाण कालु तहोँ आइउ। पुणु सव्वत्थ-सिद्धि संपाइउ ॥८॥
एक्क-रयणि-तणु सुरवरु जायउ। सूर-कोडि-छाया-संछायउ ॥९॥
तहिँ तेत्तीस जलहि परिमाणइँ। भुञ्जेँवि सोक्खइँ अमिय-समाणइँ १०

घत्ता

सो अमरु चवेप्पिणु एत्थहोँ जाउ वालि इह खयर-पहु।
अखलिय-पयावु सुह-दंसणु चरम-सरीरु समरेँ अइ-दूसहु (?) ११

[२५]

जो णिग्गन्थु मुएँवि सामण्णहोँ। ण वि अवयारु करइ जगेँ अण्णहोँ ॥१॥
जो तिव्विसन्तरेँ पिहिमि कमेप्पिणु। एइ सयल-जिणहरइँ णवेप्पिणु ॥२॥
जेण समरेँ सहुँ पुप्फ-विमाणें। अण्णु चन्दहासेण किवाणें ॥३॥
दाहिण-भुएँण भुवण-सन्तावणु। हेलाएँ जें उच्चाइउ रावणु ॥४॥
पच्छएँ धुव ससिकिरण मुएप्पिणु। रज्ज-कज्जु सुग्गीवहोँ देप्पिणु ॥५॥
लइय दिक्ख भव-गहण-विरत्तें। गिरि-कइलासु चडेवि पवत्तें ॥६॥
दिण्णु सिलोवरि परमत्तावणु। जहिँ जम्पउ रोसाविउ रावणु ॥७॥
पुणु वि मडप्फरु भग्गु खणन्तरें। को उवमिज्जइ तहोँ भुवणन्तरें ॥८॥

था। अपने शरीरकी कान्तिसे उसने सूर्यको भी पराजित कर दिया था। उसने दुर्लभ तप अंगीकार कर लिया, जो तरह-तरहकी उपलब्धियोंसे समृद्ध था। उसने दुर्द्धर विषयरूपी शत्रुओंको नष्ट कर दिया था। इस प्रकार उसका बहुत समय बीत गया। अन्तमें उसने मुख्य शुक्लध्यानकी आराधना की, जिससे केवलज्ञानकी उत्पत्ति होती है। फिर उसका अन्त समय आ गया और वह सर्वार्थसिद्धिमें जाकर उत्पन्न हुआ। उसका शरीर एक भव धारण करनेवाला था। उसकी कान्ति करोड़ों सूर्योंके समान थी। उस सर्वार्थसिद्धिमें तेंतीस सागर प्रमाण रहकर उसने नाना प्रकारके सुखभोगोंका उपभोग किया, उन सुखोंका जो अमृतके समान थे। वह देव स्वर्गसे आकर यहाँपर विद्याधरोंका स्वामी विद्याधर बालिके रूपमें उत्पन्न हुआ है। उसका प्रताप अडिग है, उसके दर्शन शुभ हैं, जो चरमशरीरी है और युद्धमें अत्यन्त असह्य है ॥१-११॥

[२५] उसका यह नियम है कि निर्ग्रन्थ साधुको छोड़कर वह किसी दूसरेको नमस्कार नहीं करता। जो एक क्षणमें समूची धरतीकी परिक्रमा कर समस्त जिनमन्दिरोंकी वन्दना करता है। जिसने युद्धमें पुष्पक विमान और चन्द्रहास तलवारके साथ संसारको सतानेवाले रावणको खेल खेलमें दायें हाथपर उठा लिया था। बाद में जिसने अपनी दोनों पत्नियों ध्रुवा और शशिकिरणका परित्याग कर, राज्य-लक्ष्मी सुग्रीवको सौंप दी थी। संसारके आवागमनसे विरक्त होकर जिसने जिन-दीक्षा ग्रहण कर कैलास पर्वतपर जाकर प्रयत्नपूर्वक तपस्या की है। आतापनी शिलापर बैठे हुए जिसने आकाशसे जानेवाले रावणको क्रुद्ध कर दिया था। फिर एक बार उसने पलभरमें रावणका अहंकार चूर-चूर कर दिया। भला संसारमें उसकी

घत्ता

उप्पण्ण-णाणु सो मुणिवरु अट्ठ-दुट्ठ-कम्मारि-खउ ।
झाएँ वि सयम्भु भडारउ सिद्धि-खेत्त-वर-णयरु गउ' ॥९॥

इय पउमचरिय-सेसे सयम्भुएवस्स कह वि उव्वरिए ।
तिहुयण-सयम्भु-रइए सपरियण-हलीस-भव-कहणं ॥
इय रामएव-चरिए वन्दइ-आसिय-सयम्भु-सुअ-रइए ।
बुहयण-मणु-सुह-जणणो चउरासीमो इमो सग्गो ॥

●

[८५. पंचासीमो संधि]

पुणु वि विहीसणेंण पुच्छिअइ 'मयण-वियारा ।
सीया-णन्दणहँ कहि जम्मन्तरइँ भडारा' ॥

[१]

॥हेला॥ तं णिसुणेवि वयणु जग-भवण-भूसणेणं ।
वुच्चइ मुणिवरिन्देण सयलभूसणेणं ॥१॥
'सुणि अक्खमि परिओसिय-सुरवरेँ । जगेँ पसिद्धे कायन्दी-पुरवरेँ ॥२॥
वामएव-विप्पहोँ विक्खायहोँ । सामलीएँ घरिणीएँ सहायहोँ ॥३॥
सुय वसुएव-सुएव वियक्खण । वियसिय विमल-जमल-कमलेक्खण ॥४॥
ताहँ पियउ हुइ णिम्मल-चित्तउ । विसय-पियङ्गु-णाम-संजुत्तउ ॥५॥

तुलना किससे की जा सकती है? आठ दुष्ट कर्मोंका संहार करनेवाले उन महामुनिको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है। इस प्रकार ध्यानपूर्वक वह उत्तम सिद्धक्षेत्र नगरके लिए कूच कर गये हैं ॥१-९॥

इस प्रकार स्वयंभूदेवसे किसी प्रकार बचे हुए, पद्मचरितके शेषभागमें त्रिभुवन स्वयंभू-द्वारा रचित रामके और उनके परिवारके पूर्व-भवोंका कथन शीर्षक पर्व समाप्त हुआ।

वन्दइके आश्रित, स्वयंभूपुत्र द्वारा रचित, पण्डितोंके मनको अच्छा लगनेवाला यह चौरासीवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

●

पचासीवीं सन्धि

फिर भी विभीषण ने पूछा, "हे आदरणीय, कृपया कामदेव-को भी विकार उत्पन्न करनेवाले सीतादेवीके दोनों पुत्रोंके जन्मान्तरोंको बताइए।"

[१] यह शब्द सुनकर जगरूपी भवनके आभूषण सकल-भूषण मुनिवरने कहना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा, "सुनो, बताता हूँ। जगमें प्रसिद्ध और देवताओंको सन्तुष्ट करनेवाले महान् नगर काकंदीपुरमें वामदेव नामका एक प्रसिद्ध ब्राह्मण था। उसकी सहायिका उसकी पत्नी श्यामली थी। उससे उसे वसुदेव और सुदेव नामक दो विलक्षण पुत्र थे। उनकी अत्यन्त निर्मल चित्तकी दो पत्नियाँ थीं, उनकी आँखें खिले हुए कमलोंके समान थीं। उनके नाम थे—विषया और प्रियंगु। एक दिन उन

एक्कहिँ दिणेँ मयणाय-मइन्दहोँ । अण्ण-दाणु सिरितिलय-मुणिन्दहोँ ॥६
विहि मि जणेहिँ तेहिँ गुरुएम्भिए (?)। दिण्णु समुज्जल-अविचल-मत्तिएँ ॥७
बहु-कालेँ अवसाणु पवण्णा । उत्तरकुरुहेँ गम्पि उप्पण्णा ॥८॥
तहिँ मि तिण्णि पल्लइँ णिवसेप्पिणु । मणेँ चिन्तविय भोग भुञ्जेप्पिणु ॥९॥
पुणु ईसाण-सग्गेँ हुअ सुरवर । पलय-समुग्गय णं रवि-ससहर ॥१०॥

घत्ता

विहिँ रयणायरेँ हिँ अइक्कन्तेँ हिँ सम्मय-भरिया ।
च्चवण करेवि पुणु तहेँ कायन्दिहेँ अवयरिया ॥११॥

[२]

॥हेला॥ रइवद्धण-णरिन्दहो पर-परायणासु ।
ससि-णिम्मल-जसासु मिव-सोक्ख-भायणासु ॥१॥
जाय वे वि जिणवर-पय-सेविहेँ । णन्दण सुअरिसणा-महएविहेँ ॥२॥
तहिँ पहिलारउ णामु पियङ्करु । तणु तणुअउ पुणु अणुउ हियङ्करु ॥३॥
मोहइ दित्तिएँ णाइँ दिणेसर । णाइँ भरह-पहु-बाहुबलीसर ॥४॥
बहु-कालेँ तव-चरणु लएप्पिणु । सण्णासेण सरीरु मुएप्पिणु ॥५॥
हुव गेवज्ज-णिवासिय सुरवर । स-मउड दिव्व कडय-कुण्डल-धर ॥६॥
दुइ-रयणी-सरीर-उव्वहिया । अणिमाइहिँ गुणेहिँ सइँ सहिया ॥७॥
सूरप्पहेँ विमाणेँ चिरथिण्णएँ । णाणाविह-मणि-गणहिँ रवण्णएँ ॥८॥
तहिँ इच्छियइँ सुहइँ माणेप्पिणु । सायराइँ चउवीस गमेप्पिणु ॥९॥
चवेँवि जाय पुणु अरि-करि-अङ्कुस । सीयहेँ णन्दण हुअ लवणङ्कुस' ॥१०॥

घत्ता

तं तेहउ वयणु णिसुणेप्पिणु परम-मुणिन्दहोँ ।
हुउ विम्भउ गरुउ विज्जाहर-सुरवर-विन्दहोँ ॥११॥

दोनोंने कामदेवरूपी महागजके लिए सिंहके समान श्रीतिलक नामक महामुनिको अन्नदान दिया। महामुनिके आनेपर उन दोनोंने समुज्ज्वल अच्छी भक्तिसे आहार दान दिया। बहुत समयके बाद जब उनकी मृत्यु हुई तो वे उत्तरकुरुक्षेत्रमें जाकर उत्पन्न हुई। वहाँ तीन पल्य आयु बिताकर और मनचाहे भोग भोगकर वे ईशान स्वर्गमें देवरूपमें उत्पन्न हुई। वे ऐसे लगते थे मानो प्रलयकालमें सूर्य और चन्द्र ही उत्पन्न हुए हों। दो सागर प्रमाण आयु बीतनेपर सम्यकूदर्शनसे युक्त वे दोनों वहाँसे आकर उस काकंदीपुरमें उत्पन्न हुए ॥१-१०॥

[७] शत्रुओंके नाशक चन्द्रमाके समान निर्मल यशवाले और शिव सुखके पात्र रतिवर्धन राजाके यहाँ जिनदेवके चरण-कमलोंकी सेविका सुदर्शना महादेवीसे दो पुत्र उत्पन्न हुई। उनमें पहलेका नाम प्रियंकर था और दूसरेका हितंकर। जो छोटा भाई था, कान्तिमें वह ऐसा सोहता था जैसे सूर्य हो या राजा भरत या बाहुबलीश्वर हो। बहुत समयके अनन्तर उसने तप अंगीकार कर लिया। संन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर, वह ग्रैवेयक स्वर्गमें सुरवर बना। उसके पास बढ़िया मुकुट, दिव्य कटक और कुण्डल थे। दो रत्न प्रमाण उसका शरीर था और वह अणिमादि ऋद्धियों और गुणोंसे युक्त था। नानाविध मणि-रत्नोंसे सुन्दर, विस्तृत सूर्यप्रभ विमानमें उसने अभिलषित सुखोंका उपभोग किया और चौबीस सागर प्रमाण आयु बीतने पर वहाँसे चयकर वे दोनों शत्रुरूपी गजके लिए अंकुशके समान यहाँपर सीतादेवीके लव और अंकुश हुए हैं। परम महामुनिके उन वचनों को सुनकर विद्याधरों और देवताओंको बहुत भारी आश्चर्य हुआ ॥१-११॥

[३]

॥हेला॥ जाणेँवि पुव्व-वइर-सम्बन्धु विहि मि ताहँ ।
सीयहेँ कारणेण सोमित्ति-रावणाहँ ॥१॥

अण्णु वि बहु-दुक्ख-णिरन्तराहँ । अ-पमाणइँ सुणेँवि भवन्तराहँ ॥२॥
दहमुह-मायर-आणइ-बलाहँ । सुग्गीव-वालि-भामण्डलाहँ ॥३॥
केँ वि आसङ्किय गय भयहोँ के वि । केँ वि थिय णिय-मणेँ मच्छरु मुएँवि ॥४
केँ वि थिय चिन्ता-सायरेँ विसेवि । केँ वि हुव मइ-दुक्ख विउद्ध के वि॥५
केँ वि सयलु परिग्गहु परिहरेवि । अत्थक्कएँ-थिय पावज्ज लेवि ॥६॥
अण्णेक्क के वि थिय वउ धरेवि । सम्मत्त-महब्भरेँ खन्धु देवि ॥७॥
भूगोयर-खयर-सुरासुरेहिँ । सयलेँहि मि मुणिहिँ णामिय-सिरेहिँ८
णीसेस-जीव-सम्भीसणासु । किउ साहुक्कारु विहीसणासु ॥९॥

घत्ता

'भो भो गुण-उवहि पइँ होन्तेँ विणय-सहावेँ ।
अम्हेँहि एँउ चरिउ आयण्णिउ मुणिहिँ पसाएं' ॥१०॥

[४]

॥हेला॥ तो एत्थन्तरे तिलोयग्ग-पत्त-णामो ।
वुत्तु कियन्तवत्तेँणं सरहसेण रामो ॥१॥

'परमेसर सयर-धरित्ति-पाल । भइँ तुज्झु पसाएं सामिसाल ॥२॥
सुपगाम-गाम-पट्टण-णिउत्त । रयणायर देस अणेय भुत्त ॥३॥
माणियउ पवर-पीवर-थणाउ । सुरवहु-रूवोहामिय-घणाउ ॥४॥
अच्छिउ विउलेँहिँ जण-मणहरेहिँ । गिव्वाण-विमाणेँहिँ वर-घरेहिँ ॥५॥
आरूढु तुरय-गय-रहवरेहिँ । कीलिउ वण-सरि-सर-कयहरेहिँ ॥६॥
देवङ्गइँ वत्थइँ परिहियाइँ । इच्छएँ भक्खइँ पसाहियाइँ ॥७॥
णिरुवम-णच्चियइँ पलोइयाइँ । बहु-मेय-गेय-वज्जइँ सुआइँ ॥८॥

[३] सीताके कारण जो लक्ष्मण और रावणमें विरोध उठ खड़ा हुआ था, उसका सम्बन्ध उनके पूर्वजन्मके बैरसे है, लोगोंको यह ज्ञात हो गया और भी उन्होंने रावण, बिभीषण, जानकी, राम, सुग्रीव, बालि और भामण्डलके सीमाहीन, दुःखमय जन्मान्तर सुने। उन्हें सुनकर कुछ तो आशंकासे भर गये और कुछ डर गये। कितनोंने अपने मनसे ईर्ष्याको निकाल दिया! कई चिन्ताके समुद्रमें डूब गये, कितने ही महादुःखी हुए, कईको महान् बोध प्राप्त हुआ। कितनोंने ही, समस्त परिग्रह छोड़कर, अविलम्ब संन्यास ले लिया और दूसरे कितनोंने ही व्रत धारण कर लिये और इस प्रकार उन्होंने अपने सम्यक्त्वको सहारा दिया। उसके अनन्तर मुनियोंके सम्मुख अपना सिर झुका देनेवाले मनुष्यों, विद्याधरों और देवताओंने समस्त जीवोंको अभय देनेवाले विभीषणको साधुवाद दिया। उन्होंने कहा, "हे गुण समुद्र विभीषण, आपके विनयशील स्वभावके कारण ही हम मुनियोंके प्रसादसे यह चरित सुन सके" ॥१-१०॥

[४] इसी अन्तरालमें त्रिलोकमें अग्रणीनाम रामसे आकर कृतान्तवक्त्रने वेगपूर्वक कहा, "पहाड़ों सहित धरतीके पालन करनेवाले हे स्वामी श्रेष्ठ, मैं आपके प्रसादसे अच्छी प्रजावाले गाँवों और नगरोंमें नियुक्त होता रहा हूँ। मैंने समुद्र और समस्त देशोंका भोग किया है। देववनिताओंके समान रूपधन-वाली महान् पीन स्तनोंवाली सुन्दरियोंका उपभोग किया है, बड़े-बड़े अश्वों गजों और रथोंपर मैंने सवारी की है। बड़े-बड़े जन-मनोंके लिए सुन्दर देवविमानोंके समान महाप्रासादोंमें रहा हूँ। मैंने दिव्य सुन्दर वस्त्र पहने हैं, इच्छानुसार अपने अंगोंका प्रसाधन किया है। मैंने अनुपम नृत्य देखे हैं। तरह-तरहके गान और वाद्य मैंने सुने हैं। इस प्रकार इस लोकके

अणुहुत्तु सयलु इहलोय-सोक्खु । जम्महों वि ण लक्खिउ कहि मि दुक्खु ९
महु पुत्तु विवाइउ देवि तुज्झु । णिय-सत्तिएँ पेसणु कियउ तुज्झु ॥१०

घत्ता

एवहिं दासरहि उवलुक्कइ जाव ण मरणउ ।
मुक्क-परिग्गहउ वरि ताम लेमि तव-चरणउ ॥११॥

[५]

॥हेला॥ लब्भइ जगें असेसु किय-णरवरिन्द-सेव ।
दुल्लहु णवर एक्कु पावज्ज-रयणु देव ॥१॥
सं कज्जें लइ हत्थुत्थल्लहि । मइँ परलोय-कज्जु मोक्कल्लहि' ॥२॥
इय-वयणेंहि जण-जणियाणन्दें । वुत्तु कियन्तवत्तु वलहद्दें ॥३॥
'वच्छ वच्छ पावज्ज लएप्पिणु । सव्व-सङ्ग परिचाउ करेप्पिणु ॥४॥
किह चरियएँ पर-हरेंहि भमेसहि । पाणि-पत्तें भोयणु भुञ्जेसहि ॥५॥
किह दूसह परिसह वि सहेसहि । अङ्गें महामल-पडलु धरेसहि ॥६॥
किह धरणियल-सयणें सोवेसहि । काणणें वियणें घोरें णिसि णेसहि ॥७॥
किह दुक्कर-उववास करेसहि । पक्खु मासु छम्मास गमेसहि ॥८॥
रुक्ख-मूलें आयावणु देसहि । तुहिण-कणावलि देहें धरेसहि ॥९॥
तो सेणाणि भणइ 'सुह-भायणु । जो छड्डमि तुह णेह-रसायणु ॥१०॥
जा कच्छोहरु उज्झेंवि सक्कमि । सो किं अवरइँ सहेंवि ण सक्कमि ॥११

घत्ता

भिच्चु-सुराउहेंण देह-हरि जाव णिहम्मइ ।
ताव लएण वरि अजरामर-देसहों गम्मइ ॥१२॥

[६]

॥ हेला ॥ कालेण वि णरिन्द वड्डिय-महन्त-सोउ ।
होसइ तुह समाणु अवरेंहि वि सहुँ विओउ ॥१॥

समस्त सुख मैं भोग चुका हूँ। जन्म भर मैंने कभी दुःखका नाम भी नहीं सुना। मैंने शक्ति भर हे देव, आपकी सेवा की है। मेरा पुत्र मर गया है। हे राम, इस समय सब प्रकारका परिग्रह छोड़कर उत्तम तपस्या स्वीकार करता हूँ—तबतक कि जबतक मौत नहीं आती ॥१-११॥

[५] जिसने राजाकी सेवा की है, वह दुनियामें सब कुछ पा लेता है, परन्तु हे देव, उसके लिए यदि कोई चीज दुर्लभ है तो वह है संन्यासरूपी रत्न। इसलिए शीघ्र आप थोड़ा हाथ लगा दें और मुझे परलोककी चिन्तासे मुक्त कर दें। यह सुन-सुन कर जनोंको आनन्द देनेवाले रामने कृतान्तवक्त्रसे कहा, "हे वत्स, संन्यास लेकर और सब परिग्रहका त्याग कर चर्याके लिए दूसरोंके घर कैसे घूमोगे? हाथके पात्रमें भोजन कैसे करोगे, दुःसह परीषह कैसे सहन करोगे, शरीरपर मैलकी परतें कैसे धारण करोगे, धरतीपर कैसे सोओगे, घोर विषम काननमें रात कैसे बिताओगे, कठोर उपवास कैसे करोगे, उपवासमें पक्ष माह छह माह कैसे बिताओगे, वृक्षके नीचे धूप कैसे सहोगे और किस प्रकार हिम किरणोंको शरीरपर सहन करोगे?" यह सुनकर सेनापतिने कहा, "जब मैं सुखके भाजन और स्नेहके रसायन आपको छोड़ रहा हूँ और जो मैं लक्ष्मीधरको छोड़ सकता हूँ, तो फिर ऐसी कौन सी चीज है, जिसे मैं सहन नहीं कर सकता। हे देव, मृत्युरूपी वज्रसे यह देह-रूपी पहाड़ ध्वस्त हो, इसके पहले मैं अजर-अमर पदको पानेके लिए जाना चाहता हूँ॥१-१०॥

[६] हे राजन्, समय सबको शोक बढ़ाता रहता है। आपके समान दूसरोंसे भी वियोग होगा। तब बड़ी कठिनाईसे प्राण

तइयहुँ दुक्कर जीविउ छुट्टइ । बहु-दुक्खेंहिं महु हियवउ फुट्टइ' ॥२॥
तें कज्जें ण वि वारिउ थक्कमि । चउ-गइ-काणणें भमेंवि ण सक्कमि ॥३॥
तं णिसुणेंवि बलु दुम्मण-वयणउ । बोल्लइ अंसु-जलोल्लिय-णयणउ ॥४॥
तुहुँ स-कियत्थउ जो इउ वुज्झेंवि । महु-सम सिय जर-तिणमिव उज्झेंवि॥५॥
घोर वीरु तव-चरणु समिच्छहि । इय जम्में अइ मोक्खु ण पेच्छहि ॥६॥
अवसरु परियाणेंवि संखेवें । सम्बोहेवउ हउँ पइँ देवें ॥७॥
अह जाणहि उवयारु णिरुत्तउ । सम्भरेज्ज तो एँउ जं वुत्तउ ॥८॥
सो वि सरइसु स-विणउ पणवेप्पिणु । 'एम करेमि देव' पभणेप्पिणु ॥९॥

घत्ता

वन्देंवि मुणि-पवरु 'दिक्खहेँ पसाउ' पमणन्तउ ।
रज्जें कियन्तवयणु बहु-णरहिं समउ णिक्खन्तउ । १०॥

[७]

॥ हेला ॥ सहसा हुउ महरिसी भव-भव-सयाहँ भीउ ।
सीकाहरण-भूसिउ करयलुंत्तरीउ ॥१॥
तो मुणि अहिणन्देंवि अमर-सय । णिय-णिय-भवणहुँ सहसत्ति गय ॥२॥
सीराउहो वि संचल्लु तहिं । सा अच्छइ सीयाएवि जहिं ॥३॥
दीसइ अज्जिय-गण-परियरिय । धुव-तार व ताराकङ्करिय ॥४॥
णं समय-कवि विमकम्बरिय । णं सासण-देवय अवयरिय ॥५॥
पेक्खेंवि पुणु थिउ आसण्णु बलु । णं सरय-जलय-माकहेँ अचलु ॥६॥
चिन्तन्तु परिट्ठिउ खणु खणु । दर-वाह-भरिय-अविचल-णयणु ॥७॥
'आ चिरु घण-रवहों वि तसइ मणें । सोवइ हिय-इच्छिय-वर-सयणें ॥८॥

छूटेंगे। बहुत दुःखोंसे मेरा हृदय फट जायगा। यही कारण है कि आपके मना करनेपर भी मैं अपनेको रोक नहीं पा रहा हूँ। अब चार गतियोंके जंगलमें नहीं भटक सकता।" यह सुनकर रामका मुख खिन्न हो उठा। आँखोंमें आँसू भरकर उन्होंने कहा, "सचमुच तुम्हारा जीवन सफल है, जो इस प्रकार बोध प्राप्त कर तुमने मुझे और सीतादेवीको तिनकेके समान छोड़ दिया। यदि इस जन्ममें मोक्ष न भी मिले, तो भी तुम खूब तपश्चरण करना। उचित अवसर जानकर हे देव, तुम संक्षेपमें मुझे भी सम्बोधित करना। यदि तुम मेरे उपकारको मानते हो तो जो कुछ मैंने कहा है, उसे ध्यानमें रखना।" यह सुनकर उसने भी हर्षपूर्वक प्रणाम किया, और कहा, "हे देव, मैं ऐसा ही करूँगा।" महामुनिकी वन्दना कर उसने प्रभावमें दीक्षा माँगी। इस प्रकार कृतान्तवक्त्र एक ही पलमें कई लोगोंके साथ दीक्षित हो गया ॥१-१०॥

[७] शत शत जन्मान्तरोंसे डर कर वह महामुनि हो गया। वह शीलके अलंकारोंसे भूषित था और हाथ ही उसके आवरण थे। उस महामुनिकी सैकड़ों देवता वन्दना कर अपने-अपने भवनोंको चले गये। श्री राघवने वहाँके लिए प्रस्थान किया जहाँ सीतादेवी विराजमान थीं। अर्जिकाओंसे घिरी हुई वह ऐसी लगती थी, मानो ताराओंसे अलंकृत ध्रुवतारा हो, मानो पवित्रतासे ढँकी हुई शास्त्रकी शोभा हो, मानो शासन देवता ही उतर आयी हो। उन्हें देखकर राम उनके निकट इस प्रकार खड़े हो गये, जैसे मेघमालाओंके निकट पहाड़ खड़ा हो। चिन्तामें पड़कर वह क्षण भर सोचते रहे। उनकी अविचल आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। वे सोच रहे थे, "जो कभी मेघके शब्दसे डरती थी, जो मनपसन्द सेजपर

सा वणयर-सद्द-भयाउलएँ। वहु हरि-खुण्ट-कुस-सङ्कुलएँ ॥९॥
वर-काणणेँ पगुण गुणब्महिय। किह रयणि गमेसइ भय-रहिय ॥१०॥

घत्ता

अप्पिय-पिय-वयण अणुकूल मणोज्ज महासइ।
सुह-उप्पायणिय कहिँ लब्भइ एरिस तियमइ ॥११॥

[८]

धि मईं कियउ असुन्दरं जणहुँ कारणेणं।
जं घल्लाविया सि पिय वणेँ अकारणेणं ॥१॥
चिन्तेँवि एव सीय अहिणन्दिय। णं जिण-पडिम सुरिन्देँ वन्दिय ॥२॥
जिह तेँ तेम सुमित्तिहेँ जाएं। तिह वर-विज्जाहर-सङ्घाएं ॥३॥
तुहुँ स-कियत्थ जाएँ सुपसिद्धउ। जिणवर-वयणामिउ उवलद्धउ ॥४॥
जा वन्दणिय जाय णीसेसहुँ। वाल-जुवाण-जरक्कियवेसहुँ ॥५॥
कन्त-जणेर-कुलइँ अप्पउ जणु। पइँ उज्जालिउ सयलु वि तिहुयणु ॥६॥
पुणु णीसल्लु करेंवि महब्बल। जाणइ अहिणन्देँवि गय हरि-वल ॥७॥
लवणङ्कुस-कुमार विच्छाया। णं रवि-ससहर णिप्पह जाया ॥८॥
गय णर-णरवरिन्द-विज्जाहर। सुन्दर-कडय-मउड-कुण्डल-धर ॥९॥

घत्ता

दसरह-राय-सुय णरवर-लक्खेँहि परियरिय।
इन्द-पडिन्द जिह तिह उज्झाउरि पइसरिय ॥१०॥

[९]

॥ हेला ॥ एत्थन्तरे णिएवि वलएउ पइसरन्तो।
तिसह-जिणिन्द-पउम-णन्दणहोँ अणुहरन्तो ॥१॥

सोती थी, वही सीता अब वन जन्तुओंके शब्दोंसे भयंकर, घास, काँटों और कुशोंसे व्याप्त बियाबान जंगलोंमें गुणालंकृत होकर कैसे निडरतासे रात बितायेगी। प्रिय वाणी बोलनेवाली, अनुकूल सुन्दर महासती और सुखोंको उत्पन्न करनेवाली ऐसी स्त्री कहाँ मिल सकती है ॥१–११॥

[८] धिक्कार है मुझे कि जो मैंने लोगोंके कहनेसे इसके साथ बुरा बर्ताव किया। अकारण मैंने अपनी प्रियपत्नीको वन-में निर्वासित किया।" अपने मनमें यह विचार कर श्रीरामने सीतादेवीका अभिनन्दन किया मानो देवोंने जिनेन्द्र प्रतिमाकी वन्दना की हो। रामकी ही भाँति सुमित्राके पुत्र लक्ष्मण और दूसरे-दूसरे विद्याधरोंके समूहने सीता देवीकी वन्दना की।" उन्होंने कहा, "सचमुच तुम सफल हो जिसने प्रसिद्ध जिन-वचनामृतकी उपलब्धि कर ली और जो तुम आबाल वृद्ध वनिता सभीके द्वारा वन्दनीय हो। तुमने पति और पिताके कुलोंको, अपने आपको और तीनों लोकोंको आलोकित कर दिया।" इस प्रकार उसे शल्यहीन बनाकर और वन्दनाकर महाबली राम एवं लक्ष्मण वहाँसे चले गये। कुमार लवण और अंकुश ऐसे कान्तिहीन हो उठे मानो सूर्य और चन्द्रका तेज फीका पड़ गया हो। नरवर श्रेष्ठ विद्याधर जो कि सुन्दर मुकुट कटक और कुण्डल धारण किये हुए थे, चले गये। लाखों मनुष्योंसे घिरे हुए दशरथ राजाके पुत्र राम और लक्ष्मणने इन्द्र और उपेन्द्रकी भाँति, अयोध्या नगरीमें प्रवेश किया ॥१–१०॥

[९] यहाँ भी अयोध्याके नागरिकोंने देखा कि प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथके प्रथम पुत्र भरतके समान राम नगरमें

णाणा-रस-सम्पुण्ण-णिरन्तरु । आयरिया-यणु णावइ पओप्परु ॥२॥
एँहु सो बलु णिय-भुअ-बल-बीयउ । दीसइ णिम्मु जेम णिरक्खीयउ ॥३॥
सोह ण पावइ उवसम-सत्तउ । णं जिण-धम्मु दया-परिचत्तउ ॥४॥
णं जोण्हएँ आमेल्लिउ ससहरु । णं दित्तिएँ वुज्झिउ दिणयरु ॥५॥
एँहु सो जें विणिवाइउ रावणु । लक्खणु लक्खण-लक्खङ्किय-तणु ॥६॥
हय वेण्णि वि जण ते लवणङ्कुस । सीयाणन्दण करि व णिरङ्कुस ॥७॥
तरणि-तेय णिव्वूढ-महाहव । जेहिँ पराजिय लक्खण-राहव ॥८॥
एँहु सो वज्जजङ्घु बल-सालउ । पुण्डरीय-पुरवर-परिपालउ ॥९॥

घत्ता

एँहु सो सत्तुहणु सत्तुहणु समरेँ अणिवारिउ ।
णन्दणु सुप्पहहेँ जें महु महुराहिउ मारिउ ॥१०॥

[१०]

॥ हेला ॥ एँहु सो अणय-णन्दणो अयसिरी-णिवासो ।
रहणेउर-पुराहिवो तिहुअणे पयासो ॥१॥

एँहु सो सुग्गीउ वराहिमाणु । पमयद्धय-विज्जाहर-पहाणु ॥२॥
किक्किन्ध-णराहिउ वालि-भाइ । ताराबइ तारा-वइ व भाइ ॥३॥
एँहु सो मारुइ अक्खय-विणासु । जें दिण्णु पाउ सिरेँ रावणासु ॥४॥
एँहु सो सुविसद्धाएवि-कन्तु । कक्केसु विहीसणु विणय-वन्तु ॥५॥
एँहु सो णलु घाइउ जेण हत्थु । एँहु णीलु विघाइउ जें पहत्थु ॥६॥
एँहु सो अङ्गउ थिर-थोर-बाहु । जें किउ मन्दोयरि-केस-गाहु ॥७॥
एँहु सो पवणञ्जउ सुहड-सेहरु । परिपालइ जो आइच्च-णयरु ॥८॥

प्रवेश कर रहे हैं। तरह-तरहके रत्नोंसे निरन्तर सम्पूर्ण रहनेवाली नागरिकाएँ आपसमें कह रही थीं—"क्या यह वही राम हैं जिन्हें अपने भुजबलका ही एक मात्र सहारा है, यह तो ग्रीष्म ऋतुकी भाँति शीत (सीता) से शून्य हैं। महासत्त्वशाली होकर भी यह उसी प्रकार शोभा नहीं पाते जिस प्रकार दयासे जैनधर्म। जैसे ज्योत्स्नासे रहित चन्द्र शोभा नहीं पाता या कान्तिसे रहित सूर्य। यही हैं वे जिन्होंने रावणका वध किया। यह लक्ष्मण तो लाखों लक्षणोंसे युक्त हैं। क्या ये दोनों लवण और अंकुश हैं, जो सीतादेवीके पुत्र हैं, अंकुश विहीन गजकी भाँति। तेजमें जो सूर्य हैं। बड़े-बड़े युद्धोंके विजेता लक्ष्मण और राम भी जिनसे पराजित हुए। रामका साला यह वही वज्रजंघ है जो पुण्डरीक नगरका पालक है। यही है वह शत्रुघ्न, शत्रुओंका हनन करनेवाला जो युद्धमें अजेय है। सुप्रभाका यह बेटा है जिसने मथुराधिप मधुको मार डाला ॥१–१०॥

[१०] यह वह जनकपुत्र भामण्डल है, जो विजयलक्ष्मीका निवास है, रथनूपुर नगरका स्वामी है और जो त्रिलोकमें प्रसिद्ध है। यह वह स्वाभिमानी सुग्रीव है जो वानरविद्याधरोंका प्रमुख है। किष्किन्धाका अधिपति, वालिका भाई, ताराका स्वामी यह चन्द्रमाकी भाँति शोभित हो रहा है। अक्षयका विनाश करनेवाला यह हनुमान है जिसने रावणके सिरपर अपना पैर जमा दिया था। यह सुविदग्धा देवीका स्वामी है, लंकाका राजा, विनयशील राजा विभीषण। यह वह नल है जिसने हस्तको मारा था, यह है नील जिसने प्रहस्तका काम तमाम किया। स्थूलबाहुवाला यह वह अंगद है जिसने मन्दोदरी देवीके बाल पकड़ लिये थे। यह वह सुभटोंमें महान् पवनंजय

एँहु सो महिन्दु अज्जणहें ताउ। मणवेय-महाएविएँ सहाउ ॥९॥
आयउ सहि तिण्णि वि जणिउ ताउ। अवराइय-कइकय-सुप्पहाउ ॥१०॥

घत्ता

पुण्णवणहों तणय सा एह विसल्ला-सुन्दरि।
सत्ति-हउ (?) जाएँ रणें परिरक्खिउ लक्खण-केसरि ॥११॥

[११]

॥ हेला ॥ णायरिया-यणासु आलाव एव जावं।
लक्खण-पउमणाह राउलें पइट्ठ तावं ॥१॥

सुरसरि-जउण-पवाह व सायरें। ससि-दिवसयर व अत्थ-धराहरें ॥२॥
केसरि व्व गिरि-कुहरब्भन्तरें। सद्दत्थ व वायरण-कहन्तरें ॥३॥
चिन्तइ बलु पिय-सोयब्भइयउ। 'पेक्खु केव सीयएँ तवु लइयउ ॥४॥
हउँ भत्तारु जणद्दणु देवरु। जणउ जणणु भामण्डलु भायरु ॥५॥
णन्दण दुइ वि एय लवणङ्कुस। अवराइय सासुव दीहाउस ॥६॥
इह महि एउ रज्जु एँउ पट्टणु। एँउ घरु एँहु अवरु वि बन्धव-जणु ॥७॥
इय पुण्णिम-ससि-सण्णिह-छत्तइँ। कह सव्वइ मि झत्ति परिचत्तइँ ॥८॥
सुरवरह मि असक्कु किउ साहसु। बहु-कालहों वि थविउ महियलें जसु॥९
एवहिं उब्भासिय-परिवायहों। होन्तु मणोरह पय-सङ्घायहों' ॥१०॥

घत्ता

लक्खणु चिन्तवइ सीया-गुण-गण-मण-रञ्जिउ।
'हउँ विणु जाणइएँ हुउ अज्जु अणेरि-विवज्जिउ' ॥११॥

है जिसे आदित्यनगरका संरक्षण दिया है। अंजनाके तात यह माहेन्द्र हैं। मनोवेगा और महादेवी उसकी सहायिका हैं और भी तीनों माताएँ आयीं, अपराजिता कैकेयी और सुप्रभा। यह है, पुण्यघनकी बेटी विशल्या सुन्दरी जिसने युद्धमें शक्तिसे आहत लक्ष्मणके प्राण बचाये ॥१-११॥

[११] इस प्रकार नागरिकाओंमें वार्तालाप हो ही रहा था कि राम और लक्ष्मणने राजकुलमें ऐसे प्रवेश किया मानो गंगा और यमुनाके प्रवाहोंने समुद्रमें प्रवेश किया हो, सूर्य और चन्द्र आकाशमें स्थित हों, गिरिगुहाओंमें जैसे सिंह हो, व्याकरणकी कथाके भीतर जैसे शब्दार्थ हो। शोकाकुल होकर राम अपने मनमें सोच रहे थे कि देखो सीतादेवीने किस प्रकार तप ले लिया। मैं उसका पति हूँ, लक्ष्मण जैसा उसका देवर है, जनक जैसे पिता हैं, भामण्डल जैसा भाई है, लवण और अंकुश जैसे उसके दो यशस्वी बेटे हैं, दीर्घ आयुवाली अपराजिता जैसे उसकी सास है। यह वही धरती है, वही राज्य है, यही वह नगर है, यही घर है, यही वे अन्यान्य बन्धुजन हैं। क्या पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान इन सुन्दर छत्रोंको उसने सहसा ठुकरा दिया है। सीतादेवीने इस समय ऐसा साहस दिखाया है, जो बड़े-बड़े देवताओंके लिए असम्भव है। इसमें सन्देह नहीं कि उसका यश बहुत समय तक इस दुनियामें रहेगा। परन्तु इस समय प्रजानाशक लांछन लगानेवालोंकी मनोकामना पूरी हो। सीतादेवीके गुणसमूहसे मनोविनोद करनेवाले लक्ष्मण भी यह सोचकर हैरानीमें पड़ गये कि सीतादेवी इतनी उदाराशय निकलीं कि उन्होंने देवताओंकी भी विभूतिको ठुकरा दिया ॥१-११॥

[१२]

तो एत्तहेँ वि ताव पइ-पुत्त-मोह-चत्ता ।
तियसं-मुइ-णिन्दिया अइ-महन्त-सत्ता ॥१॥

जा पाउस-सिरि व्व सु-पओहर । आसि तियस-जुवइहिँ वि मणोहर ॥२॥
सा तवेण परिसोसिय जाणइ । णं दिवसयरें गिम्भें महा-णइ ॥३॥
दुप्परिणाम दूरें परिसेसिय । घण-मलोह-कद्दुएँण विहूसिय ॥४॥
परमागम-जुत्तिएँ किय-पारण । वसिकिय पञ्चेन्द्रिय-वर-वारण ॥५॥
रुहिर-मंस-परिवज्जिय-देही । जीविएँ जणहों जणिय-सन्देही ॥६॥
पायड-अत्थि-णिवह-सिर-जाली । फस्साइण सव्वङ्ग-कराली ॥७॥
घोरु वीरु तव-चरणु करेप्पिणु । हायणाइँ वासट्ठि गमेप्पिणु ॥८॥
दिण तेत्तीस समाहि लहेप्पिणु । थिय इन्दहों इन्दत्तण लेप्पिणु ॥९॥
तियसावासें गम्पि सोलहमएँ । वर-विमाणें सूरप्पह-णामएँ ॥१०॥
कञ्चण-सिहरि-सिहर-सङ्कासएँ । विविह-रयण-पह-किय-विमलासएँ ११

घत्ता

हरि-रामुज्जियउ अवरु वि जो दिक्ख लएसइ ।
सग्ग-मोक्ख-सुहइँ सो सव्वइँ स इँ भु ञ्जेसइ ॥१२॥

इय पोमचरिय-सेसे सयम्भुएवस्स कह वि उव्वरिए ।
तिहुयण-सयम्भु-रइए सीया-सण्णास-पव्वमिणं ॥
बन्दइ-आसिय-महकइ-सयम्भु-लहु-अङ्गजाय-विणिवद्धे ।
सिरि-पोमचरिय-सेसे पञ्चासीमो इमो सग्गो ॥

[१२] उधर पति और पुत्रसे विमुख, देवताओंके भी ऐश्वर्यको ठुकरा देनेवाली, अत्यन्त सत्त्वसे विभूषित सीतादेवी तपमें लीन हो गयीं। वह पावसशोभाकी भाँति सुपयोधरा (बादल और स्तन) थी। देव-सुन्दरियोंसे भी अधिक सुन्दर थी। वही साध्वी सीता तपसे ऐसे सूख गयी जैसे ग्रीष्मकालमें सूर्यने महानदीको सुखा दिया हो। खोटे भावोंको वह कोसों दूर छोड़ चुकी थी। अत्यन्त मैली कंचुकीसे वह शोभित थी। परमशास्त्रोंके अनुसार वह पारणा करती थी। पाँचों इन्द्रियोंरूपी हाथियोंको उसने अपने वशमें कर लिया था। उसके शरीरका जैसे रक्त और मांससे सम्बन्ध ही नहीं रह गया था। यहाँ तक कि लोगोंको उसके जीवनमें शंका होने लगी। शरीरके नाम पर हड्डियोंका ढाँचा और नसोंका जाल रह गया था। रूखी-सूखी उसकी चमड़ी थी और सब ओरसे भयावनी लगती थी। इस प्रकार घोर वीर तप साधते हुए उसने बासठ साल बिता दिये। फिर तैंतीस दिनोंकी समाधि लगाकर उसने इन्द्रका इन्द्रत्व पा लिया। सोलहवें स्वर्गमें जाकर वह सूर्यप्रभ नामक विशाल विमानमें उत्पन्न हुई। उसके शिखर स्वर्गगिरिके शिखरके समान थे। उसमें जड़ित नाना रत्नोंकी आभासे दिशाएँ आलोकित थीं। वासुदेव और उनकी पत्नीके सिवाय और भी जो दूसरे लोग दीक्षा ग्रहण करेंगे वे स्वर्ग और मोक्षके सुखोंको स्वयं भोगेंगे ॥१-१२॥

इस प्रकार महाकवि स्वयंभूदेव द्वारा अवशिष्ट पद्मचरितके शेषभागमें त्रिभुवन स्वयंभू द्वारा रचित 'सीता संन्यास और प्रव्रज्या' नामक प्रसंग समाप्त हुआ।

वंदइके आश्रित महाकवि स्वयंभूके छोटे पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू द्वारा रचित, शेष-भागमें यह पचासीवीं सन्धि समाप्त हुई।

[८६. छायासीमो संधि]

उवलद्धेण इन्दइत्तणेण सीय-पहुत्तणु किं वण्णिजइ ।
तिहि मि अणेँहिँ जं णिरुवमउ जइ पर तं जि तासु उवमिजइ ॥ध्रुव०

[१]

तो उत्तमङ्गेँ लाइय-करेण । पमणिउ गोत्तमु मगहेसरेण ॥१॥
'परमेसर णिरु-थिर-थोर-गत्तेँ । णिक्खन्तेँ सु-सत्तेँ कियन्तवत्तेँ ॥२॥
वोलीणएँ सासएँ सुह-णिहाणेँ । वइदेही-सण्णासण-विहाणेँ ॥३॥
कन्तुज्झिउ एवहिँ दणु-विमद्दु । कहि काइँ करेसइ रामचन्दु ॥४॥
किं लक्खणु काइँ समीर-तणउ । किं भामण्डलु किं जणउ कणउ ॥५॥
किं लवणु काइँ अङ्कुसु कुमारु । किं लङ्काहिवु सुग्गीउ तारु ॥६॥
किं पवणञ्जउ दहिमुहु महिन्दु । चन्दोयरि जम्ववु इन्दु कुन्दु ॥७॥
किं णलु णीलु वि सत्तुहणु अङ्गु । पिहुमइ सुसेणु अङ्गउ तरङ्गु ॥८॥
अट्ठ वि णारायण-तणय काइँ । अण्णु वि अद्धुट्ठ वि सुअ-सयाइँ ॥९॥
गउ गवउ चन्दकरु दुम्मुहो वि । अवरु वि किङ्करु जो वलहों को वि ॥१०॥

घत्ता

किं अवराइय विमल-मइ किं सुमित्त सुप्पह गुण-सारा ।
काइँ करेसइ दोण-सुय एँउ सयलु वि वज्जरहि भडारा' ॥११॥

[२]

इय वयणेँहिँ मुणि-जण-मणहरेण । वुच्चइ पच्छिम-जिण-गणहरेण ॥१॥
आयण्णहि सेणिय दिढ-मणाहँ । वहु-दिवसेँहिँ राहव-लक्खणाहँ ॥२॥
दस-दिसि-परिभमिय-महाजसाहँ । अमुणिय-पमाण-कय-साहसाहँ ॥३॥
सुरवर-जण-णयण-मणोहराहँ । सुसुमूरिय-अरिवर-पुरवराहँ ॥४॥

छियासीवीं संधि

[१] 'इन्द्रपद'की उपलब्धि होनेपर सीतादेवीने जो प्रभुता पायी उसका वर्णन कौन कर सकता है ? तीनों लोकोंमें जो भी अनुपम और अद्वितीय है, केवल उसीसे उसकी तुलना सम्भव है। यह सुनकर राजा श्रेणिकने अपने हाथ माथेसे लगाते हुए गणधर गौतमसे पूछा—"हे परमेश्वर, जब विशालकाय और महाशक्तिशाली पुत्र लवण और अंकुशने दीक्षा ले ली और स्वयं सीतादेवीने शाश्वत सुखका निधान संन्यास अंगीकार कर लिया तब दानवोंके संहारक राम क्या करेंगे ? लक्ष्मण क्या करेंगे ? पवनपुत्र क्या करेगा ? भामण्डल, कनक और जनक क्या करेंगे ? हनूमान, माहेन्द्र, चन्द्रोदर, जाम्बवान, इन्दु और कुन्द क्या करेंगे। नल, नील, शत्रुघ्न, अंग, पृथुमति, सुषेण, अंगद और तरंग क्या करेंगे, लक्ष्मणके आठों पुत्र क्या करेंगे और साढ़े तीन सौ पुत्र क्या करेंगे ? गय, गवाक्ष, चन्द्रकर, दुर्मुख तथा रामके दूसरे-दूसरे अनुचर क्या करेंगे। विमल-बुद्धि अपराजिता, सुमित्रा, गुणश्रेष्ठ सुप्रभा, द्रोणराजाकी बेटी विशल्या क्या करेगी, हे देव यह सब कृपया बताइए" ॥१-११॥

[२] यह वचन सुनकर मुनिजनोंके लिए सुन्दर अन्तिम गणधर गौतमने कहना प्रारम्भ किया, "हे श्रेणिक, सुनो। बताता हूँ। दृढ़ मनवाले राम और लक्ष्मणको जिनका यश दशों दिशाओंमें फैला हुआ है जिन्होंने साहसके अगणित काम गिनाये हैं, जो सुरवर और मनुष्योंके नेत्रोंके लिए आनन्ददायक हैं, जिन्होंने बड़े-बड़े शत्रुओंके नगरोंको नष्ट कर दिया है, कंचन

कञ्चणथाणहों कञ्चणरहेण । पट्ठविउ लेहु कञ्चण-रहेण ॥५॥
'महु घरिणि जयद्दह जगें पसिद्ध । सुर-सरि व सुवाणिय कुल-विसुद्ध॥६॥
दुइ दुहियउ ताहें वियक्खणाउ । अहिणव-जोव्वणउ स-लक्खणाउ ॥७॥
मन्दाइणि-णामें तहिं महन्त । लहु चन्दभाय पुणु रूववन्त ॥८॥

घत्ता

ताहँ सयम्वर-कारणेंण मिलिय सयल महि-गोयर खेयर ।
तुम्हहिं विणु सोहन्ति ण वि इन्द-पडिन्द-रहिय णं सुरवर ॥९॥

[३]

एँउ परियाणेंवि सहसत्ति तेहिं । सरहसेंहिं राम-चक्केसरेहिं ॥१॥
परिपेसिय अङ्कुस-लवण वे वि । हरि-णन्दण अट्ठ कुमार जे वि ॥२॥
णं पचलिय अट्ठ वि दिस-करिन्द । णं वसु णं अट्ठ वि विसहरिन्द ॥३॥
अण्णेक्क तणय साहण-समाण । अड्डाइय-सय-प्पमाण ॥४॥
अवर वि कुमार दिढ-कढिण-देह । अवरोप्परु परिवड्ढिय-सणेह ॥५॥
स-विमाण पयट्ट णहङ्गणेण । परिवेढिय-विज्जाहर-गणेण ॥६॥
णं जुग-खएँ हुअवहु चन्द-सूर । सणि-कणय-केउ-गुरु-राहु कूर ॥७॥
जोयन्त चउदिसु महि समत्त । तं कञ्चणथाणु खणेण पत्त ॥८॥

घत्ता

कल-चिन्ध-सिरिगिरि-णियरु दीसइ पुरें कुमार-सङ्घाएं ।
णं विवाह-मण्डवु विउलु णिम्मिउ लवणङ्कुसहँ विहाएं ॥९॥

[४]

तो णहें पेक्खेंवि आगमणु ताहँ । दससन्दण-णन्दण-णन्दणाहँ ॥१॥
वेयड्ढ-णिवासिय साणुराय । अहिमुह विज्जाहर सयल आय ॥२॥

स्थानके राजा कंचनरथने कंचनरथके साथ बहुत दिनोंके बाद एक लेख भेजा है कि मेरी पत्नी जयद्रथ जगमें अत्यधिक प्रसिद्ध है। देवलक्ष्मीके समान सुन्दर और विशुद्ध कुलकी है। उसकी दो सुन्दर कन्याएँ हैं जो लक्षणोंसे युक्त एवं अभिनव यौवनसे मण्डित हैं। उनमें बड़ीका नाम मन्दाकिनी है और छोटीका नाम चन्द्रभागा है जो अत्यन्त सुन्दरी हैं। उनके स्वयंवरके निमित्त समस्त धरतीके मनुष्य और विद्याधर इकट्ठे हुए हैं। परन्तु तुम्हारे बिना वे उसी प्रकार शोभित नहीं होते जिस प्रकार देवता इन्द्र और प्रतीन्द्रके बिना ॥१-५॥

[३] यह जानकर राम और लक्ष्मणने हर्षपूर्वक कुमार लवण और अंकुशको वहाँ भेज दिया। लक्ष्मणके आठ पुत्र भी वहाँ गये। वे ऐसे लगते थे मानो आठों दिशाओंसे दिग्गज चल पड़े हों या आठ वसु हों या आठ नागराज। और भी साधनों एवं सेनाओंके साथ साढ़े तीन सौ पुत्रोंको वहाँ भेज दिया। और भी दूसरे कुमार जिनके शरीर गठे हुए थे और एक दूसरेके प्रति बढ़-चढ़कर प्रेम दिखाना चाहते थे, विद्याधरों-के समूहसे घिरे हुए वे लोग विमानों द्वारा आकाशमार्गसे चल पड़े। मानो युगका विनाश होनेपर आग चन्द्र सूर्य शनि बुध शुक्र राहु और मंगल हों। चारों दिशाओंमें समस्त धरती-को देखते हुए वे एक क्षणमें कंचनस्थान पहुँच गये। छत्र चिह्न और पताकाओंका समूह नगरमें कुमारोंके समूहसे ऐसा लगता था, मानो लवण और अंकुशके विवाहके लिए विशाल विवाह मण्डप बनाया गया हो ॥१-९॥

[४] इस प्रकार दशरथपुत्र रामके पुत्र लवण और अंकुशका आगमन नभमें देखकर विजयार्ध पर्वतपर निवास करनेवाले सभी विद्याधर प्रेमके साथ अपना मुख नीचा किये हुए आये।

सहुँ तेहिँ मिलेँवि कञ्चणरहासु । गय समुह सयम्वर-मण्डवासु ॥३॥
जहिँ गाव णिविड बहु मञ्च बद्ध । णावइ सकइ-कय-कव्व-बन्ध ॥४॥
जहिँ णरवर पयडिय-बहु-वियार । खणेँ गलेँ बन्धन्ति मुयन्ति हार ॥५॥
खणेँ लेन्ति अणेयइँ भूसणाइँ । चउ दिसु जोयन्ति णियंसणाइँ ॥६॥
जहिँ सुव्वइ वीणा-वेणु-सद्दु । पडु-पडह-मुरव-रुञ्जा णिणद्दु ॥७॥
जहिँ मणहरु के वि गायन्ति गेउ । अइ सु-सरु सुहावउ विविह-भेउ ॥८॥
तहिँ ते कुमार सयल वि पइट्ठ । णाणा-मणिमय-मञ्चेँहिँ णिविट्ठ ॥९॥

घत्ता

णिय-रूवोहामिय-मयण सोलह-आहरणालङ्करिया ।
माणुस-वेसेँ धरणि-यलेँ अमर-कुमार णाइँ अवयरिया ॥१०॥

[५]

तो रूव-पसण्णउ वेण्णि वि कण्णउ गहिय-पसाहणउ ।
णिरुवम-सोहग्गउ करिणि-वलग्गउ जण-मण-विन्धणउ ॥१॥
मणि-विमल-कयासहोँ णियय-णिवासहोँ सुह-दिणेँ णिग्गयउ ।
णव-कमल-दलच्छिउ सरसइ-लच्छिउ णाइँ समागयउ ॥२॥
स-विसेसेँ मल्लिउ णं दुइ मल्लिउ मयणेँ मेल्लियउ ।
गुण-गण-पडिहत्थिउ वर-वण-लच्छिउ णं संचल्लियउ ॥३॥
थिय चउदु मि पासहिँ मञ्च-सहासहिँ वर जोयन्तियउ ।
मोहण-लय-मायउ एक्कहि आयउ णं मोहन्तियउ ॥४॥
णं सुकइ-णिवद्धउ कहउ रसड्ढउ मणेँ पइसन्तियउ ।
सोहग्ग-विसेसेँ सँ वयणेँ णं णासन्तियउ ॥५॥
अइ-विसम-विसाउड विसहर-दाढउ णं मारन्तियउ ।
णं रणेँ दुक्कन्तिउ मग्गण-पन्तिउ विरहु करन्तियउ ॥६॥

उन सबके साथ कंचनरथसे मिलकर वे लोग सीधे स्वयंवर मण्डप तक गये। उसमें सघन और मजबूत मंच बँधे हुए थे, जैसे संस्कृतमें निबद्ध काव्यबन्ध हों। वहाँपर मनुष्य तरह-तरहके विकार प्रकट कर रहे थे। कोई एक पलमें गलेमें हार बाँध लेता और कोई उसे छोड़ देता। कोई एक पलमें कितने ही आभूषण स्वीकार कर लेता। कोई चारों ओर अपने वस्त्रोंका प्रदर्शन कर रहा था। कहीं वीणाका सुन्दर शब्द सुन पड़ता था और कहीं पर घट-पटह, मुरव और रुञ्जाकी ध्वनि। वहाँपर कोई सुहावने स्वरमें अनेक भेद-प्रभेदोंके साथ सुन्दर गीत गा रहा था। वे सब कुमार जाकर उन मंचोंपर आसीन हो गये। वे ऐसे लगते थे, मानो अपने रूपसे कामदेवको भी तिरस्कृत करनेवाले सोलह प्रकारके अलंकारोंसे शोभित देवकुमार ही मनुष्य रूपमें धरतीपर अवतरित हुए हों ॥१–१०॥

[५] रूपसे खिली हुई दोनों कन्याएँ सजधजकर गयीं। अनुपम सौभाग्यसे भरपूर वे दोनों हथिनी-सी जान पड़ती थीं। दोनों ही जनमनको बेधनेमें समर्थ थीं। एक शुभ दिन, वे दोनों मणियोंसे रचित अपने आवाससे निकलीं, मानो नवकमलोंके समान आँखोंवाली सरस्वती और लक्ष्मी ही आ गयी हों। या मानो कामदेवने विचारपूर्वक दो सुन्दर बरछियाँ छोड़ दी हों। या गुणगणोंसे युक्त वनलक्ष्मी ही चल पड़ी हों। वरोंको देखती हुई वे समीपस्थ हजारों मंचोंके निकट ऐसी खड़ी हो गयीं, मानो सम्मोहनलताकी मादकताने आकर मोहित कर दिया हो, मानो हृदयमें प्रवेश करती हुई सुकवि द्वारा रचित कोई रसमय कथा हो, मानो सौभाग्यविशेषके व्यपदेशसे नष्ट करना चाह रही हो, मानो अत्यन्त विषम और नाशक, साँपकी डाढ़ हो, जो मारना चाहती हो! मानो युद्धमें आती हुई तीरोंकी कतार

णं गिम्में फुरन्तिउ दिणयर-दित्तिउ सन्तावन्तियउ ।
णं आउह-धारउ दिण्ण-पहारउ मुच्छावन्तियउ ॥७॥

घत्ता

अग्गएँ करिणि-समारुहिय धाइ सयलु दरिसावइ णरवर ।
णावइ चारु वसन्त-सिरि विहिं फुल्लन्धुअ-पन्तिहिं तरुवर ॥८॥

[६]

जोयवि भू-गोयर चत्त केव । खम-दप्पेंहिं कुगइ-गइ-मग्गु जेव ॥१॥
पुणु मेल्लिय विज्जाहर-णरिन्द । णं गङ्गा-जउणेंहिं बहु-गिरिन्द ॥२॥
अवरे वि परिहरेंवि गयाउ तेत्थु । ते सीया-णन्दण वे वि जेत्थु ॥३॥
जहिं छत्त-सण्ड-मण्डवु महन्तु । सुर-मणि-कर-णियरन्धार-वन्तु ॥४॥
रविकन्त-पहुज्जोइय-दियन्तु । अवरेंहि मि मणिहिं मह-सोह दिन्तु ॥५॥
पेक्खेंवि लवणङ्कुस तुरिउ सव्वु । गउ परिगलेवि चिरु रूव-गव्वु ॥६॥
जेट्ठोवरि पुणु मन्दाइणीएँ । परिघित्त माल गय-गामिणीएँ ॥७॥
अङ्कुसहों चन्दभायाएँ तेव । परिओसिय णहयलेँ सयल देव ॥८॥
किउ कलयलु तूरइँ आहयाइँ । विच्छायइँ जायइँ वर-सयाइँ ॥९॥
णं णिहि-सुक्कइँ वाइय-कुलाइँ । चिन्तन्ति गमण-हियचाउलाइँ ॥१०॥

घत्ता

'किं विणिमिन्दहुँ महि गयणु किं सायरेँ गिरि-विवरेँ पईसहुँ ।
धीसोहग्ग-भग्ग-रहिय जाहुँ तेत्थु जहिं अण्णेण ण दीसहुँ' ॥११॥

थी जो लोगोंको विरह (विरथ और वियुक्त) करना चाह रही हो, मानो ग्रीष्ममें चमकती हुई सूर्यदीप्ति हो जो सन्ताप पहुँचाना चाहती हो, मानो प्रहार करनेवाली शस्त्रकी धार हो जो मूर्छित कर देती है। आगे हथिनीपर बैठी हुई धाय सभी नरश्रेष्ठ उन दोनों को दिखा रही थी मानो भौंरोंकी कतारें वसन्त शोभाके लिए विशाल वृक्ष दिखा रहीं हो ॥१-८॥

[६] मनुष्योंको देखकर भी उन्होंने ऐसे छोड़ दिया, जैसे क्षमा और दयाशील लोग अगतिके मार्गको छोड़ देते हैं। फिर उन्होंने विद्याधर राजाओंको ऐसे छोड़ दिया जैसे गंगा और यमुना नदियाँ बड़े-बड़े पहाड़ोंको। और भी दूसरे-दूसरे राजाओंकी उपेक्षा करती हुई वे वहाँ पहुँचीं, जहाँपर सीतादेवीके दोनों पुत्र बैठे हुए थे। जहाँ छत्रसमूहसे शोभित विशाल मण्डप था, उसमें इन्द्रनीलमणियोंके समूहसे अँधेरा हो रहा था। दूसरी ओर सूर्यकान्त मणियोंसे आलोक बिखर रहा था। और भी दूसरे-दूसरे मणियोंसे उस मण्डपमें अनूठी शोभा हो रही थी। वहाँ लवण और अंकुशको देखकर सभी का अपना रूपगर्व काफ़ूर हो गया। उनमें से जेठे भाईके ऊपर गजगतिवाली मन्दाकिनीने अपनी माला डाल दी। और चन्द्रभागाने भी उसी प्रकार छोटे भाईके गलेमें माला पहना दी। यह देखकर आकाश-में सभी देवता प्रसन्न हो गये। उनमें कलकल होने लगी। नगाड़े बज उठे। इससे सैकड़ों वरोंके मुखका रंग फीका पड़ गया। मानो जानेकी हड़बड़ीसे आकुल निधिसे वंचित चोरोंका समूह हो। हताश वे सोच रहे थे कि हम धरती फाड़ें या आकाश चीरें। इन कन्याओंके सौभाग्यसे वंचित होकर कहाँ जाँय जहाँ मनुष्योंका अस्तित्व न हो ॥१-११॥

[७]

ताव दुण्णिवारारि-मद्दणा । भणेॅ विरुद्ध सोमित्ति-णन्दणा ॥१॥
तिसय-तीस-वीस-प्पमाणया । पलय-काल-रूवाणुमाणया ॥२॥
मुणेॅवि वाल विक्कम-गुरुक्कया । सयल अवर वर पासेॅ ढुक्कया ॥३॥
सण्णियं ढुअन्तेहिँ सेण्णयं । घण-उलं व णह-यलेॅ णिसण्णयं ॥४॥
फणि-उलं व अच्चन्त-कूरयं । दिण्ण-घोर-गम्भीर-तूरयं ॥५॥
समर-रस-दिढावद्ध-परियरं । पाउसम्बरं णं स-धणुहरं ॥६॥
रह-विमाण-हय-गय-णिरन्तरं । विविह-चिन्ध-छाइय-दियम्बरं ॥७॥
जाव वलइ किर भीसणाउहं । विहि मि राम-णन्दणहँ सम्मुहं ॥८॥

घत्ता

ताव तेहिँ अट्ठहिँ वि तहिँ लच्छीहर- महएवी-जाएँहिँ ।
धरिउ णियय-मायरेँहिँ सहुँ णं तइलोक्क-चक्कु दिस-णाएँहिँ ॥९॥

[८]

'अहों अहों भायरहों म करहों कोहु । मं वड्ढारहों रहु-कुलेॅ विरोहु ॥१॥
जो आय-दिणहों लग्गेॅवि सणेहु । सो वल-लक्खणहँ म खयहों णेहु ॥२॥
आयहँ पर कण्णहँ कारणेण । अवरोप्परु काइँ महा-रणेण ॥३॥
गुण-विणय-सयण-सम-णासणेण । तिहुअणेॅ धिक्कार-पगासणेण ॥४॥
कलहन्ति ए वि पर जेव राय । कु-पुरिस विण्णाण-कला-अणाय ॥५॥
तुम्हें हिँ पुणु सयलहुँ अइ समत्थ । गुणवन्त वियाणिय-अत्थसत्थ ॥६॥
कज्जिअइ अण्णु वि राहवासु । किह वयणु णिएसहुँ गम्पि तासु ॥७॥
सुट्ठु वि मय-मत्तउ मिलिय-भिङ्गु । किं पिय-करु परिचप्पइ मयङ्गु' ॥८॥

[७] इसी बीचमें दुर्निवार शत्रुओंके संहारक, लक्ष्मणके पुत्र अपने मनमें विरुद्ध हो उठे। प्रलयकालके रूपके समान तीन सौ पचास विक्रमसे भरे हुए देवताओंके साथ उन्हें बच्चा समझकर वे तथा दूसरे लोग वहाँ पहुँचे। उन दोनोंने भी अपनी सेना सजा ली, वह गर्जन मेघ कुलके समान आकाशमें ही सुनाई दे रहा था। नागकुलके समान अत्यन्त भयंकर, घोर और गम्भीर नगाड़े बजाये जा रहे थे। समरके लिए कमर कसे हुए योद्धा पावस मेघोंके समान धनुष धारण किये हुए थे। रथ विमान अश्व और गजोंकी उस सेनामें रेल-पेल मची हुई थी। विविध चिह्नों और पताकाओंसे दिशाएँ ढकें चुकी थीं। भीषण आयुध जब तक रामके पुत्रोंके सम्मुख मुड़ें या न मुड़ें, तब तक लक्ष्मीधर महादेवीसे उत्पन्न उन आठ कुमारोंने अपने भाइयोंके साथ उसे ऐसे पकड़ लिया, मानो दिग्नागोंने त्रिलोकचक्र पकड़ लिया हो ॥१-९॥

[८] तब लोगोंने कहा, अरे-अरे भाइयो, तुम क्रोध मत करो, और इस प्रकार रघुकुलमें विरोध मत बढ़ाओ। जन्म-दिनसे ही राम और लक्ष्मणमें स्नेहकी जो अटूट धारा बह रही है, उसे भंग मत करो। दूसरोंकी इन कन्याओंके लिए आपसमें महायुद्ध करना व्यर्थ है। इस युद्धमें गुण विनय स्वजन और क्षमाका विनाश होगा, तीनों लोक धिक्कारेंगे। इस प्रकार जो राजा लड़ते हैं, वास्तवमें वे कुपुरुष हैं और विज्ञान एवं कलासे अनवगत हैं। परन्तु आप सब समर्थ हैं, गुणवान् हैं और अर्थ एवं शास्त्रको समझते हैं। और फिर थोड़ी सी रामसे लज्जा रखनी चाहिए, वहाँ जाकर किस प्रकार उन्हें अपना मुख दिखायेंगे। ठीक है कि मतवाले हाथीकी सूँडपर खूब भौंरे भिन-भिना रहे हों, पर इसके लिए क्या वह अपनी सूँड़ चँपा

घत्ता

इय पिय-वयणेंहि अवरेंहि मि ते उवसामिय माण-समुण्णय ।
णं वर-गुरु-मन्तक्खरेंहि किय गइ-मुह-णिबद्ध वहु पण्णय ॥९॥

[९]

पुणु ते अवलोएँवि वार-वार । सहुँ कण्णहिं लवणङ्कुस-कुमार ॥१॥
बहु-वन्दिण-वन्देंहिं थुव्वमाण । चउ-दिस-जण-पोमाइज्जमाण ॥२॥
णिसुणेंवि गिज्जन्तइँ मङ्गलाइँ । तूरइँ गहिराइँ स-काहलाइँ ॥३॥
पेक्खेप्पिणु सिय-सम्पय-विहोउ । वर-आणवडिच्छउ सयलु लोउ ॥४॥
अप्पाणउ परिणिन्दन्ति केवँ । हरि दंसणें सुर तव-हीण जेवँ ॥५॥
'अम्हइँ तिखण्ड-महिवइहें पुत्त । लायण्ण-रूव-जोव्वण-णिरुत्त ॥६॥
बहु-गुण बहु-साहण बहु-सहाय । सु-पयाव अतुल-भुय-वल-सहाय ॥७
ण वि जाणहुँ हीणा गुणेण केण । एक्कहाँ वि ण घत्तिय माल जेण ॥८॥

घत्ता

अहवइ काइँ विसूरिएँण लब्भइ सयलु वि चिरु कय-पुण्णेंहिं ।
जीवहों मणेंण समिच्छिउ किं संपडइ किएँहिँ पइसुण्णेहिं ॥९॥

[१०]

वरि तुरिउ गम्पि तव-चरणु लेहुँ । जें सिद्धि-वहुअ-करयलु धरेहुँ' ॥१॥
एँउ चिन्तेंवि अवहत्थिय-मयासु । पुणु गय वलेवि लक्खणहों पासु ॥२
विण्णविउ णवेप्पिणु 'णिसुणि ताय । पज्जत्तउ विसय-सुहेहिं राय ॥३॥
अम्हइँ संसार-महासमुद्दें । दुट्ठट्ठ-कम्म-जलयर-रउद्दें ॥४॥

लेता है ? इन मीठे शब्दों, तथा दूसरी और बातोंसे महा मानी उन्हें लोगोंने इस प्रकार शान्त किया, मानो वह गुरुमन्त्रोंसे नागराजों के गति-मुखको कील दिया हो ॥१-६॥

[९] कन्याओंके साथ कुमार लवण और अंकुशको उन्होंने देखा। बहुत चारण भाटोंका समूह उनकी स्तुति कर रहा था, चारों दिशाओंमें उनका यशोगान गूँज रहा था। गाये जाते हुए मंगलों, गम्भीर तूर्यों और काहलोंको सुनकर, और उनकी श्री-सम्पदाके विक्षोभको देखकर सब लोग चाहने लगे कि वरको बुलाया जाय। अब वे अपनी निन्दा उसी प्रकार करने लगे, जिस प्रकार इन्द्रको देखकर हीन रूपवाले अपने-आपको हीन समझने लगते हैं। वे कह रहे थे, "हम लोगोंके पिता त्रिलोकके अधिपति हैं, निश्चय ही हम सौन्दर्य रूप और यौवनमें—किसीसे कम नहीं, हम भी गुणवान् और साधन-सम्पन्न हैं, हमारे भी बहुत-से भाई हैं, जो प्रतापी और अतुल भुजबलसे युक्त हैं। फिर भी हम नहीं जानते कि हममें ऐसा कौन सा गुण कम है कि जिससे, एक भी लड़कीने गलेमें वरमाला नहीं डाली। अथवा व्यर्थ दुःख करनेसे क्या लाभ ? संसारमें जो कुछ मिलता है—वह पूर्वजन्मके पुण्यके प्रतापसे। जीवकी मनो-वांछित बात दुर्जनोंके कारण क्या नष्ट हो जाती है ॥१-९॥

[१०] इसलिए अच्छा यही है कि हम तुरन्त जाकर तपस्या अंगीकार कर लें, जिससे हम सिद्धिवधूका हाथ पकड़ सकेंगे। अपने मनमें यह सब सोचकर और अभय होकर, वे मुड़कर लक्ष्मणके पास गये। उन्होंने प्रणामपूर्वक निवेदन किया, "हे तात, सुनिए, विषय सुख बहुत भोग लिये। हमने इस भयंकर घोर संसार-समुद्रमें काफी घूम-फिरकर धर्मसे विमुख होनेके कारण बड़ी कठिनाईसे मनुष्य जन्म प्राप्त किया है। यह संसार

दुग्गइ-गाम-खारापार-णीरेँ । मय-काम-कोह-इन्दिय-गहीरेँ ॥५॥
मिच्छत्त-गरुय-वायन्त-वाएँ । जर-मरण-जाइ-वेला-णिहाएँ ॥६॥
वर-त्रिविह-वाहि-कल्लोल-जुत्तेँ । परिभमणाणन्तावत्तइत्तेँ ॥७॥
मय-माण-विउल-पायाल-विवरेँ । अलियागम-सयल-कुदीव-णियरेँ ॥८॥
मह-मोहुम्मइ-चल-फेण-सोहेँ । सविओय-सोय-वडवाणलोहेँ ॥९॥
परिभमिय सुइरु अ-लहन्त-धम्मु । कह कह वि लद्धु पुणु मणुअ-जम्मु १०

घत्ता

एत्रहि एण कलेवरेँण जहिं कहि वि णत्थि जम-डामरु ।
जिण-पावज्ज-तरण्डएँण जाहुँ देसु जहिं जणु अजरामरु' ॥११॥

[११]

सुय-वयणु सुणेप्पिणु लक्खणेण । अवलोएँवि पुणु पुणु तक्खणेण ॥१॥
पच्चुम्वेँवि मत्थएँ वार-वार । गग्गर-गिरेण पभणिय कुमार ॥२॥
'इह भिय इह सम्पय एउ रज्जु । एँहु सुर-तिय-समु पिय-यणु मणोज्जु ३
कुल-जायउ आयउ मायरीउ । आयउ सव्वह मि महत्तरीउ ॥४॥
पामाय एय अइ-सोहमाण । कञ्चण-गिरिवर-सिहराणुमाण ॥५॥
आयइँ अवराइँ वि परिहरेवि । किह वणेँ णिवसेसहुँ दिक्ख लेवि ॥६
हउँ तुम्ह णेह-बन्धणेँ णिउत्तु । किं परिसेसेँवि सव्वहु मि जुत्तु' ॥७॥
पडिवुत्तु कुमारेँहिं 'काइँ एण । बहुएण णिरत्थेँ जम्पिएण ॥८॥
मोक्खल्लि ताय मा होउ विग्घु । सिज्झउ तव-चरण-णिहाणु सिग्घु' ९

घत्ता

एम भणेप्पिणु स-रहसेँहिं गम्पिणु महिन्दोवय(?)णन्दण-वणेँ ।
पासेँ महब्बल-मुणिवरहँ लइय दिक्ख णीसेसहुँ तक्खणेँ ॥१०॥

रूपी समुद्र आठकर्मरूपी जलचरोंसे भयंकर है। इसमें दुर्गतियों-का सीमाहीन खारा जल भरा हुआ है। यह भय, काम, क्रोध और इन्द्रियोंसे गम्भीर है। मिथ्या वादोंके भयंकर तूफानसे आन्दोलित है। जन्म, मृत्यु और जातियोंके किनारोंसे घिरा हुआ है। तरह-तरहकी भयावह व्याधियोंकी तरंगोंसे आकुल-व्याकुल है, आवागमनके सैकड़ों आवर्तोंसे यह भरपूर है। मद मान जैसे बड़े-बड़े पातालगामी छेद इसमें है। खोटे शास्त्र रूपी द्वीपोंके समूह इसमें हैं। महामोह रूपी उत्कट और चंचल फेन इसमें लबालब भरा हुआ है। वियोग और शोकका दावानल इसमें घूँ-घूँ कर जल रहा है। ऐसे अनन्त संसार समुद्रमें मनुष्य जन्म हमने बड़ी कठिनाईसे पाया है। इस समय अब इस मनुष्य शरीरसे हम जिन दीक्षा रूपी नावसे उस अजर-अमर देशको जायँगे जहाँ पर यमकी छाया नहीं पड़ती ॥१-११॥

[१२] पुत्रोंके वचन सुनकर लक्ष्मणने बार-बार उनकी ओर देखा, बार-बार उनका मस्तक चूमा और गद्‌गदस्वरमें कहा, "यह श्री, यह सम्पत्ति, यह राज्य, ये देवांगनाके समान सुन्दर स्त्रियाँ, सुन्दर प्रियजन, अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई तुम्हारी ये मातायें, ये सब महान्‌से महान् हैं। सुमेरु पर्वतके स्वर्ण-शिखरोंके समान, सुहावना यह प्रासाद। यह सब छोड़कर तुम दीक्षा लेकर वनमें कैसे रहोगे? मैं स्वयं तुम्हारे स्नेह सूत्र में बँधा हुआ हूँ। क्या यह सब छोड़ देना ठीक है।" इसपर कुमारोंने प्रति उत्तरमें निवेदन किया, "इस प्रकारकी बहुत सी व्यर्थ बातोंके कहनेसे क्या? हे तात छोड़ो, विघ्न मत बनो। यह कहकर, सबके सब कुमारोंने वेगपूर्वक महेन्द्रध्वज नन्दन वनके लिए कूच किया और वहाँ जाकर उन सबने महाबल नामक महामुनिके पास दीक्षा ले ली ॥१-१०॥

[१२]

एत्तहें वि ताम भामण्डलासु । विहवोहामिय-आखण्डलासु ॥१॥
रहणेउर-पुर-परमेसरासु । णिण्णासिय-सत्तु-णरेसरासु ॥२॥
कामिणि-मुह-पङ्कय-महुअरासु । वर-भोगासत्तहों मणहरासु ॥३॥
मन्दर-णियम्ब-कीलण-मणासु । णिविसु वि अ-मुक्कु मृद्धङ्गणासु ॥४॥
सिरिमालिणि-मज्झालङ्कियासु । मयगलहों व सुट्टु-मयङ्कियासु ॥५॥
आहरण-विहूसिय-अवयवासु । अच्छन्तहों सुर-कीलाएँ तासु ॥६॥
एक्कहिँ दिणें सिहि-उल-कय-वमालु । सम्पाइउ वासारत्तु कालु ॥७॥
कसणुज्जल-णव-घण-पिहिय-गयणु । पयडिय-सुरचाउ अदिट्ठ-तवणु ॥८॥
अणवरय-थोर-खर-णीर-धारु । चल-विज्जुल-कय-कडुहन्धयारु ॥९॥

घत्ता

तेत्थु कालें भामण्डलहों मन्दिर-सत्तम-भूमिहें थक्कहों ।
मत्थएँ पडिय तडत्ति तडि सेल-सिहरें णं पहरणु सक्कहों ॥१०॥

[१३]

जं उप्परमङ्गें णिवडिउ णिहाउ । तं पाणहिँ मेल्लिउ जणय-जाउ ॥१॥
गय तुरिय राम-लक्खणहों वत्त । 'भामण्डल-कह कालहों समत्त' ॥२॥
तेहि मि पभणिउ 'रण-सय-समत्थु । अम्हहँ णिवडिउ दाहिणउ हत्थु' ॥३॥
लवणङ्कुस-सत्तुहणेण सहिय । णिसुणेविणु सोय-ग्गहेँण गहिय ॥४॥
'हा माम माम गुण-रयण-खाणि । कहिँ गउ सुपुरिस गरुआहिमाणि ॥५॥

[१२] यहाँपर भामण्डल भी निर्द्वन्द्व राज्य कर रहा था। वैभवमें उसने इन्द्रको मात दे दी थी। वह रथनूपुर नगरका स्वामी था। उसने समस्त शत्रुराजाओंको जड़से उखाड़ दिया था। कामिनियोंके मुख-कमलोंके लिए वह मधुकर था। एक से एक उत्तम भोग भोगनेमें वह डूबा रहता। सुमेरु पर्वतकी सुन्दर घाटियोंमें वह विचरण किया करता, मुग्ध अंगनाओंको वह पल भरके लिए भी अपने पाशसे मुक्त नहीं करता। उसकी पत्नी श्रीमालिनी हमेशा उसके अंगमें रहती, मदमाते गजकी भाँति उन्मत्त रहता, एक-एक अंग आभूषणोंसे विभूषित रहता। इस प्रकार वह देवताओंकी क्रीड़ाका आनन्द ले रहा था, कि एक दिन मयूरकुलमें कोलाहल उत्पन्न कर देनेवाली वर्षा ऋतु आ पहुँची। आकाश काले, चिकने, सघन मेघोंसे ढँक गया। सूर्य ओझल हो उठा। इन्द्रधनुषकी रंगीनी फैल गयी। गहरी और तीव्र जलधारा अनवरत रूपसे बरस रही थी। चंचल बिजलियों से दिशाओंका अन्धकार दूना हो उठता था। उस समय भामण्डल अपने प्रासादकी सातवीं अटारीपर बैठा हुआ था। अचानक उसके मस्तकपर तड़ककर ऐसी बिजली गिरी मानो शैल शिखरपर इन्द्रका वज्र आ पड़ा हो ॥१-१०॥

[१३] मस्तक पर बिजली गिरनेसे जनकपुत्र भामंडलके प्राण-पखेरू उड़ गये। यह खबर तुरन्त राम-लक्ष्मणके पास पहुँची। किसीने जाकर कहा, "भामंडलको महाकालने समाप्त कर दिया।" यह सुनकर उन्होंने कहा, "लो सैकड़ों युद्धोंमें समर्थ हमारा दायाँ हाथ ही नष्ट हो गया है।" शत्रुघ्न सहित, लवण और अंकुश यह सुनकर शोकसे अभिभूत हो उठे। उन्होंने कहा, "गुण रत्नोंकी खान, हे मामा, तुम कहाँ चले गये, महाअभिमानी, हमें छोड़कर कहाँ चल दिये। इस समय

पुसिय-काकहों सिहि-महुर-वाय। हा मुय अम्हारिय अज्जु माय' ॥६॥
णिसुणाविउ जणउ वि तुरिउ आउ। लहु-मायरेण कणएं सहाउ ॥७॥
तहों पुणु पुच्छिज्जइ दुक्खु काइँ। तो वण्णिज्जइ जइ बहु-मुहाइँ ॥८॥

घत्ता

मे(?मि)लेँवि असेसहिँ बन्धवेँहि सोयामणि-संचूरिय-कायहों।
सहसा कोयाचारु किउ दिण्णु सलिलु भामण्डल-रायहों ॥९॥

[१४]

तो बहु-दिवसेँहि मारुवि स-जाउ। स-विमाणु कण्णकुण्डल-पुराउ ॥१॥
परियरियउ बहु-खेयर-जणेण। अन्तेउर-सहिउ णहङ्गणेण ॥२॥
गउ वन्दण-हत्तिएँ सुरेउ मेरु। णं जक्खिणि-जक्खेँहिँ सहुँ कुवेरु ॥३॥
पेक्खन्तु देस-देसन्तराइँ। वेयड्ढ-उभय-सेढिहि पुराइँ ॥४॥
कुल-गिरि-सिर-सरवर-जिणवराइँ। वाविउ कप्पद्दुम-लयहराइँ ॥५॥
गुह-कूडइँ खेत्तइँ काणणाइँ। विण्णि वि कुरु-भूमिउ उववणाइँ ॥६॥
सव्वइँ पिय-घरिणिहिँ दक्खवन्तु। विहसन्तु खणे खणेँ पुणु रमन्तु ॥७॥
ऊरु-रहसुल्लसिय-समत्त-गत्तु। मणहर-गिरि-मन्दर-सिहरु पत्तु ॥८॥

घत्ता

पवर-विमाणहों ओयरेँवि करेँवि पयाहिण तुरिय स-कन्तेँ।
णिम्मल-भत्तिएँ जिण-भवणेँ थुइ पारम्भिय पुणु हणुवन्तेँ ॥९॥

[१५]

'जय जय जिणवरिन्द धरणिन्द-णरिन्द-सुरिन्द-वन्दिया
जय जय चन्द-खन्द-वर-विन्तर-बहु-विन्दाहिणन्दिया ॥१॥
जय जय बम्म-सम्भु-मण-भञ्जण-मयरद्धय-विणासणा

तुम आकर मयूर जैसे मधुर बोल सुनाओ, हा, आज तो हम लोगोंको माँ भी नहीं रहीं। यह बात जनकको भी सुना दो, और अपने छोटे भाई कनकके साथ आओ। उसके दुःखोंके बारेमें क्या पूछना, यदि अनेक मुख हों तभी उनका वर्णन किया जा सकता है। शेष सब बंधु-बांधवोंने मिलकर बिजलीसे ध्वस्त शरीर भामंडलका लोक कर्म किया, और जलदान दिया ॥१-९॥

[१४] बहुत दिनोंके बाद हनुमान् भी अपने पुत्रके साथ विमानमें बैठकर कर्णकुंडल नगरके लिए गया। बहुत-से विद्याधरोंसे वह घिरा हुआ था, अन्तःपुर भी उसके साथ था। वह तुरन्त वंदनाभक्ति करनेके लिए मेरु पर्वत पर इस प्रकार गया, मानो कुबेर ही यक्ष और यक्षिणियोंके साथ जा रहा हो। देश-देशान्तर एव विजयार्ध पर्वतकी दोनों श्रेणियों-को देखता-भालता हुआ वह चला जा रहा था। मार्गमें उसने कुलपर्वतकी शोभा जिनवर, वापिकाएँ, कल्पद्रुम, लतागृह, गुहा-कूट, क्षेत्र, कानन, दोनों कुरुभूमियाँ और उपवन ये सब बातें कभी वह अपनी प्रियपत्नीको बताता, और कभी एक क्षणमें हँसकर रमण करने लगता। प्रचण्ड वेगसे उसका शरीर हिल-डुल रहा था। फिर भी मंदराचलकी सुन्दर चोटी पर वह पहुँच ही गया। हनुमान् अपने महान विमानसे उतर पड़ा और पत्नी सहित तुरन्त प्रदक्षिणा की और तब निर्मल भक्तिसे जिनमंदिरमें भगवान्‌की स्तुति प्रारम्भ की ॥१-९॥

[१५] "हे जिनवरोंके इन्द्र, आपकी जय हो, धरणेन्द्र, नरेन्द्र और देवेन्द्र, आपकी वन्दना करते हैं, चन्द्र, कार्तिकेय, उत्तम व्यन्तर देव और दूसरे समूहोंसे अभिनन्दित, आपकी जय हो, ब्रह्मा और स्वयंभूके मनका भंजन करनेवाले, और कामदेवका

जय जय सयल-समग्ग-दुब्भेय-पयासिय-चारु-सासणा ॥२॥
जय जय सुट्ठु-पुट्ठ-दुट्ठट्ठ-कम्म-दिढ-बन्ध-तोडणा
जय जय कोह-लोह-अण्णाण-माण-दुम-पन्ति-मोडणा ॥३॥
जय जय भव्व-जीव संसार-समुद्दहोँ तुरिउ तारणा
जय जय हय-तिसल्ल-जय जाइ-जरा-मरणहुँ निवारणा ॥४॥
जय जय सयल-विमल-केवल-णाणुज्जल-दिव्व-लोयणा
जय जय भव-भवन्तरावज्जिय-दुरिय-मलोह-चोयणा ॥५॥
जय जय तिजय-कमल-वय-दय-णय-णिरुवम-गुण-गणालया
जय जय विसय-विराय जय जय दस-विह-धम्माणुवालया ॥६॥
तुहुँ सव्वण्हु सव्व-णिरवेक्खु णिरञ्जणु णिक्कलो परो
तुहुँ णिरवयवु सुहुमु परमप्पउ परमु लहु परंपरो ॥७॥
तुहुँ णिल्लेउ अ-गुरु परमाणुउ अक्खउ वीयरायओ
तुहुँ गइ मइ जणेरु सस मायरि मायरि सुहि सहायओ' ॥८॥

घत्ता

एवं विविह-थोत्तेँहिं थुणेँवि [पुणु] पुणु जिणवरु पुज्जेँवि अञ्चेँवि ।
पवण-पुत्तु पल्लट्टु णहेँ मन्दर-गिरि-सिहरइँ परिअञ्चेँवि ॥९॥

[१६]

तहोँ हणुवहोँ णयणाणन्दणासु । जिण-वन्दण-अणुराइय-मणासु ॥१॥
णिय-लीलएँ एन्तहोँ भरह-खेत्तु । परिउक्कि दिवसु अत्थमिउ मित्तु ॥२॥
अणुरत्त सञ्झ णं वेस आय । णं रक्खसि रत्तारत्त जाय ॥३॥
बहलन्धयार पुणु ढुक्क राइ । मसि-खप्पर विहिउ समत्थ(?)णाइँ ॥४

नाश करनेवाले, आपकी जय हो, दुर्भेद्य सुन्दर शासनको समग्र रूपसे प्रकाशित करनेवाले आपकी जय हो। अच्छे खासे मजबूत पुष्ट आठ कर्मोंके बन्धनको तोड़नेवाले आपकी जय हो, क्रोध, लोभ, अज्ञान, मान रूपी वृक्षोंकी कतारको मोड़ देने-वाले आपकी जय हो, भव्य जीवोंको संसार समुद्र तुरन्त तारनेवाले आपकी जय हो, तीन शल्यों और जन्म, जरा और मृत्युको नष्ट करनेवाले आपकी जय हो, सब ओरसे पवित्र, विमल केवल ज्ञानसे उज्ज्वल दिव्य लोचनोंवाले, आपकी जय हो। जन्मान्तरोंसे शून्य, और पापसमूहका नाश करनेवाले आपकी जय हो। त्रिलोककी लक्ष्मी, व्रत और दयाको मार्ग दिखानेवाले, अनुपम गुणोंसे युक्त, आपकी जय हो, विषयोंसे हीन, आपकी जय हो, दशविध धर्मोंके अनुपालक आपकी जय हो; तुम सर्वज्ञ हो, सबसे निरपेक्ष हो, निरंजन, निष्फल और महान् हो! तुम अवयवोंसे हीन अत्यन्त सूक्ष्म परम पदमें स्थित, अत्यन्त हलके और सर्वोत्कृष्ट हो। तुम निर्लेप अगुरु परमाणु तुल्य, अक्षय और वीतराग हो। तुम्ही गीत हो, तुम्हीं मति हो, तुम्हीं पिता हो, तुम्हीं बहन और माँ हो, भाई, सज्जन और सहायक भी तुम्हीं हो। इस प्रकार तरह-तरहके स्तोत्रोंसे जिनेन्द्र भगवान्की स्तुति, पूजा और अर्चा कर, और सुमेरु पर्वतकी चोटियोंकी परिक्रमा कर हनुमान् आकाशमार्ग-से लौट आया ॥१-९॥

[१६] सचमुच हनुमान् नेत्रोंके लिए आनन्ददायक था, और उसका मन जिनेन्द्र भगवान्की वन्दनाके अनुरागसे भरा हुआ था। जब वह क्रीड़ापूर्वक भरत क्षेत्रको लौट रहा था तो दिन ढल गया और सूरज डूब गया। लाल-लाल संध्या ऐसी आयी जैसे वेश्या हो या रक्तसे रंजित राक्षसी हो, अन्धकार अत्यधिक

तहिँ काळेँ हणुउ तणु-पह-णियरु । सुरदुन्दुहि-सेळेँ स-सेण्णु थक्कु ॥५॥
ओलइ कसणुज्जलु जाव गयणु । ससि-विरहिउ णिद्दीवउ व भवणु ॥६॥
तहिं ताव णियच्छिय णिरु गुरुक्क । णइयकहोँ पडन्ति समुज्जलुक्क ॥७॥
सव्वहोँ वि जणहोँ सज्झसु करन्ति । णं विज्जुल-छेह परिप्फुरन्ति ॥८॥
गह-तारा-रिक्खेँहिँ पह हरन्ति । पळयाणळ-जाळहेँ अणुहरन्ति ॥९॥
सा थोवन्तरेँ अ-मुणिय-पमाण । अत्थक्कए णिएँवि विळीयमाण ॥१०॥

घत्ता

चिन्तिउ णिय-मणेँ सुन्दरेँण 'धिद्धिगत्थु संसार-णिवासु ।
तं तिळ-मित्तु वि किं पि ण वि जासु ण दीसइ भुवणेँ विणासु ॥११॥

[१७]

दिवसेँहिँ मण-मूढहुँ आरिसाहुँ । एह जेँ अवत्थ अम्हारिसाहुँ ॥१॥
लिहक्कन्तहुँ गिरिवर-कन्दरे वि । मअूसहुँ असिवर-पञरे वि ॥२॥
चउ-दिसहि भवन्तहुँ अम्बरे वि । लुक्कन्तहुँ सायरेँ मन्दरे वि ॥३॥
वाएँहि अवरेँहिँ ण मुअइ मिच्चु । तो वरि पर-लोयहोँ दिण्णु चित्तु ॥४॥
जोव्वणु वर-कुअर-कण्ण-चवलु । जीविउ तणग्ग-जळ-बिन्दु-तरलु ॥५॥
सम्पय दप्पण-छाया-समाण । सिय मत्त-इन्थ-दीव-सिहाणुमाण ॥६॥
वरयम्मय-छाहि-सच्छाउ अत्थु । तिण-अग्गिय-जळण-समु सयण-सत्थु ॥७॥
तुस-मुट्ठि व णिरु णीसारु देहु । जळ-रेह व दिट्ठ-पणट्ठु णेहु ॥८॥

फैल गया, मानो काला खप्पर ही रख दिया गया हो। थोड़ासा रास्ता और पार करनेके लिए हनुमान अपनी सेनाके साथ सुरदुन्दुभि पर्वत पर जाकर ठहर गया। बैठे बैठे वह काले उजले आकाशको देखने लगा। इतनेमें चन्द्रमासे शून्य सारा विश्व जैसे सो गया। थोड़े ही समयमें उसने देखा कि चमकता हुआ एक भारी तारा आकाशसे टूटकर गिरा है। उससे सब लोगोंकी आँखें चौंधिया गयीं मानो बिजलीकी रेखाएँ ही चमक उठी हों। ग्रह, तारा और नक्षत्रोंके पथको साफ करती हुई वह ऐसी लगी मानो मलयानिलकी ज्वाला हो। थोड़ी ही देरमें अकूत आकारवाला वह तारा शीघ्र ही शान्त हो गया। यह देखकर सुन्दर हनुमान अपने मनमें सोचने लगे कि संसारमें इस प्रकार ठहरना सचमुच धिक्कारकी बात है। दुनियामें तिल भर ऐसी चीज नहीं है जिसका विनाश न होता हो ॥१-११॥

[१७] इतने दिनोंसे सचमुच हम मनके मूढ़ हैं, और हैं आलसी। तभी हम लोगोंकी हालत ऐसी है। चाहे हम बड़े-बड़े पहाड़ोंकी गुफाओंमें छिपें, तलवारोंसे रक्षित पिटारीमें बन्द हों, चाहे आकाश में चारों दिशाओंमें घूमते फिरें, और चाहे समुद्र और पहाड़ोंमें छिपें, इन सब उपायोंके बाद भी मौत पीछा नहीं छोड़ती। इससे अच्छा यही है कि हम परलोकमें चित्त लगायें। यौवन महागजके कानोंके समान चंचल है। जीवन तिनकोंकी नोकपर स्थित जलबिंदुके समान तरल है। वैभव दर्पणकी छायाकी भाँति अस्थिर है। श्री हवासे आहत दीपशिखाकी भाँति है। अर्थ (धन पैसा) शरदकालीन मेघों-की छायाकी भाँति अस्थिर है। स्वजन समूह तिनकोंकी अग्नि ज्वालाके समान है। यह शरीर भूसेकी मुट्ठीके समान सारहीन

घत्ता

एउ जाणन्तु वि पेक्खु किह अच्छमि छाइउ मोहण-जालेँ ।
इय गिरिवरेँ सूरुग्गमणेँ कल्लेँ जि दिक्ख लेमि किं कालेँ' ॥९॥

[१८]

चिन्तन्तहोँ हियवएँ तासु एव । गय रयणि कमेण कु-बुद्धि जेव ॥१॥
उग्गमिउ दिवायरु णहेँ विहाइ । पावज्ज-णिहालउ आउ णाइँ ॥२॥
आउच्छेँवि पिय-महिला-णिहाउ । सन्ताणेँ ठवेवि णियङ्गजाउ ॥३॥
णीसरेँवि विमाणहोँ अणिल-पुत्तु । णर-जाणु चडिउ मणि-गण-णिउत्तु ॥४॥
गउ णरवर-सहिउ जिणिन्द-भवणु । चारण-रिसि लक्खिउ धम्मरयणु ॥५॥
परियञ्चेँवि जिण-वन्दण करेवि । पुणु दु-विहु परिग्गहु परिहरेवि ॥६॥
पण्णासहिँ सत्त-सएँहिँ सहाउ । खयरहुँ दिक्खङ्किउ साणुराउ ॥७॥
बन्धुमइहेँ पासेँ सु-पउमराय । दिक्खङ्किय पहु-सुग्गीव-जाय ॥८॥
साणङ्गकुसुम तिह खरहोँ धीय । तिह सिरिमालिणि णल-सुय विणीय ९
तिह लङ्कासुन्दरि गुणहुँ रासि । जा परिणिय कङ्कउरिहिँ आसि ॥१०
अवरउ वि मणोहर तियउ ताव । णिक्खन्तउ अट्ठ सहास जाव ॥११॥

घत्ता

इय एक्केक्क पहाणियउ सिरिसइलहोँ अइ-पाण-पियारिउ ।
अण्णउ पुणु किं जाणियउ जाउ तेत्थु पव्वइयउ णारिउ ॥१२॥

[१९]

वत्त सुणेँवि रोवइ महु-अञ्जण । 'हा हणुवन्त राम-मण-रञ्जण ॥१॥
हा हा उहय-वंस-संवड्ढण । हा वरुणाहिव-सुय-सय-मद्दण ॥२॥
हा महिन्द-आहिन्दि-परायण । हा हा आसाली-विणिवायण ॥३॥

है। जलरेखाकी भाँति प्रेम देखते ही देखते नष्ट हो जाता है। यह जानकर भी देखो मोहजालमें मैं कैसा फँसा हुआ हूँ। मैं कल ही सूर्योदय होनेपर इस पहाड़ पर दीक्षा ग्रहण करूँगा ॥१-२॥

[१८] हृदयमें इस प्रकार सोचते-सोचते रात कुबुद्धिके समान बीत गयी। ऊगा हुआ सूर्य आकाशमें ऐसा शोभित हो रहा था, मानो वह हनुमानकी दीक्षा-विधि देखनेके लिए आया हो। उसने अपनी प्रिय पत्नियोंसे पूछा और परम्परामें अपने पुत्रको नियुक्त किया। पवनपुत्र अपने विमानसे निकल कर मणियोंसे जड़ित एक शिविकामें बैठ गया। श्रेष्ठ मनुष्यों-के साथ जिनमन्दिरके लिए गया। वहाँ उसने धर्मरत्न चारण-ऋषिके दर्शन किये। पहले प्रदक्षिणा, और तब जिनवंदना कर उसने दो प्रकारका परिग्रह छोड़ दिया। सातसौ पचास विद्या-धरोंके साथ उसने प्रेमपूर्वक दीक्षा ग्रहण की। इसी प्रकार बन्धुमतिके पास जाकर सुग्रीव राजाके पुत्र सुपद्म राजाने दीक्षा ग्रहण कर ली। इसी प्रकार, खरकी बेटी अनंगकुसुम, नलकी विनीत पुत्री श्रीमालिनी, गुणोंकी राशि लंकासुन्दरी, (कि जिसका पाणिग्रहण उसने लंकापुरीमें किया था) और भी दूसरी-दूसरी आठ हजार सुन्दरियोंने दीक्षा ग्रहण कर ली। जब हनुमानकी एकसे-एक प्राणोंसे प्यारी प्रमुख स्त्रियाँ दीक्षा ले बैठीं, तो फिर उन सबको कौन जान सकता है जो उस अवसर पर संसारसे विरक्त हुई ॥१-१२॥

[१९] यह खबर पाकर पवन और अंजना रोने लगे "हे रामका मनोरंजन करनेवाले, हे उभयवंशोंको बढ़ावा देनेवाले, हे वरुणके सौ सौ पुत्रोंको बाँधनेवाले, हे महेन्द्र और माहेन्द्र

हा हा वज्जाउह-दरिसिय-वह । लङ्कासुन्दरि-किय-पाणिग्गह ॥४॥
हा गिव्वाणरवण-वण-चूरण । अक्खकुमार-सवल-मुसुमूरण ॥५॥
हा घणवाहण-रण-ओसारण । हा विज्जा-लङ्गूल-पहारण ॥६॥
हा हा णाग-पास-बहु-तोडण । हा हा रावण-मन्दिर-मोडण ॥७॥
हा हा लङ्का-पउलि-णिलाडण । हा हा वज्जोयर-दलवट्टण ॥८॥
हा लक्खण-विसल्ल-मेलावण । सय-वारउ जूराविय-रावण ॥९॥
अम्हहुँ विहि मि पुत्त ण कहन्तउ । किह एक्कल्लउ जि णिक्खन्तउ' ॥१०॥
एव भणेवि सुय-सोयब्भइयइँ । जिणहरु गम्पि ताइँ पव्वइयइँ ॥११॥

घत्ता

सो वि मयरद्धउ वीसमउ मारुइ धोर-वीर-तव-तत्तउ ।
बहु-दिवसेँहिँ केवलु लहेँवि जेत्थु सयम्भु-देउ तहिँ पत्तउ ॥१२॥

कइरायस्स विजयसेसियस्स वित्थारिओ जसो भुवणे ।
तिहुयण-सयम्भुणा पोमचरिय-सेसेण णिस्सेसो ॥
इय पोमचरिय-सेसे सयम्भुएवस्स कह वि उव्वरिए ।
तिहुयण-सयम्भु-रइए मारुइ-णिव्वाण-पव्वमिणं ॥
वन्दइ-आसिय-तिहुयण-सयम्भु-परिरइय-रामचरियस्स ।
सेसम्मि जग-पसिद्धे कापासीमो इमो सग्गो ॥

में तत्पर, हे आशालीविद्याका पतन करनेवाले, हे वज्रायुधके वधको करनेवाले, हे लंकासुन्दरीसे पाणिग्रहण करनेवाले, हे देवताओंके नन्दनवनको उजाड़नेवाले, हा! अक्षयकुमार और सबलको चूर चूर करनेवाले, हे मेघवाहनको युद्धसे ढकेल देनेवाले, हे विद्या और पूँछसे प्रहार करनेवाले, हे नागपाशको छिन्न-भिन्न करनेवाले, हे रावणके मन्दिरको मोड़नेवाले, हे लंकाके कुलोंको नष्ट करनेवाले, हे वज्रोदरको कुचलनेवाले, हे लक्ष्मण और विशल्याका मिलाप करानेवाले, और रावणको सौ-सौ बार सतानेवाले, हे पुत्र, तुमने हम दोनोंसे भी नहीं कहा, तुमने अकेले ही दीक्षा कैसे ग्रहण कर ली।" यह कहकर, पुत्रशोकसे व्याकुल उन दोनोंने भी जिनेन्द्रमन्दिरमें जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। इस प्रकार विस्मयजनक कामदेवके अवतार पवनपुत्रने अत्यन्त कठिन तप तपा और बहुत दिनोंके उपरान्त केवलज्ञान प्राप्त कर वहाँ पहुँचा, जहाँ स्वयं स्वयम्भू देव थे ॥१-१२॥

यशःशेष कविराजका यश त्रिभुवनमें फैला हुआ है। त्रिभुवन स्वयम्भूने पद्मचरितके शेष भागको समाप्त किया।

स्वयम्भूदेवसे किसी प्रकार बचे हुए पद्म-चरित शेषभागमें त्रिभुवनस्वयम्भू द्वारा रचित 'मारुति निर्वाण प्राप्ति' प्रसंग पूरा हुआ।

वन्दइके आश्रित त्रिभुवन स्वयम्भू द्वारा रचित रामचरितके भुवन प्रसिद्ध शेष भागमें यह छियासीवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

[८७. सत्तासीमो संधि]

बहु-दिवसेँहिँ ते लक्खण-सुअ वि दुद्धरु दूसहु तवु करेँवि ।
जिह हणुउ तेम धुय-कम्म-रय थिय सिव-सासएँ पइसरेँवि ॥ध्रुवकम्॥

[१]

तो इय वत्त सुणेँवि रिउ-मद्दे । विहसेँवि बोल्लिज्जइ बलहद्दें ॥१॥
'कहवि एय वर-भोय मणोहर । हयवर गयवर रहवर णरवर ॥२॥
बहु-सीमन्तिणीउ सुहि-सयणहुँ । धण-कलहोय-धण्ण-मणि-रयणहुँ ॥३॥
ण वि माणन्ति कमल-सण्णिह-मुह ।' णारायण-पवणञ्जय-तणुरुह ॥४॥
महु ण मुणन्तहोँ भव-भय-लइया । पेक्खु केव सयल वि पव्वइया ॥५॥
मंछुडु ते वाएँ उद्दुद्धा । अहवइ कहि मि पिसाएँ लद्धा ॥६॥
जिम वामोहिय जिम उम्माहिय । कुसलु ण अत्थि वेज्जेँ ण वि वाहय ॥७
तें कज्जें विहोय परिसेसेँवि गय तवेण अप्पाणउ भूसेँवि' ॥८॥

घत्ता

धवलङ्गहोँ सिव-सुह-भायणहोँ जिणवर-वंस-समुब्भवहोँ ।
राहवहोँ वि जहिँ जड-मइ हवइ तहिँ अण्णहोँ ण वि होइ कहोँ ॥९॥

[२]

अण्णहिँ दिणेँ सुरवरहँ वरिट्ठउ । सहसणयणु णिय-सहएँ णिविट्ठउ ॥१
णं सुरगिरि सेस-हरि-सहायउ । दिणयर-कोडि-तेय-सच्छायउ ॥२॥
वर-सीहासण-सिहरारुहियउ । णव-तिय-अच्छर-कोडिहिँ सहियउ ॥३

सत्तासीवीं सन्धि

बहुत दिनोंके बाद लक्ष्मणके पुत्र भी दुःसह और दुर्द्धर तप साधकर हनुमानकी ही भाँति कर्ममल धोकर शाश्वत सुखमें जाकर रहने लगे।

[१] यह बात सुनकर शत्रुका मर्दन करनेवाले रामने हँसकर कहा, "इतने उत्तम श्री सुन्दर भोग, श्रेष्ठ गज, अश्व, रथ और मनुष्य, बहुत सी सुन्दर स्त्रियाँ, पण्डित, स्वजन, धन, सोना, धान्य, मणि, और रत्न पाकर भी लक्ष्मण और पवनंजय के पुत्रोंने कमलके समान सुन्दर सुखको कुछ नहीं माना। मुझे भी कुछ न मानते हुए वे संसारके डरसे इतने डर गए कि देखो सबके सब दीक्षित हो गये। लगता है शायद उन्हें हवा लग गयी है, अथवा पिशाच लग गया है। या तो वे व्यामोहमें पड़ गये हैं, या फिर उन्हें उन्माद हो गया है। उनकी कुशलता नहीं है, उन्होंने किसी वैद्य या मन्त्रवादीसे भी अपना उपचार नहीं कराया। यही कारण है कि समस्त ऐश्वर्य छोड़कर उन्होंने तपसे अपने आपको विभूषित किया। गौरांग शिव सुख भाजन और जिनवर वंशमें उत्पन्न होकर भी जब रामकी इतनी जड़बुद्धि है, तो फिर दूसरोंकी दुष्ट बुद्धि क्यों न होगी ॥१-९॥

[२] एक दिन सहस्रनयन इन्द्र अपने सहायकके साथ बैठा हुआ था, मानो सुमेरुपर्वत अन्य पर्वतोंके साथ स्थित हो। करोड़ों सूर्योंके तेजके समान उसकी कान्ति थी। वह एक उत्तम सिंहासनके ऊपर बैठा हुआ था। सत्ताईस

विविहाहरण-फुरन्त-सरीरउ । गिरि व धीरु जलहि व गम्भीरउ ॥४॥
मइ-रिद्धिएँ ससिएँ सम्पुण्णउ । उत्तम-बल-रूवेण पसण्णउ ॥५॥
लोयवाल-पमुहहँ सुह-पवरहँ । बोल्लइ सभउ असेसहँ अमरहँ ॥६॥
'जासु पसाएं एँउ इन्दत्तणु । लब्भइ देवत्तणु सिद्धत्तणु ॥७॥
जें संसार-घोर-रिउ चुक्कें । विणिहउ णाण-समुज्जल-चक्कें ॥८॥
जो भव-सायर-दुहइँ णिवारइ । भविय-लोउ हेलाएँ जि तारइ ॥९॥

घत्ता

उप्पण्णहों जसु मन्दर-सिहरें तियसेन्देंहि अहिसेउ किउ ।
तं पणवहों सइँ सब्भावरेंण जइ इच्छहों भव-मरण-खउ ॥१०॥

[३]

जो सयरायर विहिमि मुएप्पिणु । थिउ भुवण-त्तय-सिहरें चडेप्पिणु॥१॥
जासु णामु सिवु सम्भु जिणेसरु । देव-देवु महएवु महेसरु ॥२॥
जिणु जिणिन्दु कालञ्जय सङ्करु । थाणु हिरण्णगब्भु तित्थङ्करु ॥३॥
विहु सयम्भु सद्धम्मु सयम्पहु । भयउ अरुहु अरहन्तु जयप्पहु ॥४॥
सूरि णाण-लोयणु तिहुयण-गुरु । केवलि रुद्दु विण्हु हरु जग-गुरु ॥५॥
सुहुमु सोक्खु णिरवेक्खु परम्परु । परमप्पउ परमाणु परमपरु । ६॥
अ-गुरु अ-लहुउ णिरञ्जणु णिक्कलु । जग-मङ्गलु णिरवयवु सु-णिम्मलु ॥७॥

घत्ता

इय णामेंहि सुर-णर-विसहरेंहि जो संथुव्वइ भुवण-यलें ।
तहों अणुदिणु रिसह-भडाराहों भत्तिएँ लग्गहों पय-जुयलें ॥८॥

[४]

जीवु अणाइ-णिहणु भव-सायरें । कम्म-वसेण भमन्तु दुहायरें ॥१॥
केम वि मणुय-जम्में उप्पज्जइ । धम्महों णवर तहि मि मोहिज्जइ ॥२॥

करोड़ अप्सराएँ उसके साथ थीं। उसका शरीर तरह-तरहके आभूषणोंसे चमक रहा था। समुद्रके समान गम्भीर और पहाड़की भाँति धीर था। महा ऋद्धियों और शक्तियोंसे सम्पूर्ण था। उत्तम बल और रूपमें एक दम खिला हुआ था। लोकपाल प्रमुख बड़े-बड़े देवताओं और शेष सभी देवताओंके सम्मुख उसने कहा, "जिसके प्रसादसे यह इन्द्रत्व मिलता है देवत्व और सिद्धत्व मिलता है, जिन्होंने एक अकेले ज्ञानसमुज्ज्वल चक्रसे संसारके घोर शत्रुका हनन कर दिया है, जिन्होंने संसार-के घोर दुःखोंका निवारण किया है, जो भव्यजीवोंको खेल-खेलमें तार देते हैं। सुमेरुपर्वतके शिखरपर देवेन्द्र जिनका मंगल अभिषेक करते हैं, उनको सदा आदरपूर्वक प्रणाम करना चाहिए, यदि हम संसार और मृत्युका विनाश करना चाहते हैं। ॥१–१०॥

[३] जो सचराचर धरतीको छोड़कर तीनों लोकोंके ऊपर चढ़कर विराजमान हैं। जिनका नाम शिव, शम्भु और जिनेश्वर है, देवदेव महेश्वर हैं जो। जिन, जिनेन्द्र, कालंजय, शंकर, स्थाणु, हिरण्यगर्भ, तीर्थंकर, विधु, स्वयम्भू, सद्धर्म, स्वयंप्रभु, भरत, अरुह, अरहन्त, जयप्रभ, सूरि, ज्ञानलोचन, त्रिभुवनगुरु, केवली, रुद्र, विष्णु, हर, जगद्गुरु, सूक्ष्मसुख, निरपेक्ष परम्पर, परमाणु परम्पर, अगुरु, अलघु, निरंजन, निष्कल, जगमंगल, निरवयव और निर्मल हैं। इन नामोंसे जो भुवनतलमें देवताओं, नागों और मनुष्योंके द्वारा संस्तुत्य हैं, तुम उन परम आदरणीय ऋषभनाथके चरण युगलोंकी भक्तिमें अपनेको झुका दो! ॥१–८॥

[४] भवसमुद्रमें जीव अनादिनिधन है, कर्मके अधीन होकर दुःख योनियोंमें भटकता है। किसी प्रकार मनुष्य योनिमें

मिच्छा-सवॅण आउ हीणामरु । मुज्झइ सव्वेँ वि होइवि पडिवउ णरु ॥३
मइ-रिद्धियहोँ वि सुरहोँ सु-दुल्लहु । होइ णरत्तें बोहि अइ-दुल्लहु ॥४॥
दुल्लु दुल्लु सो धम्महोँ लग्गइ । अण्णाणिउ पुणु किर कहिँ लग्गइ ॥५॥
अह देवो वि होवि पडिवउ णरु । णरु वि होवि पुणु पडिवउ सुरवरु ॥६
अहोँ देवहोँ कइयहुँ मणुअत्तणेँ । बोहि लहेसहुँ जिणवर-सासणेँ ॥७॥
अट्ठ-दुट्ठ-कम्मारि हणेसहुँ । अविचलु सिद्धालउ पावेसहुँ' ॥८॥
एहेँ सुरेण वुत्तु तो सुरवइ । 'सग्गेँ वसन्तहुँ अम्हहुँ इय मइ ॥९॥
मणुअत्तणेँ पुणु सव्वहुँ मुज्झइ । कोह-लोह-मय-माणेँहिँ रुज्झइ ॥१०॥
अहवइ जइ ण वि मणेँ पत्तिअच्छहि । तो किं पउमणाहु ण णियच्छहि ॥११॥
सव्वेँ वि बम्ह-णामहोँ सुर-लोयहोँ । किह आसत्तउ मणुअ-विहोयहोँ' ॥१२

घत्ता

विहसेवि वुत्तु सक्कन्दणेँण 'जीव-णिहाय-णिरूवणाहुँ ।
संसारेँ सणेह-णिबन्धु दिढु मज्झेँ असेसहुँ बन्धणहुँ ॥१३॥

[५]

कण्णोहरु कसणुज्जल-देहउ । रामोवरि-परिवड्ढिय-णेहउ ॥१॥
एक्कु वि णिमिसु विओउ ण इच्छइ । उवगरेहुँ पाणेहिँ वि वञ्छइ ॥२॥
एत्तिउ जाणमि हउँ अहोँ देवहोँ । मरणहोँ णामेण वि बलएवहोँ ॥३॥
ण वि जीवइ णिरुत्तु दामोयरु । रामु मुअउ तेँ केम सहोयरु ॥४॥
किह वीसरउ विविह-उवयारा । जे चिन्तविय-मणोरह-गारा ॥५॥
कह वीसरउ अडज्झ मुएवउ । समउ सयलेँ वण-वासेँ ममेवउ ॥६॥

उत्पन्न होता है, परन्तु वहाँ भी वह धर्मसे उदासीन रहता है, मिथ्यातपसे वह हीनकोटिका देव बनता है। पुष्पमाला मूर्छित होनेपर वहाँसे आकर मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है। जो वैभव सम्पन्न देवताओंके लिए भी असम्भव है, ऐसा मनुष्यत्व पा लेनेपर भी ज्ञान-प्राप्ति असम्भव है। धीरे-धीरे वह धर्मका आचरण करता है, फिर वह दूसरी दूसरी बातोंमें कैसे लग सकता है। फिर वह मनुष्य रूपमें जन्म लेता है और तब देवताके रूपमें। देवतासे फिर मनुष्यत्वमें। मैं जिनशासनमें किस प्रकार बोध प्राप्त करूँगा। कब मैं आठ दुष्ट कर्मोंका नाश करूँगा, और अविचल सिद्धालय प्राप्त करूँगा। तब एक देवताने कहा, "स्वर्गमें रहते हुए हमारी यह स्थिति है, परन्तु मनुष्यत्व पाकर सभी मोहमें पड़ जाते हैं।वे क्रोध, मान, माया और लोभमें फँस जाते हैं। यदि तुम्हें इस बातका विश्वास नहीं होता, तो क्या रामचन्द्रको नहीं देखते। ब्रह्मस्वर्गसे आकर मनुष्यके भोगोंमें पड़कर अपने आपको भूल गये। तब इन्द्रने हँसकर कहा, "जीव समूहको रोकनेवाले अशेष समस्त बन्धनोंमें प्रेमका बन्धन ही सबसे अधिक मजबूत होता है।" ॥१-१३॥

[५] सोनेके समान देदीप्यमान शरीरवाला लक्ष्मण रामके ऊपर इतना प्रेम रखता है कि एक भी क्षण उसके वियोगको सहन नहीं कर सकता। उपकारी प्राणोंसे भी अधिक वह उसे चाहता है। मैं इतना भर जानता हूँ कि रामकी मृत्युके नाम भरसे लक्ष्मण निश्चित रूपसे जीवित नहीं रहेगा। जब राम ही नहीं रहे, तो भाई क्या करेगा? वह विविध उपकार कैसे भूल सकता है, जो याद करते ही सुन्दर प्रतीत होते हैं. अयोध्याका छोड़ना

किह वीसरउ रउद्दु महारणु । स-तिसिर-खर-दूसण-संहारणु ॥७॥
किह वीसरउ समरें पहरेवउ । इन्दइ वि-रहु करेवि धरेवउ ॥८॥
किह वीसरउ स-रोसु भिडेवउ । लङ्केसर-सिर-कमलु खुडेवउ ॥९॥

घत्ता

अवर वि उवयार जणद्दणहों किह रहुवइ मणें वीसरइ ।
तें अच्छइ पडिउवयार-मइ णेह-वसंगउ किं करइ' ॥१०॥

[६]

आयण्णेंवि दुय वयणइँ चवन्तु । अण्णु वि जाणेंवि आसण्ण-मित्तु ॥१॥
जयकारेंवि वासवु चारु-वेस । गय णिय-णिय-णिलयहँ सुर असेस २
तहिं णवर स-विब्भम बिण्णि देव । पचलिय लक्खणहों विणासु जेव ॥३
'वलु मुयउ सुणेवि सणेहवन्तु । पेक्खहुँ सो काइँ करइ अणन्तु ॥४॥
किह रूअइ पजम्पइ काइँ वयणु । आरूसइ कहीं कहिँ कुणइ गमणु॥५॥
मुहु सोएं केहउ होइ तासु । केरिसउ दुक्खु अन्तेउरासु' ॥६॥
एउ वयणु पजम्पेंवि रयणचूलु । अण्णेक्कु वि णामें अमियचूलु ॥७॥
विण्णि वि कय-णिच्छय गय तुरन्त । णिविसेण अउज्झा-णयरि पत्त ॥८॥

घत्ता

मायामउ बलएवहों मवणें देवहिँ कलुणु सद्दु गरुउ ।
किउ जुवइ-णिवह-धाहा-गहिरु 'हा हा राहवचन्दु मुउ' ॥९॥

[७]

जं हलहर-मरण-सद्दु सुणिउ । तं भणइ विसण्णु सुमित्ति-सुउ ॥१॥
'हा काइँ जाउ फुडु राहवहों' । लहु अद्धु चवन्तहों एव तहों ॥२॥

कैसे भूल जायगा, यह भी कैसे भूल सकता है जो वनमें उसके साथ घूमता फिरा। उस महान् भयंकर युद्धको कैसे भूल सकता है कि जिसमें त्रिशिर और खर दूषणका संहार हुआ। युद्धमें उसके प्रहारको राम कैसे भूल सकते हैं ? उसने जो इन्द्रजीत-को विरथ कर पकड़ा था, उसे वह कैसे भूल सकता है ? उसका वह आवेशमें लड़ना वह कैसे भूल सकते हैं, रावणका सिर-कमल तोड़ना भी वह कैसे भूल सकते हैं ! लक्ष्मणके और भी दूसरे बहुतसे उपकार हैं, उन्हें राम कैसे भूल सकते हैं ? यदि तुम्हारी प्रति उपकारकी भावना है, तो स्नेहके वशीभूत क्यों बनाते हो ? ॥१-१०॥

[६] इन्द्रको यह सब कहते सुनकर, यह जानकर कि वह रामका अनन्य मित्र है, सभी देवता सुन्दरवेश में इन्द्रकी जय बोलकर अपने-अपने आवासोंको लौट गये। केवल वहाँपर दो देव बचे, विषयसे भरे वे चले किसी भी तरह लक्ष्मणका विनाश करनेके लिए। उन्होंने सोचा, चलो देखें कि 'लक्ष्मण मर गया' यह सुनकर राम क्या करते हैं, क्या रोते हैं ? अथवा क्या शब्द कहते हैं ? उठकर कहाँ कैसे जाते हैं ? शोकमें उनका मुख कैसा होता है ? अन्तःपुरमें कैसा दुःख होता है। यह वचन कहकर रत्नचूड़ नामका देवता, और दूसरे अमृतचूलने तुरन्त निश्चित कर लिया। उन्होंने कूच किया, और एक पलमें अयोध्या नगरी जा पहुँचे। रामके प्रासादमें देवताओंने माया-मय महाकरुण यह शब्द किया "हा रामचन्द्र मर गये"। यह सुनते ही युवतियोंका समूह डाढ़ मारकर रो पड़ा। ॥१-९॥

[७] जब रामकी मृत्युका शब्द सुमित्रासुत लक्ष्मणने सुना तो वह कह उठे, "अरे रामके क्या हो गया," वह आधा ही बोल पाये थे कि शब्दोंके साथ उनके प्राण पखेरू उड़ गये,

सहुँ मायएँ जीविउ णिग्गयउ । हरि देहहों णं रूसेंवि गयउ ॥३॥
वर-जायरूव-सम्मासियउ । सीहासणें विच्छिण्णएँ थियउ ॥४॥
अ-णिमीलिय-लोयणु थड्ढ-तणु । लेप्पमउ णाइँ थिउ महुमहणु ॥५॥
तं पेक्खेंवि सुरवर बे वि जण । अप्पउ णिन्दन्ति विसण्ण-मण ॥६॥
अइलज्जिय पच्छाताव-कय । सोहम्म-सग्गु सहसत्ति गय ॥७॥

घत्ता

सुरवर-मायएँ विउहुव्वियउ परियाणेंवि हरि-गेहि णिहिं ।
आढत्तु पणय-कुवियइँ करेंवि सव्वेंहिं सुट्ठु सणेहिणिहिं ॥८॥

[८]

तो पासें दुक्क आउल-मणाहँ । सत्तारह सहस-वरङ्गणाहँ ॥१॥
क वि पणइणि पणएं भणइ एव । 'रोसाविउ कवणें अक्खु देव ॥२॥
जो कु-मइएँ किउ अवराहु तुज्झु । सो सयलु वि एक्कसि खमहि मज्झु' ३
सब्भावें अग्गएँ का वि णडइ । क वि दइयहों चलण-यलेहिं पडइ ॥४
क वि मणहरु वीणा-वज्जु वाइ । क वि विविह-भेउ गन्धव्वु गाइ ॥५॥
क वि आलिङ्गइ णिब्भर-सणेह । चुम्बइ कवोलु सोमाल-देह ॥६॥
क वि कुसुमइँ सीसें समुद्धरेवि । तोसावइ सिरें सेहरिकरेवि ॥७॥
क वि मुहु जोएँवि मलियङ्गवङ्गु । उट्ठावइ किय-कर-साह-भङ्गु ॥८॥

घत्ता

अण्णाउ वि चेट्ठउ बहु-विहउ जुअइहिँ आउ आउ कियउ ।
जिह किविण-लोएँ सिय-सम्पयउ सव्व गयउ णिरत्थयउ ॥९॥

[९]

तो एँह वत्त णिसुणेविणु रामु । सहसत्ति आउ जगें णाव-णामु ॥१॥
लक्खणु कुमारु जहिँ तहिँ पइट्ठु । बहु-पियहँ मज्झें णिय-भाइ दिट्ठु २

मानो लक्ष्मण अपनी देहसे रूठकर चले गये। सुन्दर सोनेके खम्भोंसे टिके हुए विशाल सिंहासनपर वह गिर पड़े। खुली हुई आँखें! एकदम अडोल शरीर! मानो लक्ष्मण मूर्तिके बने हों।" उसे देखकर वे दोनों देवता विषण्ण मन होकर अपने आपको बुरा-भला कहने लगे। वे बहुत शर्मिन्दा हुए। उन्होंने बहुतेरा पश्चात्ताप किया। वे दोनों शीघ्र ही सौधर्म स्वर्गके लिए चल दिये। देवमायासे अपने प्रियका अनिष्ट हुआ जानकर, लक्ष्मणकी स्त्रियाँ प्रणयकोपसे भर उठीं। स्नेहमयी उन सबने विलाप करना शुरू कर दिया ॥१-८॥

[८] तब आकुलमन सत्तरह हजार सुन्दरियाँ शवके पास पहुँची। उनमेंसे कोई प्रणयवती प्रेम भावसे बोली,—"हे देव कहो, किसने तुम्हें क्रुद्ध किया है, कुबुद्धिसे मैंने तुम्हारा यदि अपराध किया है, हे देव वह सब मेरे लिए क्षमा कर दीजिए!" कोई सद्भावसे उसके सम्मुख नृत्य करने लगी। कोई प्रियके चरणोंपर गिर पड़ी। कोई सुन्दर वीणा वाद्य बजा रही थी। कोई विविध भेदोंवाला गन्धर्व गा रही थी। कोई स्नेहसे भरकर आलिंगन कर रही थी। कोई सुकुमार शरीर और गालोंको चूम रही थी। कोई फूलोंको सिरपर रखती, और शेखर बनाकर सन्तोषका अनुभव करती। कोई चन्दन चर्चित मुख देखकर हाथ उठाकर अपनी अँगुलियाँ चटका रही थी। इस प्रकार वे युवतियाँ तरह-तरहकी चेष्टाएँ कर ही रही थीं, पर सब व्यर्थ, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार समस्त वैभव, कंजूसके पास व्यर्थ जाता है! ॥१-९॥

[९] जब रामने यह समाचार सुना तो प्रसिद्धनाम वह सहसा वहाँ आये जहाँ कुमार लक्ष्मण थे, वहाँ आकर बैठ गये। बहुत सी पत्नियोंके बीच उन्होंने अपने भाईको देखा!

सव्वहें(?)विरामें ससि-वयण-छाउ। णिरु णिच्चलु सिद्धि-परिट्ठिय-काउ ३
काकुत्थु य चिन्तइ रणें दुसज्झु। 'मंभुहु लक्खणेहरु कुहउ मज्झु ॥४॥
तें कज्जें ण वि आयउ वि गणइ। ण वि काइँ वि अब्भुत्थाणु कुणइ' ॥५
सिरें चुम्बेंवि पभणिउ 'सुन्दरच्छ। किं महु आलाउ ण देहि वच्छ ॥६॥
कहें काइँ थियउ कट्ठमउ णाइँ'। परियाणिउ चिण्हेंहि मुअउ भाइ ॥७॥
अवलोइउ पुणु सयलु वि सरीरु। मुच्छाविउ खणें वलएव-वीरु ॥८॥

घत्ता

जिह तरुवरु छिण्णउ मूलें तिह महिहें पडिउ णिच्चेयणउ।
मरु-हार-णीर-चन्दण-जलेहिं हुउ कह कह वि स-चेयणउ ॥९॥

[१०]

उट्ठिउ सोआउरु रहु-तणउ। बहु-वाह-पिहिय दीणाणणउ ॥१॥
तं भाउ णिएवि स-णेउरेंण। धाहाविउ हरि-अन्तेउरेंण ॥२॥
'हा णाह आउ सइँ दासरहि। किं सोहासहों ण ओसरहि ॥३॥
हा णाहत्थाणु समागयहँ। सम्माणु करहि णरवर-सयहँ ॥४॥
हा णाह पसण्ण-चित्तु हवहि। णिय-पियउ रुअन्तिउ संथवहि' ॥५॥
एत्थन्तरें तिण्णि वि आइयउ। सुप्पह-सुमित्ति-अवराइयउ ॥६॥
'हा लक्खण पुत्त' भणन्तियउ। अप्पउ करयलेंहिं हणन्तियउ ॥७॥
तिह आउ खणद्धें सत्तुहणु। णिवडिउ हरि-चलणहिं विमण-मणु ८

घत्ता

हा हा भायरि णिय-भायरिउ धीरहि सोयाउण्णियउ।
पइँ विणु पुणु आयउ अज्जु महु दिसउ असेसउ सुण्णियउ' ॥९॥

प्रभातमें जैसे चन्द्रकी कान्ति होती है, वैसी ही कान्ति लक्ष्मण की थी। एकदम अचल शोभा और कान्तिसे शून्य! रामने अपने मनमें सोचा, "युद्धमें असाध्य लक्ष्मण, शायद मुझसे नाराज है। यही कारण है कि वह अपनेको भी नहीं समझ पा रहा है! यहाँ तक कि उठकर खड़ा नहीं हुआ।' फिर मुख चूमकर उन्होंने कहा, 'हे सुन्दरनेत्र, क्या आज तुम मुझसे बात नहीं करोगे, बताओ आज इतने कठोर क्यों हो, लक्षणोंसे तो यही लगता है कि तुम मर गये!" फिर उन्होंने सारा शरीर देखा, और एक ही पलमें राम मूर्छित हो गये। जिस प्रकार जड़से कटा पेड़ धरतीपर गिर जाता है, उसी प्रकार राम अचेत होकर गिर पड़े। हवा, हार, नीर और चन्दनजलके छिड़कावसे उन्हें बड़ी कठिनाईसे होश आया! ॥१-९॥

[१०] शोकसे व्याकुल राम उठे। उनके दीन चेहरेपर आँसू-की बूँदें झलक रही थीं। रामका यह भाव देखकर लक्ष्मणका नूपुर सहित अन्तःपुर जोर-जोरसे रोने लगा, "हे स्वामी, स्वयं राम आये हुए हैं, क्या तुम सिंहासनसे नहीं उतरोगे? हा! दरबार में आये हुए सैकड़ों नरश्रेष्ठोंका सम्मान करिए। हे स्वामी, आप प्रसन्न चित्त हो रोती हुई अपनी पत्नियोंको सहारा दें।" इसी बीचमें सुप्रभा, सुमित्रा और अपराजिता, तीनों माताएँ आ गयीं। "हे बेटा लक्ष्मण!" कहती हुई वे अपनी छाती पीट रही थीं। आधे पलमें शत्रुघ्न आ गया और विमन होकर लक्ष्मणके चरणोंपर गिर पड़ा। उसने कहा, "हे भाई, शोकाकुल अपनी माँको तो समझाओ। तुम्हारे बिना आज हमारे लिए सारी दिशाएँ सूनी दिखाई देती हैं!" ॥१-९॥

[११]

तो हरि-मायरि सुमित्ति रुअइ । गुण सुमरेंवि गरुअ धाह मुअइ ॥१॥
'हा पुत्त पुत्त कहिं गयउ तुहुँ । हा थिउ विच्छायउ काइँ मुहु ॥२॥
हा मइँ अत्थाणें णिअच्छियउ । एवहिं जें चवन्तउ अच्छियउ ॥३॥
हा काइँ जाउ एँउ अच्छरिउ । जें महु णिल्लक्खण णासु किउ ॥४॥
हा पुत्त पुत्त सीयाहिवहों । किं मणें णिव्विण्णउ राहवहों ॥५॥
एक्केल्लउ छड्डेंवि जेण गउ । हा पुत्त अजुत्तउ एउ तउ' ॥६॥
एत्थन्तरें सुणेंवि महाउसेंहिं । असहन्तेंहिं दुहु लवणङ्कुसेंहिं ॥७॥
परियाणेंवि जीविउ देहु चलु । जयकारेंवि रामहों पय-जुअलु ॥८॥

घत्ता

गम्पिणु जिणहरु जहिं अमियसरु णिवसइ मुणि भव-भय-हरणु ।
कइवय-कुमार-णरवरेंहिं सहुँ वीहि मि लइयउ तव-चरणु ॥९॥

[१२]

लक्खीहर-मरणउ एक्कहिं । लवणङ्कुस-विओउ अण्णेत्तहिं ॥१॥
एक्केण जि खणेण मुच्छिज्जइ । बिहिं दुहेहिं पुणु किं पुच्छिज्जइ ॥२॥
भाइ णिएँवि परिवड्ढिय-मच्छरु । पुणु वि पुणु वि धाहावइ हलहरु ॥३॥
'हा लक्खण लक्खण-लक्खङ्किय । पेक्खु केम महु सुअ दिक्खङ्किय ॥४॥
पइँ विणु को महु सहुँ गमु सन्धइ । को सीहोयरु समरें णिबन्धइ ॥५॥
पइँ विणु को महु पेसणु सारइ । वज्जयण्णु णरवइ साहारइ ॥६॥
पइँ विणु वालिखिल्लु को धारइ । को तं रुद्दभुत्ति विणिवारइ ॥७॥
पइँ विणु को भञ्जइ धरणीधरु । धरइ अणन्तवीरु को दुद्धरु ॥८॥

[११] इतनेमें लक्ष्मणकी माँ सुमित्रा रो पड़ीं। उसके गुणों-की याद कर वह दहाड़ मारकर रोने लगीं, "हे पुत्र, तुम कहाँ चले गये। हा, आज तुम्हारा मुख फीका क्यों है, अभी मैंने दर-बार में देखा था, अभी-अभी तुम बातें कर रहे थे। मुझे यह देखकर अचम्भा हो रहा है। आज तुमने मेरा नाम लक्ष्मणसे शून्य बना दिया। हे पुत्र, हे पुत्र, क्या तुम सीताधिप रामसे अब विरक्त हो गये। जिससे तुम उन्हें अकेला छोड़कर चल दिये। यह तुमने बहुत बुरी बात की।" इसी अवधि में दीर्घायु लवण और अंकुशने जब यह बात सुनी, तो वे सहन नहीं कर सके। यह जानकर कि 'देह और जीवन' दोनों चंचल हैं, उन दोनोंने रामके चरणकमलोंकी वन्दना की। वे दोनों जिन-मन्दिरमें गये, जहाँ पर भवभय दूर करनेवाले अमृतसर महा-मुनि थे। वहाँ उन्होंने कैकेयीके पुत्रोंके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली॥ १-९॥

[१२] एक ओर लक्ष्मण की मृत्यु, और दूसरी ओर अंकुश का वियोग। आदमी एकसे ही मूर्च्छित हो जाता है, फिर यों दुःख आ पड़नेपर क्या पूछना। भाईको देखकर रामका शोक बढ़ गया, वे फूट-फूटकर रोने लगे—"लक्षणोंसे अंकित हे लक्ष्मण, देखो किस प्रकार मेरे पुत्रोंने दीक्षा ले ली। अब कौन तुम्हारे बिना मेरा गमन साधेगा, कौन सिंहोदरको युद्धमें बाँधेगा, तुम्हारे बिना कौन अब हमारी आज्ञा निभायेगा, राजा वज्रकर्णको सहारा देगा। तुम्हारे बिना अब कौन बालखिल्यको ढाढ़स देगा और रुद्रभूतिका प्रति-कार करेगा। तुम्हारे बिना अब कौन राजाओंको पकड़ेगा और दुर्द्धर राजा अनन्तवीर्यको अपने वशमें करेगा। राजा

घत्ता

सचिउ अरिदमण-णराहिवहों पञ्च पडिच्छेंवि सई समरें।
पइँ विणु लक्खण खेमञ्जलिहें कहों लग्गइ जियपउम करें ॥९॥

[११]

हा लक्खण पइँ विणु गुणहराहँ। उवसग्गु हरइ को मुणिवराहँ ॥१॥
पइँ विणु अ-किलेसें भुवणें कासु। करें लग्गइ असिवरु सुरहासु ॥२॥
पइँ विणु को हेलऍ गरुअ-धीरु। विणिवायइ सम्बुकुमारु वीरु ॥३॥
पइँ विणु संदरिसिय बहु-वियारु। को परियाणइ चन्दणहि चारु ॥४॥
पइँ विणु को जीविउ हरइ ताहँ। तीहि मि तिसिरय-खर-दूसणाहँ ॥५॥
पइँ विणु को धीरइ पमय-सत्थु। को कोडि-सिलुद्धरणहुँ समत्थु ॥६॥
पइँ विणु लङ्का-णयरिहें समीवें। को जिणइ हंसरहु हस-दीवें ॥७॥
पइँ विणु को इन्दइ धरइ माइ। को रावण-सत्तिऍ समुहु थाइ ॥८॥
पइँ विणु कहों आवइ किय-विसल्ल। दिवसयरें अणुदुन्तऍ विसल्ल ॥९॥
पइँ विणु उप्पज्जइ कहों रहङ्गु। को दरिसइ बहुरूविणिहें भङ्गु ॥१०॥
पइँ विणु कियन्तु को रावणासु। को सिय-दायारु विहीसणासु ॥११॥

घत्ता

पइँ विणु मणिट्ठ महु माइणर को मेळावइ पिय-घरिणि।
पालेसइ णिरु णिरुवद्दविय को ति-खण्ड-मण्डिय धरणि ॥१२॥

[१२]

हा तवहों णिगय महु पुत्त वे वि। कञ्चीहर गम्पिणु आउ लेवि ॥१॥
हा मुऍ मच्छरु कहु पालि५ल। वइइ अणागार-मुणिन्द वेल ॥२॥
हा किं महु उवरि पणट्ठ णेहु। हा वणु संथवहि रुवन्तु एहु ॥३॥

अरिदमनकी पाँचों शक्तियोंको युद्धमें स्वयं झेलकर, अब कौन क्षेमांजलीपुरकी जितप्रभाको अपने हाथमें लेगा ॥ १-९ ॥

[१३] हे लक्ष्मण, तुम्हारे बिना गुणधर मुनिवरोंका उपसर्ग अब कौन दूर करेगा? अब दुनियामें तुम्हारे बिना सूर्यहास तलवार बिना कपटके किसके पास जायगी ? तुम्हारे बिना अब कौन वीर शम्बुकुमारको खेल-खेलमें मार गिरायेगा? तुम्हारे बिना अब कौन विकारोंका प्रदर्शन करती हुई चन्द्रनखाको पहचान सकेगा ? तुम्हारे बिना अब कौन खर-दूषण और त्रिशिरका जीवन अपहरण करेगा? प्रमदाओंके समूहको तुम्हारे बिना अब कौन समझाएगा ? अब कौन कोटिशिला उठायेगा ? और अब तुम्हारे बिना लंकाके निकट स्थित हंसद्वीप और उसके राजा हंसरथको जीतेगा ? हे भाई, तुम्हारे बिना अब इन्द्रजीतको कौन पकड़ेगा ? और रावणकी शक्तिका सामना कौन कर सकेगा ? शल्य दूर करनेवाली विशल्या, तुम्हारे बिना सूर्योदयके पहले अब किसके पास आयेगी ? तुम्हारे बिना चक्ररत्न अब किसे उपलब्ध होगा ? और कौन बहुरूपिणी विद्याका नाश करेगा ? तुम्हारे बिना अब कौन रावणका यम बनेगा और विभीषणके लिए सम्पत्तिका दान करेगा ? तुम्हारे बिना अब कौन है जो मेरी मनचाही पत्नी सीतादेवीसे भेंट करायेगा ? कौन अब तीन खण्ड धरतीका निर्विघ्न परिपालन करेगा ? ॥ १-१२ ॥

[१४] अरे मेरे दोनों पुत्र भी तप करने चले गये। लक्ष्मण, तुम जरूर उन्हें लौटा लाओ। यह ईर्ष्या छोड़ो और धरतीका पालन करो। मुनि बननेका समय है। क्या मुझपर तुम्हारा नेह नष्ट हो गया है। अरे, रोते हुए इन लोगोंको

इह चक्कें जें हउ बहुरि-चक्कु । सो विसहहि केम कियन्त-चक्कु ॥४॥
हा काइँ करमि संचरमि केत्थु । ण वि तं पएसु सुहु कहमि जेत्थु ॥५॥
णिज्झइ जेम भायर-विओउ । तिह ण वि विसु विसमु ण पिसुणु कोउ ६
ण वि गिम्ह-यालें खर-दिणयरो वि । ण वि पज्जालिउ वइसाणरो वि ॥७॥
हा उज्झाउरि-पायारु खसिउ । इक्खुक्क-वंस-मयरहरु सुसिउ' ॥८॥

घत्ता

पुणु आलिङ्गइ चुम्बइ पुसइ अङ्कें थवेप्पिणु पुणु रुवइ ।
जीविएँण वि मुक्कउ महुमहणु रामु सणेहें ण वि मुयइ ॥९॥

[१५]

लक्खण-गुण-गण मणें सुमरन्तें । दसरह-जेट्ठ-सुएण रुयन्तें ॥१॥
रुण्णु अउज्झा-जणेंण असेसें । अवराइएँ सुप्पहएँ विसेसें ॥२॥
रुण्णु सल्लसुन्दरिएँ विसालएँ । रुण्णु विसल्लएँ तिह गुणमालएँ ॥३॥
रुण्णु रयणचूलएँ वणमालएँ । तिह कल्लाणमाल-णामालएँ ॥४॥
रुण्णु सच्चसिरि-जयसिरि-सोमेंहिं । दहिमुह-सुअ-गुणवइ-जियपोमेंहिं ५
रुण्णु कमललोयण-ससिमुहियहिं । ससिवद्धण-सीहोयर-दुहियहिं ॥६॥
रुण्णु अणेयहिं वन्धव-सयणेंहिं । खणें खणें विहिहें दिण्ण-दुव्वयणेंहिं ७

घत्ता

जसु सोएं मुक्कल मुक्क-सर सहुँ जय-सिरि कच्छि वि रुयइ ।
तहें उज्झाउरिहें कमागएँहिं को वि ण गरुअ धाह मुअइ ॥८॥

[१६]

तो दस-दिसु पसरिय एह वत्त । सहसा विज्जाहरवरहँ पत्त ॥१॥
सयल वि स-कलत्त स-पुत्त आय । सुग्गीव-बिहीसण-सीहणाय ॥२॥

सान्त्वना दो। जिस चक्रसे तुमने शत्रुसमूहका अन्त किया, भला वह यम चक्रको कैसे सहन कर सका ? हा अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, ऐसा एक भी प्रदेश नहीं जहाँ जाकर सुख प्राप्त कर सकूँ। भाईका वियोग रामको जितना सता रहा था, उतना विषम न तो विष था और न दुर्जन समूह। ग्रीष्म-कालका प्रखर सूर्य भी उतना विषम नहीं था और न ही जलती हुई आग। हा, अब तो अयोध्या नगरीका खम्भा ही टूटकर गिर गया। इक्ष्वाकु वंशका समुद्र आज सूख गया। राम लक्ष्मणका आलिंगन करते, चूमते और कभी पोंछते, और फिर गोद में लेकर रोने बैठ जाते। लक्ष्मण प्राण छोड़ चुके थे, परन्तु राम तब भी स्नेह छोड़ने को तैयार नहीं थे ॥१-९॥

[१५] वे लक्ष्मण के गुण समूह की याद करते, और बार-बार रोते। उनके साथ समस्त अयोध्यावासी रो पड़े। अपराजिता और सुप्रभा तो खूब रोयीं। विशल्या सुन्दरी भी खूब रोयी, विशल्याकी तरह गुणमाला भी खूब रोयी, रतनचूला और वनमाला भी रोयीं, उसी प्रकार कल्याणमाला और नागमाला भी खूब रोयीं, सत्यश्री, जयश्री और सोमा रोयीं, दधिमुखकी पुत्री गुणवती और जितप्रभा भी रोयीं, कमलनयना, शशिमुखी, शशिवर्धना और सिंहोदरकी लड़कियाँ भी रोयीं। भाग्यके वशसे लक्ष्मणके अनेक बन्धु-बान्धव और स्वजन, अत्यन्त दीन स्वरमें रो रहे थे। जिसके वियोगमें स्वयं जयश्री और लक्ष्मी मुक्तस्वरमें रो रही थीं, उस अयोध्या नगरीमें कौन ऐसा था जो फूट-फूटकर न रो रहा हो ॥१-८॥

[१६] यह बात दशों-दिशाओंमें फैल गयी। शीघ्र ही विद्याधरोंको यह मालूम हो गया। सभी अपने पुत्रों और पत्नियोंके साथ आये। सुग्रीव, विभीषण, सिंहनाद, शशिवर्धन,

ससिवद्धण-तार-तरङ्ग-जणव । स-विराहिय गवय-गवक्ख-कणय ॥३॥
कोलाहल-इन्द-महिन्द-कुन्द । दहिमुह-सुसेण-जम्बव-समुद्द ॥४॥
ससिकर-णल-णील-पसण्णकित्ति । मय-सङ्ख-रम्भ-दिवसयर-जोत्ति ॥५॥
सयल वि अंसुअ-जल-भरिय-णयण । तुहिणाहय-कमल-विवण्ण-णयण ॥६॥
बलएवहों चलणहिँ पडिय केवँ । तइलोक्क-गुरुहेँ गिव्वाण जेवँ ॥७॥

घत्ता

अवलोइउ पुणु असहन्तएँहिँ चक्काहिउ सम्पत्तु खउ ।
विगय-प्पहु दर-मोणल्लु-सिरु णं किउ केण वि लेप्पमउ ॥८॥

[१७]

तं णिएँवि सुमित्ता-तणउ तेहिँ । धाहाविउ वर-विज्जाहरेहिँ ॥१॥
'हा हा काकहों णिहाण-पाल । अइ-दूरीहूअउ सामिसाल ॥२॥
हा हा कहेँ पेसणु किं पि णाह । हा अज्जु जाय अम्हइँ अणाह ॥३॥
हा हा जण-मण-जणियाणुराय । कहेँ को पेसेसइ बहु-पसाय ॥४॥
हा हा सामिय जय-सिरि-णिवास । पइँ विणु ण वि राहव जीवियास ॥५॥
हा हा सामिय सव्वोवयारि । हा हा मयरहरावत्त-धारि ॥६॥
हा सामिय तुह दय-रिणु इमेण । परिसुज्झइ ण वि एक्कें भवेण ॥७॥
तें कज्जें किं एँउ जुत्तु तुज्झु । जें मुएँवि जाहि ण कहन्तु गुज्झु' ॥८॥

घत्ता

तें कलुणारावें णरवरहँ दस-दिसि कण्णउ सुरवर वि ।
वणसइउ णइउ मह-जलहि गिरि रोवाविय वर विसहर वि ॥९॥

[१८]

अप्पउ सन्थविउ विहीसणेण । पुणु पभणिउ राहवचन्दु तेण ॥१॥
'परिसेसहि देव महन्तु सोउ । कासु ण भुवणन्तरेँ हुउ विओउ ॥२॥

तार, तरंग, जनक, विराधित, गवय, गवाक्ष और कनक, कोलाहल, इन्द्र, माहेन्द्र, कुन्द, दधिमुख, सुषेण, जाम्बव, समुद्र, शशिकर, नल, नील, प्रसन्नकीर्ति, मद, शंख, रंभा, दिवाकर और ज्योतिषी। सभीकी आँखोंमें आँसू भरे हुए थे, सबके मुख हिमाहत कमलोंके समान मुरझाये हुए थे। वे रामके चरणोंमें उसी प्रकार गिर पड़े, जिस प्रकार देवता, त्रिलोकगुरु जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोंमें गिर पड़ते हैं। विश्वास न होनेसे उन्होंने बार-बार देखा कि चक्रवर्ती लक्ष्मण सचमुच काल-कवलित हो चुके हैं, निष्प्रभ अपना सिर नीचा किये हुए, मानो किसीने मूर्ति ही गढ़ दी हो ॥१–८॥

[१७] सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणको इस प्रकार देखकर बड़े-बड़े विद्याधर बुरी तरह रो पड़े। "हे कालके आघातको झेलने वाले स्वामिश्रेष्ठ, तुम भी इतनी दूर हो गये। हे स्वामी, कुछ भी तो आज्ञा दो। अरे आज तो हम अनाथ हो गये। हे जन-मनमें अनुराग उत्पन्न करनेवाले, अब बहुतसे प्रसाद कौन भेजेगा? जयश्रीके निवास हे स्वामी, तुम्हारे बिना अब कौन रामके लिए जीवित गाथा होगा? सबका उपकार करनेवाले हे स्वामी, हे समुद्रावर्त धनुषको उठानेवाले, तुम्हारा दयारूपी ऋण एक भी जन्ममें पूरा नहीं होगा। इसलिए यही ठीक है कि आप हमें छोड़कर कहीं और न जायँ। उन नरश्रेष्ठोंके करुण-विलापसे, दसों दिशाएँ, कन्याएँ, बड़े-बड़े देवता, वनस्पतियाँ, नदियाँ, बड़े-बड़े समुद्र और पहाड़ तथा विषधर भी रो पड़े ॥१–९॥

[१८] तब विभीषणने अपने-आपको ढाढ़स बँधाया और उसने रामचन्द्रजीसे कहा, "हे देव, यह महान् शोक आप छोड़

ण वि एक्कहों एयहों अन्तकरणु । सव्वहों वि जणहों जर-जम्म-मरणु ॥३॥
जीवहों भव-गहणें ण का वि भन्ति । चउरासी लक्खइँ सरीरइँ होन्ति जन्ति ॥४॥
उप्पत्ति जेव तिह धुवु विणासु । किं रोवहि कारणें कलत्तणासु ॥५॥
कइउ वि अम्हेहिँ तुम्हेहिँ एव । पहु गमणु करेवउ एण जेव ॥६॥
जइ जीव-रासि आवइ ण जाइ । तो मेइणि-मण्डलें केत्थु माइ ॥७॥
जइ मरणु णाहिँ भो रामचन्द । तो कहिँ गय कुलयर जिणवरिन्द ॥८॥
कहिँ भरह-पमुह चक्कवइ पवर । कहिँ रुद्द-कण्ह-बलएव अवर ॥९॥

घत्ता

एउ जाणेंवि सयलागम-कुसल वयणु महारउ मणें धरहि ।
झायहि सयम्भु तइलोक-गुरु दुहु दु-क्कम्मु व परिहरहि' ॥१०॥

इय पोमचरिय-सेसे सयम्भुएवस्स कह वि उव्वरिए ।
तिहुअण-सयम्भु-रइए हरि-मरणं णाम पव्वमिणं ॥
वन्दइ-आसिय-कइराय- तणय-तिहुअण-सयम्भु-णिम्मविए ।
पोमचरियस्स सेसे सत्तासीमो इमो सग्गो ॥

तिहुअण-सयम्भु णवरं एक्को कइराय-चक्किणुप्पण्णो ।
पउमचरियस्स चूडामणिव्व सेसं कयं जेण ॥

●

दें, संसारमें वियोग किसीको भी न हो, परन्तु यम इसी एक-के लिए नहीं है, सभी मनुष्योंका बुढ़ापा, जन्म और मरण होता है। जीवको जन्म लेनेमें कोई भ्रान्ति नहीं है, चंचल शरीर उत्पन्न होते हैं, और नष्ट भी। मनुष्यका जन्म जैसा निश्चित है, उसकी मृत्यु भी उसी प्रकार निश्चित है। इसलिए लक्ष्मणके लिए तुम क्यों रोते हो? हे देव, जैसा इसने महाप्रस्थान किया है, वैसा ही एक न एक दिन मेरा आपका भी कूचका डेरा उठेगा। यदि जीवोंकी राशियाँ इस प्रकार आती-जाती न रहें, तो धरतीपर समायें कैसे? हे राम, यदि मौत न होती तो बड़े-बड़े कुलधर और तीर्थंकर कहाँ गये? भरतप्रमुख बड़े-बड़े चक्रवर्ती और भी दूसरे रुद्र, कृष्ण और राम कहाँ गये? समस्त आगमों में कुशल, यह सब जानते हुए, आप मेरे वचनमें विश्वास करें, आप त्रिलोकगुरु स्वयंभूका ध्यान करें, और दुःखको खोटी स्त्रीकी तरह दूरसे ही छोड़ दें ॥१–१०॥

स्वयंभूदेवसे किसी प्रकार बचे हुए, और त्रिभुवन स्वयंभू द्वारा रचित पद्मचरितके शेष भागमें 'लक्ष्मणमरण' नामक पर्व समाप्त हुआ।

वन्दइके आश्रित, कविराजके पुत्र त्रिभुवन 'स्वयंभू' द्वारा रचित पद्मचरितके शेष भागमें, यह सतासीवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

अकेला त्रिभुवन स्वयंभू कविराज चक्रवर्तीसे उत्पन्न हुआ, जिसने पद्मचरितके चूडामणिके समान यह शेष भाग पूरा किया।

●

[८८. अट्ठासीमो संधि]

तहिँ अवसरेँ सिरसा पणवन्तेँहिँ   बलु विण्णविउ सयल-सामन्तेँहिँ ।
'परमेसर ढवसोह समारहोँ   लच्छीहर-कुमारु संकारहोँ' ॥ध्रुवकं॥

[१]

पभणइ सीराउहु इय वयणेँहिँ ।   'डज्झहोँ तुम्हेँहिँ सहुँ णिय-सयणेँहिँ १
डज्झउ माय-बप्पु-तुम्हारउ ।   होउ चिराउसु माइ महारउ ॥२॥
उट्ठि आहुँ लक्खण लहु तेत्तहेँ ।   खल-वयणइँ सुव्वन्ति ण जेत्तहेँ ॥३॥
एवँ चवेँवि चुम्वेँवि आलावेँवि ।   वासुएउ णिय-खन्धेँ चडावेँवि ॥४॥
गउ वलएउ अण्णु थाणन्तरु ।   पइट्ठु तुरन्तु पवर-मज्जणहरु ॥५॥
'माइ विउज्झहि केत्तिउ सोवहि ।   ण्हाण-वेल परिल्हसिय ण जोयहि' ॥६
पुणु पीढोवरि थवेँवि णवम्हेँहिँ ।   अहिसिञ्चइ वर-कञ्चण-कुम्भेँहिँ ॥७॥
पुणु भूसइ मणि-रयणाहरणेँहिँ ।   ससहर-तवण-तेय-अवहरणेँहिँ ॥८॥
पुणु वोलइ समाणु सूयारहोँ ।   'भोयण-विहि लहु करहोँ कुमारहोँ' ९
तेण वि वित्थारिउ हरि-परियलु ।   देइ पिण्ड मुहेँ मणेँ मोहिउ वलु १०
ण वि अहिलसइ ण पेक्खइ लक्खणु ।   जिण-वयणु व अ-भव्वु अ-वियक्खणु ११

घत्ता

तहोँ भायइँ अवरइँ वि करन्तहोँ णिय-खन्धेँ हरि-मडउ वहन्तहोँ ।
माइ-विओय-जाय-अइ-सामहोँ अद्धु वरिसु वोलीणउ रामहोँ ॥१२॥

अठासीवीं सन्धि

उस अवसरपर सिरसे प्रणाम कर प्रायः सभी सामन्तोंने रामसे निवेदन किया—"हे परमेश्वर, आप शोक दूर कीजिए, और कुमार लक्ष्मणका दाह-संस्कार करिए।"

[१] ये शब्द सुन कर रामने कहा, "अपने स्वजनोंके साथ तुम जल जाओ। तुम्हारे माँ-बाप जलें, मेरा भाई तो चिरंजीवी है। लक्ष्मणको लेकर मैं वहाँ जाता हूँ जहाँ दुष्टोंके ये वचन सुननेमें न आवें।" यह कहकर रामने लक्ष्मणको चूमा और प्रलाप करते हुए अपने कन्धोंपर उन्हें रख लिया। वहाँसे राम दूसरे स्थानपर चले गये। फिर तुरन्त स्नान-घरमें प्रवेश किया। वहाँ जाकर उन्होंने कहा, "भाई जागो, कितना और सोओगे, नहानेका समय जा रहा है, तुम नहीं देखते हो क्या ? फिर रामने भाईको स्नानपीठपर बैठाया और नौ उत्तम स्वर्ण-कलशोंसे उसका अभिषेक किया। उसके बाद उसे मणि और रत्नोंके गहनोंसे विभूषित किया। वे गहने सूर्य और चन्द्रमाके समान तेजवाले थे। फिर रामने रसोइएसे कहा, "कुमारकी भोजनविधि शीघ्र सम्पादित करो।" रसोइएने बड़ी-सी सोनेकी थाली लगा दी। राम अपने मनमें इतने मुग्ध थे कि उसके मुँहमें कौर खिलाने लगे। परन्तु लक्ष्मण न तो कुछ चाहता और न कुछ देखता। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार, अभव्य और मूर्ख जीव, जिन भगवान्के वचन नहीं सुनता। यह और इस प्रकार दूसरी और बातें राम करते रहे, अपने कन्धोंपर कुमार लक्ष्मणका शव वह ढोते फिरे। भाईके वियोगमें वह बहुत दुबले-पतले हो गये। रामका इसी प्रकार आधा बरस बीत गया ॥१-८॥

[२]

तो ताव एउ वइयरु सुणेवि । लच्छीहर-मरणउ मणेँ मुणेवि ॥१॥
खर-दूसण-रावण सम्भरेवि । सम्बुक्क-वइरु णिय-मणेँ धरेवि ॥२॥
परियाणेँवि रहुवइ सोय-गहिउ । णीसेस सेण-वावार-रहिउ ॥३॥
सामरिस-खयर-णरवर-णिउत्त । आइय वहु इन्दइ-सुन्द-पुत्त ॥४॥
णहेँ वज्जमालि-रयणक्ख-पमुह । वकइय-कियन्त-धणु-भीम-पमुह ॥५॥
'मरु छिन्दहुँ अज्जु कुमार-सीसु । वहु-कालहोँ संभाइउ हवीसु ॥६॥
जं लइउ खग्गु थिरु सूरहासु । जं सम्बुकुमारहोँ किउ विणासु ॥७॥
जं खर-दूसण-तिसरयहँ मरणु । किउ अक्खय-रावण-पाण-हरणु ॥८॥

घत्ता

जं वहु-आएँहिँ अम्हहँ अणुदिणु दिण्णु अणन्तरु वइरु महा-रिणु ।
तं सयलु वि भेकेँ वि णिय-बुद्धिएँ फेडहुँ अज्जु सव्वु सहुँ विद्धिएँ ॥९॥

[३]

तो सुणेँवि आय रिउ राहवेण । आयामिउ वज्जावत्तु तेण ॥१॥
रहेँ चडेँवि थविउ उच्छङ्गेँ भाइ । जोइय पडिवक्ख जमेण णाइँ ॥२॥
एत्थन्तरेँ जे माहिन्द पत्त । सुर आय जडाइ-कियन्तवत्त ॥३॥
ते तक्खणेँ आसण-कम्प होवि । अवहिएँ परियाणेँवि आय वे वि ॥४॥
गुण सुमरेँवि सामिहेँ भत्ति-वन्त । सम्पाइय उज्झाउरि तुरन्त ॥५॥
विउरुव्विउ सुरवर-वलु अणन्तु । 'मरु चकहोँ वकहोँ दुक्कहोँ' भणन्तु ॥६॥
तं पेक्खेँवि हरि-वल रिउ पणट्ठ । लक्खिज्जिउ दिसउ णं हरिणि तट्ठ ॥७॥
बोल्लइ रयणक्खु स-वज्जमालि । 'तुहु को व ण पावइ किय-कुवालि ॥८

[२] इसी बीच, ये सब चिह्न सुनकर और यह जानकर कि कुमार लक्ष्मण मृत्युको प्राप्त हो चुका है। तथा खरदूषण और रावणकी शत्रुता और शम्बूक कुमारका बैर मनमें याद कर और यह जानकर कि राम शोकमें पड़कर समस्त सैनिक गतिविधियोंसे हट गये हैं, इन्द्रजीत और खरके पुत्र वहाँ आये। उन्होंने बड़े-बड़े विद्याधरों और नरवरोंको नियुक्त कर दिया। आकाशमें इस प्रकार वज्रमाली, रत्नाक्ष आदि, बल-इय, कृतान्त और धनुभीम आदि राजा आये। वे कह रहे थे, "लो आज हम कुमारका सिर काटते हैं, बहुत समयके बाद यह छवि मिली, जो इसने सूर्यहास तलवारपर अपना अधिकार किया और शम्बूक कुमारका विनाश किया, और खर-दूषण और त्रिशिरका वध किया, तथा अक्षयकुमार एवं रावण-के प्राणोंका अपहरण किया। और भी विविध स्थानोंपर प्रति-दिन लगातार महायुद्ध किया, अपनी बुद्धिसे उस सबको अपनी बुद्धिमें समझकर पूरा करूँगा ॥१-९॥

[३] जब रामने सुना कि दुश्मन आ रहे हैं तो उन्होंने अपना वज्रावर्त धनुष तान लिया। रथमें चढ़कर भाईको गोदमें ले लिया। उन्होंने शत्रुसेनाको इस प्रकार देखा मानो यमने ही देखा हो। इसी अन्तरालमें, जटायु और कृतान्त-वक्त्र दोनों जो चौथे माहेन्द्र स्वर्गमें देवता हुए थे, उनका तत्काल आसन-कम्प हुआ। अवधिज्ञानसे यह सब जानकर वे दोनों वहाँ आये। भक्तिसे भरे वे दोनों अपने स्वामीके गुणोंकी याद कर शीघ्र अयोध्या नगरी पहुँचे। उन्होंने देवताओंकी अनन्त सेना बना दी, 'जो मरो भागो मरो भागो' कहती हुई, वहाँ आयी। राम-की सेना देखकर शत्रुसेना भाग खड़ी हुई, मानो सिंहके दिशा-में प्रवेश करते ही हरिण भाग खड़े हुए हों। वज्रमालीके साथ

अम्हहिँ सयल वि गलियाहिमाण । णिल्लज्ज दुट्ठ दुज्जण अयाण ॥९॥
किह कह गम्मि सुह-दंसणासु । पेक्खेसहुँ वयणु विहीसणासु' ॥ ०॥

घत्ता

एम भणेँवि इन्दिय-दुज्जेयहोँ गम्पिणु पासेँ मुणिहेँ रइवेयहोँ ।
भव-विरत्त थर-णियराकङ्खिय ते सुन्दिन्दइ-सुय दिक्खङ्किय ॥११॥

[४]

सो रिउ-भएँ विगयएँ सयलेँ गुण-रयण-सायरेणं ।
सेणाणिय-सुरेँण राम-बोहण-कियायरेणं ॥१॥
णिम्मिउ सिञ्चिज्जमाणु सलिलेण सुक्क-रुक्खो ।
सम्पत्तेँ वसन्त-मासेँ विरहि व्व सुट्ठु सुक्खो ॥२॥
ओलग्गिउ कु-पहु णाइँ णिप्फलु अदिण्ण-छाओ ।
किविणु व सइँ पत्त-फुल्ल-परिचत्तु समल-काओ ॥३॥
वसह-कलेवर-जुअम्मि हलु थवेँवि ण-किय-खेवो ।
वाहइ पक्खिवइ बीउ सिलवट्टेँ बीय-देवो ॥४॥
रोवइ पाहाणे कमल-उप्पल-णिहाउ पवरो ।
पविरोलइ मन्थणाएँ पाणिउ कियन्त-अमरो ॥५॥
पुणु पीलइ वालुआएँ घाणउ जडाइ-णामो ।
अत्थ-विरुद्धाइँ ताइँ अवरइ मि णिएँवि रामो ॥६॥
पभणइ 'भो भो अयाण तुहुँ मूढ णिय-मणेणं ।
किं सलिलहोँ करहि हाणि जर-रुक्ख-सिञ्चणेणं ॥७॥
मायासहि पियर मडय-जुअले य वीव-सीरे ।
ण वि कोणिउ होइ परिमन्थिए वि णीरे (?) ॥८॥
वालुअ-परिपीलणेण तेल्लावलद्धि कत्तो ।
इच्छिय-फलु किं वि णत्थि आयासु पर महन्तो' ॥९॥

रत्नाक्षने कहा, "धोखा देनेपर दुःख कौन नहीं पाता। हम भी कितने निर्लज्ज, दुष्ट, दुर्जन और अज्ञानी थे, हमारा भी मान अब गल गया। हमलोग लंका जाकर शुभदर्शन विभीषणके दर्शन किस प्रकार कर सकते हैं।" यह कहकर इन्द्रियोंके लिए अभेद्य रतिवेग मुनिके पास जाकर इन्द्रजीत और खरके पुत्रोंने बहुत लोगोंके साथ संसारसे विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण कर ली ॥१–११॥

[४] इस प्रकार शत्रुका भय समाप्त हो जानेपर उन देवोंने सेना समेट ली। अब उन्होंने सोचा कि गुणरूपी रत्नोंके समुद्र रामको सम्बोधित कैसे किया जाय। उन्होंने एक सूखा पेड़ बनाया और उसे पानीसे सींचना प्रारम्भ कर दिया। वसन्तका माह आनेपर भी वह वृक्ष विरहीकी भाँति सूखा जा रहा था, वह वृक्ष खोटे राजाकी भाँति था, न तो उसमें फल थे, और न छाया। पत्र-पुष्पके परित्याग हो जानेके कारण कंजूसकी भाँति वह काला पड़ गया था। दो बैल उन देवोंने जुएमें जोत दिये, फिर उसमें हल लगा दिया, और शीघ्र ही दूसरे देवने चट्टानपर हल चलाकर बीज बखेर दिये। इस प्रकार वह पत्थरपर कमलके फूलोंका समूह उगाने लगा। कृतान्तवक्त्र नामका देवता मथानीसे पानी बिलोने लगा। एक ओर जटायु नामका देवता घानीमें रेतको पेरने लगा। इस प्रकार रामने जब ये और दूसरी परस्पर विरोधी अर्थहीन बातें देखीं, तो उन्होंने कहा, "अरे अज्ञानियो! तुम अपने मनमें महान् मूर्ख हो, पुराने बूढ़े पेड़को सींच-सींचकर पानी बर्बाद क्यों करते हो? तुम व्यर्थ श्रम कर रहे हो, चट्टानपर कमल नहीं लग सकता। पानीको मथनेपर भी नवनीत नहीं बनेगा। इसी प्रकार रेत पेरनेसे तेलकी उपलब्धि किस प्रकार होगी? तुम्हारा

घत्ता

तो वुच्चइ कियन्त-णिब्भाणें 'तुहु मि एउ परिवज्जिउ पाणें।
वहहि सरीरु जेण अविसिट्ठउ कहें फलु काइँ एत्थु पइँ दिट्ठउ' ॥१०

[५]

तं णिसुणेंवि वयणु णीसारों। हरि अवकण्णेंवि वुच्चइ रामें ॥१॥
'किं सिरि-णिलउ कुमारु दुगुञ्छहि। जइ ण मुणहि तो सेरउ अच्छहि ॥२॥
केत्तिउ चवहि अणिट्ठु अमङ्गलु। दोसु पढुक्कइ तउ पर केवलु' ॥३॥
जम्पइ जाव वयणु इउ हलहरु। ताव लएविणु सुहड-कलेवरु ॥४॥
जाउ जडाइ वहन्तउ लग्गें। बसु बलेण माइ-सोअग्गें ॥५॥
णेह-वसेण विवज्जिय-रज्जें। एँहु णर-देहु वहहि किं कज्जें' ॥६॥
तेण चविउ 'मइँ किर किं पुच्छहि। अप्पाणउ किर काइँ ण पेच्छहि ॥७॥
जिह हउँ तेम तुहु मि मणें मूढउ। अच्छहि लग्गें कलेवर-रूढउ ॥८॥
पइँ पेक्खेप्पिणु मइँ अणुरूवउ। मणें परिअड्डिउ णेहु गरूअउ ॥९॥

घत्ता

भो भो मइँ-पमुहहुँ चिरु आयहँ तुहुँ राणउ सव्वहु मि पिसायहुँ।
जाउ दुइ वि मह-मोह-कमन्ता हिण्डहुँ गहिकउ कोउ करन्ता' ॥१०॥

[६]

इय वयणेंहिं हलि-चक्क-पउम-णाहु। अइकजिउ सिढिलिय-मोहु रामु ॥१॥
सहसा हुउ विअसिय-कमल-णयणु। परिचिन्तइँ करगु जिणिन्द-वयणु ॥२॥
जं दुक्किय-कम्मइँ लयहों णेइ। जं अविचल-सासय-सुहइँ देइ ॥३॥
'हउँ णेह-वसङ्गउ पेक्खु केव। आणन्तो वि अच्छमि मुक्खु जेम ॥४॥
धण्णउ तिहुअणें अणरण्ण-राउ। जो छिन्देंवि मोहु मुणिन्दु जाउ ॥५॥
धण्णउ दसरहु चिरु जासु झत्ति। कञ्चुइ पेक्खेप्पिणु हुअ विरत्ति ॥६॥

प्रयास तो बहुत बड़ा है, परन्तु, इच्छितफलकी प्राप्ति कुछ भी नहीं है। यह सुनकर कृतान्तदेवने कहा, "तब तुम भी प्राणोंसे शून्य इस अवशिष्ट शरीरको क्यों ढो रहे हो, बताओ इसमें तुमने कौनसा फल देखा ॥१–१०॥

[५] उसके इन असाधारण वचनोंको सुनकर रामने लक्ष्मणको अंकमें भर लिया और कहा, "तुम श्रीके निकेतन कुमार लक्ष्मणकी निन्दा क्यों करते हो, यदि तुम नहीं जानते तो चुप तो रह सकते हो।" तुम कितना अमंगल और अनिष्ट कहो, इससे तुम्हें दोष ही लगेगा। रामने इतना कहा ही था कि जटायु एक योद्धाके शरीर कन्धेपर उठाकर आया। उसे देखकर भ्रातृ प्रेमसे अन्धे, राज्य विहीन रामने स्नेहके वशीभूत होकर कहा, "तुम किसलिए इस मनुष्यको ढो रहे हो।" उसने कहा, "मुझसे क्या पूछते, अपने-आपको क्यों नहीं देखते। जिस प्रकार मैं अपने मनमें मूर्ख हूँ, उसी प्रकार तुम भी हो, तुम भी शवको कन्धेपर ढो रहे हो। तुम्हें अपने समान पाकर तुम्हारे प्रति मेरे मनमें भारी स्नेह उत्पन्न हुआ है। अरे अरे मुझ सहित सभी पिशाचोंके तुम प्रमुख हो, हम दोनों ही महामोहसे उद्भ्रान्त और भूतोंसे ग्रसित होकर दुनियामें घूम रहे हैं ॥ १–१० ॥

[६] इन शब्दोंसे राम बहुत लज्जित हुए। और उनका मोह ढीला पड़ गया। सहसा उनकी आँखें खुल गयीं। वे जिन भगवान्‌के शब्दोंपर विचार करने लगे। उन वचनोंको, जो पाप कर्मोंका क्षय करते हैं और जो अविचलित शाश्वत सुख देते हैं। मैं नेहके वशीभूत होकर देखो कैसा मूर्ख बना, सब कुछ जानकर भी, मूर्ख जैसा बर्ताव कर रहा हूँ। संसारमें धन्य हैं अनरण्य राज, जो मोहका नाश कर महामुनि बन गये।

धण्णउ भरहु वि जें चत्तु रज्जु । बोहेंण वि किउ परलोय-कज्जु ॥७॥
धण्णउ सेणाणि कियन्तवत्तु । जें मुणेंवि अणागय (?) कइउ तत्तु ८
धण्णी सीय विहुय-कुगइ-पन्थ । ण वि दिट्ठ जाएँ एही अवत्थ ॥९॥
धण्णउ हणुवन्तु वि जो गरूवेँ । ण वि णिवडिउ इय-मोहन्ध-कूवेँ १०
धण्णा लवणङ्कुस हरि-सुआ वि । जे दिक्खालङ्किय णव-जुवा वि ॥११॥

घत्ता

हउँ णइँ पुणु पाएण गएण वि अण्णु वि लच्छीहरेंण भएण वि ।
करमि काइँ वि अप्प-हियत्तणु कहों णिय-कज्जें ण होइ वढत्तणु' ॥१२

[७]

पुणु पुणु रहुकुल-गयणयल-चन्दु । परिचिन्तइ हियवएँ रामचन्दु ॥१॥
'लब्भन्ति कलत्तइँ मणहराइँ । छत्तइँ लब्भन्ति स-चामराइँ ॥२॥
लब्भइ बहु-बन्धव सयण-सत्थु । लब्भइ अणाय-परिमाणु अत्थु ॥३॥
लब्भन्ति हत्थि रह तुरय पवर । अइ-दुल्लहु बोहि-णिहाणु णवर' ॥४॥
परियाणेंवि बलु पडिबुद्धु एव । णिय-रिद्धि वे वि दरिसन्ति देव ॥५॥
सुरवहु-सङ्गीउ सुअन्ध-पवणु । अप्पाण-विमाणेंहिँ छण्णु गयणु ॥६॥
'अहो रहुवइ किं गय-दिण-सुहेण' । तेण वि पवुत्तु वियसिय-मुहेण ॥७॥
'चिरु पुण्ण-विहूणहों मज्झु एत्थु । मणें मूढहों णिविसु वि सोक्खु केत्थु ८
इय मणुय-जम्में पर कुसलु ताइँ । जिण-सासणें अविचल मइ जाइँ ॥९

धन्य हैं राजा दशरथ जो द्वारपालकी सफेदी देखकर विरक्त हो गये। भरत भी धन्य हैं, जिन्होंने राज्यका परित्याग कर दिया और यौवनमें ही परलोकका काम साध लिया। सेनापति कृतान्तवक्त्र धन्य है, जिसने भविष्यको ध्यानमें रखकर तप ग्रहण किया। कुगतिके मार्गको ग्रहण करनेवाली सीतादेवी भी धन्य है, उसने कमसे कम इस दशाका अनुभव नहीं किया। महान् हनुमान् भी धन्य है जो वह मोहके महान्ध कुएँमें नहीं गिरे। लवण, अंकुश और लक्ष्मणके पुत्र भी धन्य हैं, जिन्होंने नवयुवक होकर भी दीक्षा ग्रहण की है। इस समय मैं ही एक ऐसा हूँ जो यौवन बीतने और लक्ष्मण जैसे भाईके मरनेपर भी आत्माके घातपर तुला हुआ हूँ। अपने काममें व्यामोह भला किसे नहीं होता ॥ १-१२ ॥

[७] रघुकुल रूपी आकाशके चन्द्र राम, बार-बार अपने मनमें सोचने लगे कि सुन्दर स्त्रियाँ पायी जा सकती हैं, चमरों सहित छत्र भी पाये जा सकते हैं। बन्धु-बान्धव और स्वजन भी खूब मिल सकते हैं, अमित परिमाण धन भी उपलब्ध हो सकता है, हाथी, अश्व और विशाल रथ भी मिल सकते हैं, परन्तु केवलज्ञान की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। यह देखकर कि रामको अब बोध प्राप्त हो गया है, देवताओंने अपनी ऋद्धियोंका प्रदर्शन उनके सम्मुख किया। आकाश, जम्पाण और विमानोंसे भर गया। सुर-वधुओंका जमघट हो रहा था। सुगन्धित हवा बह रही थी। देवताओंने निवेदन किया, "हे राम, बीते दिनोंके सुखोंकी यादसे क्या।" यह सुनकर रामने हँसकर कहा, "चिरपुण्यसे विहीन मुझे यहाँ सुख कहाँ, मूर्खके मनमें साधारण सुख भी कहाँ होता है। इस मनुष्य जन्ममें उन्हींकी कुशलता है, जिनकी जिनशासनमें अविचल भक्ति

घत्ता

अण्णु वि णिसुणहों कहमि विसेसें ताहँ कुसलु ते मुक्क किलेसें ।
चत्त परिग्गह वयहिँ अलङ्किय जे जिण-पाय-मूलेँ दिक्खङ्किय' ॥१०

[८]

पुणरवि एव वुत्तु काकुत्थें । 'के तुम्हे अक्खहों परमत्थें ॥१॥
केँ कज्जें इय रिद्धि पगासिय । रिउ-साहणहों पयसि विणासिय' ॥२
सरहसु एक्कु पजम्पिउ सुरवरु । 'किं सामिय वीसरियउ णहयरु ॥३॥
तुज्झु पइट्ठहों चिरु दण्डय-वणेँ । जो अल्लीणु महारिसि-दंसणेँ ॥४॥
तुह घरिणिएँ जो लालिउ तालिउ । णियय सरीरु जिह पालिउ ॥५॥
सीयाहरणेँ समुद्दें वि गयणहों । जो अब्भिडिउ आसि दहवयणहों ॥६
जासु मरन्तहों सुह-वड्ढारिय । पइँ णवकार पञ्च उच्चारिय ॥७॥
तुज्झु पसाएं रिद्धि-पसण्णउ । सुरु माहेन्द-सग्गेँ उप्पण्णउ ॥८॥

घत्ता

जो अच्चन्त आसि उवयारिउ भव-सायरेँ पडन्तु उद्धारिउ ।
हउँ सो देउ जडाइ महाइउ पडिउवयारु करेवएँ आइउ' ॥९॥

[९]

तो ताव कियन्त-देउ चवइ । 'किं मइँ वीसरिउ णराहिवइ ॥१॥
जो सेणावइ तउ होन्तु चिरु । कल्लाण-महारण-सएँ हिँ थिरु ॥२॥
जो पेसिउ पइँ सहुँ मायरहों । सत्तुहणहों समरेँ कियायरहों ॥३॥
जेँ वेढेँ वि महुर पलम्ब-भुउ । हउ लवण-महण्णउ महुहेँ सुउ ॥४॥
जसु केवलि-पासेँ णिरन्तरइँ । आयण्णेँ वि तुम्ह-भवन्तरइँ ॥५॥
परियाणेँ वि चउ-गइ-भवण-डरु । सहसा वइराउ आउ पवरु ॥६॥

होती है। सुनिए, मैं और भी बताता हूँ विशेषताके साथ। कुशलता उन्हीं की है, जो क्लेशसे मुक्त हैं। जिन्होंने परिग्रह छोड़ दिया है, जो व्रतोंसे शोभित हैं और जिन्होंने जिन-भगवान्‌के चरण-कमलोंमें दीक्षा ग्रहण की है ॥ १–१० ॥

[८] रामने पुनः उनसे पूछा, "तुम कौन हो सच-सच बताओ, किसलिए तुमने इन ऋद्धियोंका प्रकाशन किया? किसलिए तुमने शत्रुसेनाके प्रयासको समाप्त कर दिया?" यह सुनकर, एक देवने हर्षपूर्वक कहा, "हे स्वामी, क्या मुझ विद्याधरको भूल गये, जब आपने दण्डक वनमें प्रवेश किया था, उस समय महामुनिके दर्शनके अवसरपर मैं आपको मिला था। आपकी पत्नीने अपने पुत्रके समान मेरा लालन-पालन किया था। सीताके अपहरणके समय मैं उड़कर आकाश तक गया था और वहाँपर रावणसे भिड़ा था। उससे मृत्युको प्राप्त होनेपर, आपने मुझे पाँच नमस्कार मन्त्र दिया था। इस प्रकार आपके प्रसादसे ऋद्धियोंसे युक्त महेन्द्र स्वर्गमें देव उत्पन्न हुआ। मैं आपसे सचमुच बहुत उपकृत हुआ। आपने संसार-समुद्रमें पड़नेसे मुझे बचा लिया। मैं वही जटायु हूँ और आपका प्रति-उपकार करने आया हूँ" ॥ १–९ ॥

[९] तब इतनेमें कृतान्तदेवने कहा, "क्या हे राजन्, आप मुझे भूल गये। मैं तो बहुत समय तक आपका सेनापति रहा, सैकड़ों युद्धोंमें अस्थिर रहा। आपने आदरणीय शत्रुघ्नके साथ मुझे युद्धमें भेजा था। उसने महाबाहु राजा मधुराको घेर लिया था। उसमें मधुका बेटा लवण महार्णव मारा गया। जिस केवलीके पास मैंने आपके जन्मान्तर निरन्तर सुने, उससे मुझे चार गतियोंमें भटकनेका डर उत्पन्न हो गया, मुझे सहसा

जो पइँ पजम्पिउ "अवसरु मुणेवि । बोहिज्जहि मइँ आवय कुणेवि" ॥७॥
सो हउँ किय-घोर-तवच्चरणु । माहिन्दें जाउ सुरु दिव्व-तणु ॥८॥
अवहिएँ परियाणेंवि हरि-मरणु । अण्णु वि उद्धाइउ वइरि-गणु ॥९॥
इह आयउ अक्खहि किं करमि । तउ सव्व-पयारें उवगरमि' ॥१०॥
तं वयणु सुणेप्पिणु चवइ बलु । 'हउँ बोहिउ मग्गु अराइ-बलु ॥११॥
अप्पउ दरिसिउ रिद्धीएँ सइँ । ण पहुच्चइ पुण जं काइँ मइ ॥१२॥
इय वयणेंहिं ते परितुट्ठ मणें । गय सग्गहों सुरवर बे वि खणें ॥१३॥

घत्ता

पुणु परिहरेंवि सोउ सव्वेंवें अट्ठमु वासुएउ बलएवें ।
णिय खन्धहों महियलें ओयारिउ सरऊ-सरिहें तीरें संकारिउ ॥१४॥

[१०]

तं डहेंवि सहत्थें महुमहणु । पुणु पभणिउ रामें सत्तुहणु ॥१॥
'लइ वच्छ सहोयर रज्जु करें । रहु-कुल-सिरि-णव-वहु धरहि करें ॥२॥
हउँ सयलु परिग्गहु परिहरेंवि । तवु लेमि तवोवणु पइसरेंवि' ॥३॥
तं सुणेंवि चवइ महुराहिवइ । 'जा तुम्हहँ गइ सा महु वि गइ' ॥४॥
परियाणेंवि णिच्छउ तहों तणउ । अवलोइउ सुउ लवणहों तणउ ॥५॥
तहों सिरें विणिबद्धु पट्टु चवइ । सहसत्ति समप्पिउ रज्ज-मउ ॥६॥
गम्पिणु विणिहय-चउगइ-णिसिहें । सुव्वयहों पासें चारण-रिसिहें ॥७॥
परिसेसेंवि मोहु गुणब्भहिउ । उप्पण्ण-बोहि बलु पव्वइउ ॥८॥

विरक्ति हो गयी। आपने उस समय मुझसे कहा था, "अवसर आनेपर मुझे सम्बोधित करना, इस प्रकार मेरा आदर करना। मैं वही हूँ जिसने घोर तपस्या कर, महेन्द्र स्वर्गमें एक देवरूपमें जन्म लिया। अवधिज्ञानसे मैंने जान लिया था कि लक्ष्मणकी मृत्यु हो गयी है, और दूसरे यह कि शत्रुगण उद्धत हो उठा है। इसीलिए यहाँ आया हूँ, अब मुझे आदेश दीजिए मैं क्या करूँ, मैं हर तरहसे आपका उपकार करना चाहता हूँ।" यह वचन सुनकर रामने कहा, "मुझे बोध मिल गया है और शत्रु सेना भी नष्ट हो गयी है। आपने ऋद्धियोंके साथ दर्शन दिये, जो इससे भी प्रभावित नहीं होता, मधुसे उसका क्या ?" इन वचनोंसे वे अपने मनमें सन्तुष्ट हो गये। दोनों देवता एक क्षणमें अपने-अपने स्वर्गमें चले गये। इस प्रकार धीरे-धीरे शोकका परिहार कर रामने आठवें वासुदेव लक्ष्मणको धीरे-धीरे अपने कन्धोंसे उतारा और सरयू नदीके किनारे उनका दाह-संस्कार कर दिया ॥१-१४॥

[१०] इस प्रकार मधुसंहारक भाई लक्ष्मणका अपने हाथों संस्कार कर रामने शत्रुघ्नसे कहा, "लो भाई, अब तुम राज्य करो, रघुकुलश्री रूपी नववधूको तुम अपने हाथमें लो। मैं अब सब परिग्रहका त्याग कर तप स्वीकार करूँगा और तपोवनमें प्रवेश करूँगा।" यह सुनकर मथुराके राजा शत्रुघ्नने कहा, "जो आपकी स्थिति है, वही मेरी है।" उसके निश्चयको पक्का जानकर रामने लवणके पुत्रसे इस बारेमें बात की। उसके सिरपर राजपट्ट बाँधकर सहसा राज्यभार उसको सौंप दिया। चार गतियोंरूपी रातको नष्ट करनेवाले, सुव्रत नामक चारण ऋषिके पास आकर मोह दूरकर गुणभरित और प्रबुद्ध

घत्ता

तो णिव्वाणेंहिं दुन्दुहि ताडिय कुसुम-विट्ठि गयण-यलहों पाडिय ।
सुरहि-गन्ध-मारुउ सणें वा (?) इउ सुर-महारउ जगें वें ण माइउ ॥९

[११]

मेल्लेंवि राय-लच्छि-वियसिय-मुहु । णिय-सन्ताणें ठवेंवि णिय-तणुरुहु ॥१
सत्तुहणु वि स-मित्तु रिसि जायउ । वज्जजङ्घु णिय-मज्झ-सहायउ ॥२॥
कइहें णिय-पएँ थवेंवि सु-भूसणु । सहुँ तियडएँ पव्वइउ विहीसणु ॥३॥
णिय-पउ अङ्गय-तणयहों देप्पिणु । सुग्गीवु वि थिउ दिक्ख लएप्पिणु ॥४
तिह णल-णील सेउ ससिवद्धण । ताह तरङ्गु रम्भु रइवद्धणु ॥५॥
तवउ गवक्खु सङ्खु गउ दहिमुहु । इन्दु महिन्दु विराहिउ दुम्मुहु ॥६॥
जम्बउ रयणकेसि महुसायरु । अङ्गउ अङ्गु सुवेलु गुणायरु ॥७॥
जणउ कणउ ससिकिरणु जयन्धरु । कुन्दु पसण्णकित्ति वेलन्धरु ॥८॥
इय अवर वि जिण-गुण सुमरन्ता । सोलह सहस पहुहुँ णिक्खन्ता ॥९॥

घत्ता

हरि-बल-मायरि-सुप्पह-पमुहहुँ सुग्गइ-गमण-परिट्ठिय-समुहहुँ ।
पव्वइयहँ जगें णाम-पगासहँ जुवइहिं सत्ततीस सहासहँ ॥१०॥

[१२]

सो राम-महारिसि विगय-लोहु । जणदिण-ससहर-कर-धवल-देहु ॥१॥
उद्धरिय-महव्वय-गरुअ-भारु । भव-वइरि-णिवारणु पहय-मारु ॥२॥
बारह-विह-दुद्धर-तव-णिउत्तु । परिसह-परिसहणु ति-गुत्ति-गुत्तु ॥३॥
गिरि-सिहरें परिट्ठिउ एक्क-मासु । सव्वरि-उप्पाइय-अवहि-णाणु ॥४॥

रामने दीक्षा ग्रहण कर ली। तब देवताओंने दुन्दुभि बजायी। आकाशसे फूलोंकी वृष्टि हुई। क्षण-क्षण मन्द सुगन्धित हवा बहने लगी। नगाड़ेकी ध्वनि दुनियामें नहीं समा पा रही थी ॥१-९॥

[११] इसी प्रकार शत्रुघ्न भी विकासशील अपनी राज्य-लक्ष्मीका परित्याग कर अपनी परम्परामें अपने पुत्रको स्थापित कर अनुचरोंके साथ मुनि बन गया। वज्रजंघने भी अपनी पत्नीके साथ संन्यास ले लिया। लंकाके अपने पदपर अपने बेटे भूषणको बैठाकर विभीषणने भी बहन त्रिजटाके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। अंगदके पुत्रको अपना पद देकर सुग्रीवने भी दीक्षा ले ली। इसी प्रकार, नल, नील, सेतु, शशिवर्धन, तार, तरंग, रम्भ, रतिवर्धन, गवय, गवाक्ष, शंख, गद, दधि-मुख, इन्द्र, महेन्द्र, विराधित, दुर्मुख, जम्बव, रत्नकेशी, मधु-सागर, अंगद, अंग, सुबेल, गुणाकर, जनक, कनक, शशिकरण, जयन्धर, कुन्द, प्रसन्नकीर्ति, वेलंधर आदि तथा दूसरे और भी जिनगुणोंका स्मरण करते हुए सोलह हजार राजा दीक्षित हो गये। सुप्रभा प्रमुख राम-लक्ष्मणकी माताओंने भी सुगतिमें जानेके लिए प्रयास किया। जगमें अपना नाम प्रकाशित करने-वाली सैंतीस हजार स्त्रियोंने भी दीक्षा ले ली ॥ १-१० ॥

[१२] महामुनि राम अब स्नेहविहीन थे। पूर्णिमाके चाँदके समान सफेद उनका शरीर था। उन्होंने महाव्रतोंका भारी भार अपने ऊपर उठा रखा था। मदरूपी शत्रुका निवारण कर दिया था और कामदेवको भी परास्त कर दिया। बारह प्रकारका कठोर तप अंगीकार किया, परीषह सहन किये और गुप्तियोंका परिपालन किया। पहाड़की चोटीपर वह ध्यानमें लीन होकर बैठ गये। रातमें उन्हें अवधिज्ञान-

परियाणिय-हरि-उप्पत्ति-थाणु । सुमरिय-भव-भय-कय-गुण-णिहाणु ५
विहडिय-दिढ-दुक्किय-कम्म-पासु । अइकन्त-पवर-छट्ठोववासु ॥६॥
विहरन्तु पत्तु घण-कणय-पवरु । सन्दणथलि-णामु पइट्ठु णयरु ॥७॥
तहिं पाराविउ णामिय-सिरेंण । भत्तिएँ पडिणन्दि-णरेसरेंण ॥८॥

घत्ता

तहों सुर दुन्दुहि साहुक्कारउ गन्ध-वाउ वसु-वरिसु अपारउ ।
कुसुमञ्जलिएँ समउ वित्थरियइँ अत्थक्कएँ पञ्च वि अच्छरियइँ ॥९॥

[१२]

पुणु पहुहें अणेयइँ वयइँ देवि । तं सन्दणथलि-पट्टणु मुवि (?) ॥१॥
विहरइ महियलें भलु-मुणिवरिन्दु । णं आसि पहिल्लउ जिण-वरिन्दु ॥२॥
तव-चरणु चरइ अइ-घोरु वीरु । सहसउणु पवड्ढइ हियएँ धीरु ॥३॥
गय-मासाहारिउ मयवइ व्व । सव्वोवरि सीयलु उड्डवइ व्व ॥४॥
रस-रहिउ हीण-णट्टावउ व्व पर-भवण-णिवासिउ पण्णउ व्व ॥५॥
मोक्खहों अइ-उज्जउ कोदुउ व्व । पयलिय-मय-विन्दु महागउ व्व ॥६॥
बहु-दिणेंहिं भमेंवि महियलु असेसु । सम्पाइउ कोडि-सिला-पएसु ॥७॥
मुणिवरहँ कोडि जहिं आसि सिद्ध । आ तित्थ-भूमि तिहुअणें पसिद्ध ॥८॥
उद्धरिय-भुएँहिं आ लक्खणेण । तहेँ देवि ति-भामरि तक्खणेण ॥९॥

की उत्पत्ति हो गयी। उन्होंने जान लिया कि लक्ष्मण कहाँपर उत्पन्न हुए हैं, यह भी जान लिया कि लक्ष्मणने जन्मजन्मान्तरोंमें उनके साथ क्या बर्ताव किया है। उन्होंने मजबूत दुष्कृतके आठ कर्मोंका नाश कर दिया। छठा उपवास समाप्त किया ही था कि वह घूमते हुए वह धनकनक नामक देशमें पहुँचे। उसमें स्यंदनस्थली नामका नगर है। उसके राजा प्रतिनन्दीश्वर ने भक्ति और प्रणामके साथ रामको पारणा कराया। देवदुन्दुभियोंने साधुवाद दिया। सुगन्धित हवा बहने लगी। अपार धनकी वृष्टि हुई। कुसुमांजलिके साथ और भी दूसरे पाँच अचरज हुए॥ १–९॥

[१३] उन्होंने राजाको अनेक व्रत दिये। वह स्यन्दनस्थली नगर गये। इस प्रकार महामुनि राम धरतीपर विहार करने लगे, मानो प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ही हों। महावीर रामने घोर तपश्चरण किया। मुनिकी भाँति उनके मनमें धीरज बढ़ता जा रहा था, वह सिंहकी भाँति गजमांसाहार (माहमें एक बार भोजन, गजमांसका भोजन) करते थे, चन्द्रमाकी भाँति सबसे अधिक शीतल थे। निम्न स्तरके नर्तककी भाँति वह रसरहित थे। साँपकी भाँति वह दूसरेके भवनमें निवास करते थे। मोक्षके लिए (मुक्तिके लिए और छूटनेके लिए) वह तीरकी भाँति अत्यन्त सरल (सीधे) थे। (छूटना, मुक्ति पाना ही, उनका एक मात्र लक्ष्य था), महागजकी भाँति उनके शरीरसे मदबिन्दु (मद या अहंकार) झर रहे थे। इस प्रकार उन्होंने बहुत दिनों तक धरतीपर विहार किया, उसके बाद वे उस कोटिशिला प्रदेशमें पहुँचे, जहाँसे करोड़ों मुनियोंने मुक्ति प्राप्त की है और जो तीनों लोकोंमें तीर्थभूमिके रूपमें विख्यात है, जिसे लक्ष्मणने अपने हाथोंसे

घत्ता

उप्परि चडेवि पवण्णिय-बाहउ णं तरुवरु गिरि-सिहरें स-साहउ ।
सुग्गीवाइ-मुणिन्द-गणेसरु थिउ झायन्तु सयम्भु-जिणेसरु ॥१०॥

इय पोमचरिय-सेसे सयम्भुएवस्स कह वि उव्वरिए ।
तिहुअण-सयम्भु-रइए राहव-णिक्खमण-पव्वमिणं ॥

वन्दइ-आसिय-कइराय-चक्कवइ-लहु-अङ्गजाय-वज्जरिए ।
रामायणस्स सेसे अट्ठासीमो इमो सग्गो ॥

●

[८९. णवासीमो संधि]

वायरण-दढ-क्खन्धो आगम-अङ्गो पमाण-वियड-पओ ।
तिहुअण-सयम्भु-धवलो जिण-तित्थे वहउ कव्व-भरं ॥

तो अवहिएँ आणेंवि तेत्थु राहउ मुणि थियउ ।
अच्चुय-सग्गहों सीएन्दु तक्खणें आइयउ ॥ ध्रुवकं ॥

[१]

णियय-भवन्तराइँ सुमरेप्पिणु । जिण-धम्महों वि पहाउ मुणेप्पिणु ॥१॥
चिन्तइ तक्खणें अच्चुअ-सुरवइ । 'एँहु सो महँ मणेँ आणिउ रहुवइ ॥२॥
जो मणुअत्तणें कन्तु महारउ । अज्जु चडावइ माइ कडुआरउ ॥३॥
सो मइ णरयहों जेंवँ कइयउ । एहु वि जहों विओएँ पव्वइयउ ॥४॥

स्वयं उठाया था। रामने तुरन्त उस शिलाकी तीन प्रदक्षिणा दी। हाथ ऊपर कर वे उस शिलाके ऊपर चढ़ गये, वे ऐसे लगते थे मानो डालों सहित वृक्ष किसी पहाड़की चोटीपर स्थित हो। उनके साथ सुग्रीवादि मुनियोंका समूह भी जिनेश्वरके ध्यानमें लीन हो गया ॥ १-१० ॥

महाकवि स्वयंभूसे किसी प्रकार अवशिष्ट, त्रिभुवनस्वयंभू द्वारा रचित पद्मचरितमें राघवसंन्यास नामका पर्व समाप्त हुआ।

वन्दइके आश्रित और कविराज स्वयंभूके छोटे पुत्र द्वारा कहे गये रामायणके शेष भागमें यह अट्ठासीवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

●

नवासीवीं संधि

त्रिभुवन स्वयम्भूकी यह स्वच्छ काव्यधारा हमेशा जिनतीर्थमें बहती रहे। इस काव्यबन्धकी संधियाँ व्याकरणसे सुदृढ़ हैं, यह आगमका ही एक अंग है, और प्रत्येक पद प्रमाणोंसे समर्थित है।

अच्युत स्वर्गमें सीता देवी के जीवरूपी इन्द्रने अवधिज्ञानसे यह जान लिया था कि राम कहाँ पर हैं, वह वहाँसे तुरन्त उनके पास गया।

[१] अपने जन्मान्तरोंकी याद कर, और यह जानकर कि जिनधर्मका कितना प्रभाव है, अच्युत स्वर्गका इन्द्र अपने मनमें सोचने लगा "मैंने अपने मनमें जान लिया है कि यह वही राम हैं, यह मनुष्य जन्ममें हमारा पति था। इसके छोटे भाई लक्ष्मण चक्रवर्ती थे। स्नेहसे व्याकुल होकर वह नरकमें गया है,

खवय-सेढि आरूढहों भावहों। जिह करेमि हउ झाण-सहावहों ॥५॥
जिह मणु टलइ ण होइ पहाणउ। धवलुज्जल-वर-केवल-णाणउ ॥६॥
जिह वड्ढमाणिउ जायइ सुरवरु। मिसु मणिट्ठु मज्झु मणि-गण-धरु ॥७॥
पुणु तें सहुँ भमेवि अहिणन्देंवि। सव्वइँ जिण-भवणइँ अणें वन्देंवि ८
पञ्च वि मन्दर णवेंवि सुरोहएँ। जामि दीवु णन्दीसरु सोहएँ ॥९॥
पुत्तु सुमित्तहें णरवहो होन्तउ। आणेंवि कइ-बोहि-सम्मत्तउ ॥१०॥
पुणु सहुलोक-चक्क-अस-मामें। अप्पमि सुह-दुक्खइँ सहुँ रामें' ॥११

घत्ता

चिन्तन्तुएम सो देउ आउ णहन्तरेंण।
तं कोडि-सिला-यलु पत्तु णिविसब्भन्तरेंण ॥१२॥

[२]

पुणु चउ-पासिउ तहिं विणु खेवें। कउ उज्जाणु सयम्पहु-देवें ॥१॥
जं णवल्ल-पल्लव-सोहिल्लउ। जं अहुल्ल-फुल्ल-रिद्धिल्लउ ॥२॥
जं बहु-कोमल-कोम्पल-फल-दलु। जं कल-कोइल-कुल-किय-कलयलु ॥३॥
जं सोयल-मलयाणिल-चालिउ। जं चल-महुलिह-वयल-वमालिउ ॥४
जं साहार-णियर-मञ्जरियउ। जं कुसुम-रय-पुञ्ज-पिञ्जरियउ ॥५॥
जं सुय-सयहँ(?)सु-किंसुय-भरियउ। जं बहुविह-विहङ्ग-संचरियउ ॥६॥
जं दस-दिसि-वह-पसरिय-परिमलु। तरु-पब्भारन्धारिय-महियलु ॥७॥
जं सुरपुर-उज्जाण-समाणउ। मन्दर-णन्दण-वण-अणुमाणउ ॥८॥

घत्ता

तहिं विषमें महावणें रम्मे मन्थरु णाइँ गउ।
सुरु जाणइ-रूवु धरेवि रामहों पासु गउ ॥१॥

यह भी उसके वियोगमें संन्यासी बन गये हैं। क्षपक श्रेणिमें स्थित इनके ध्यानमें मैं किस प्रकार बाधा पहुँचाऊँ जिससे इनका मन विचलित हो जाय, और इन्हें उज्ज्वल धवल केवल-ज्ञान उत्पन्न न हो, जिससे यह वैमानिक स्वर्गका इन्द्र हो जाय, मेरा मनचाहा मित्र, बहुतसे रत्नोंका स्वामी। उसके साथ मैं घूमूँगी, अभिनन्दन करूँगी, और समस्त जिनभवनोंकी वंदना करूँगी, देवसमूहमें पाँचों मन्दराचलकी वन्दना करूँगी, और नन्दीश्वर द्वीपकी यात्रा भी करूँगी। सुमित्राका जो पुत्र लक्ष्मण नरकमें है उसे सम्यक् बोध देकर ले आऊँगी और अन्तमें त्रिलोकचक्र-में अपना यश प्रसारित करनेवाले रामको अपने सुख-दुख बताऊँगी। अपने मनमें ये सब बातें सोचकर वह देव आकाश मार्गसे चल पड़ा। और आधे ही पलमें वह, कोटिशिलाके पास आ पहुँचा ॥१-१२॥

[२] उस स्वयंप्रभ देवने बिना किसी विलम्बके उस शिला-के चारों ओर सुन्दर उद्यान बना दिया, जो नयी-नयी कोंपलोंसे शोभित था, जो गीले-गीले फूलोंसे अत्यन्त सम्पन्न था, जिसमें सुन्दर फल फूल और दल थे, जिसमें कोयलोंका सुन्दर कलरव हो रहा था, जिसमें शीतल मंद दक्षिण हवा बह रही थी, जिसमें चंचल भौंरोंके समूहकी गुनगुनाहट थी, जो सहकारों-की मंजरियोंसे लदा हुआ था, जो कुसुमोंकी धूलसे पीला-पीला हो रहा था, जो सैकड़ों तोतों और टेसूके फूलोंसे लदा हुआ था। जिसमें बहुविध विहंग विचरण कर रहे थे, जिसकी सभी दिशाओंमें सौरभकी रेल-पेल मची हुई थी। वृक्षोंकी बहुलताने धरतीको अन्धकारसे ढँक दिया था। जो स्वर्गके नन्दनवनके समान था, मन्दर और स्वर्ग उद्यानसे अपनी समानता रखता था ॥१-९॥

[३]

पुणु णियकन्तेँ कीलएँ जाएँवि । एवँ पवोल्लइ अग्गएँ थाएँवि ॥१॥
'विरह-वसङ्गइयएँ सुमरन्तिएँ । सग्ग-पएसु असेसु भमन्तिएँ ॥२॥
णिय-पुण्णेहिँ गरुएहिँ मणिट्ठउ । बहु-कालहोँ केम वि तुहुँ दिट्ठउ ॥३॥
णिविसु वि सहेँवि ण सक्कमि राहव। दे साइउ णिव्वूढ-महाहव ॥४॥
पिय-महुरालावेँहिँ सम्माणहि । किं तवेण महु ओव्वणु माणहि ॥५॥
णिच्चलु पाहाणु व किं अच्छहि । सवडम्मुहु स-वियारु णियच्छहि ॥६॥
छइउ पिसाएं जेम अकज्जिउ । कालु म खेवहि वरथ-विवज्जिउ ॥७॥

घत्ता

सो लोयाहाणउ एहु सच्चउ पइँ कियउ ।
सुन्दरु णन्दणाउ जेम जो णिय-णिग्गयउ ॥८॥

[४]

हउँ सा सीय तुहुँ जें सो रहुवइ । एह जें पिहिमि ते जि हय णरवइ॥१
सा जि अउज्झा-णयरि पसिद्धी । धण-कण-जण-मणि-रयण-समिद्धी ॥२
राउलु तं जें ते जि हय-गय-वर । पुप्फ-विमाणु तं जें ते रहवर ॥३॥
एँउ महँ-पमुहु सव्वु अन्तेउरु । अवइण्णउ मयरद्धय णं पुरु ॥४॥
भुञ्जहि काम-भोय हियइच्छिय । छड्डहि कच्छीहर-दुक्खु णिच्छय ॥५॥
अण्णु वि पउम होन्ति अइ-दूसह । चउ कसाय बावीस परीसह ॥६॥

[३] उस विजन एकान्त सुन्दर महावनमें सीता रामके सम्मुख खड़ी हो गयी, और बोली—"मैं विरहके वशीभूत होकर तुम्हारी याद करती रही हूँ और इस प्रकार समस्त स्वर्ग प्रदेश छान मारा। बहुत समयके बाद अपने बचे हुए पुण्यके प्रतापसे किसी प्रकार अपने प्रियतम तुम्हें देख सकी हूँ। अब मैं तुम्हारा विरह एक क्षणके लिए भी नहीं सह सकती, बड़े-बड़े युद्धोंके निर्वाह कर्ता, तुम मुझे आलिंगन दो, मीठे आलापों-से मुझे सम्मान दो, इस तपसे क्या? मेरे यौवनको मान दो। पत्थरकी तरह अडिग क्या है, विकारोंसे भरकर मेरी ओर देखो। लगता है तुम्हें भूत लग गया है, इसीलिए इतने निर्लज्ज दीख पड़ते हो, वस्त्रविहीन होकर, व्यर्थ अपना समय गँवा रहे हो। तुमने सचमुच वह कहानी सिद्ध करके बता दी कि जिसमें सुन्दर नामके व्यक्तिने मामाकी लड़कीके प्रेममें अपनी पत्नीको छोड़ दिया था बादमें वह मरकर अपनी पत्नीसे वंचित हो गया[1] ॥१–८॥

[४] मैं वही सीता देवी हूँ, तुम वही राम हो। यह वही धरती है, यह वही राजा है, वही अयोध्या नगरी है, धन-जन-मणि-माणिक्य आदिसे समृद्ध। वही राजकुल, अश्व और महा-गज हैं। वही पुष्पक विमान, रथश्रेष्ठ हैं, यह वही अन्तःपुर है जिसकी मैं पट्टरानी हूँ। अतः अपने अभीप्सित भोगका आनन्द लो। लक्ष्मणका दुख छोड़ो। हे राम, चार कषाय और बाईस

---

१. "दक्षिणापथके गिरिकूट ग्राममें प्रधानका सुन्दर नामका पुत्र था उसने अपनी पत्नीको छोड़ दिया। वह मामाकी लड़कीसे विवाह करना चाहता था, बादमें पेड़की डालसे लटक कर मर गया।"

पच्च वि इन्दिय सत्त महब्भय । को विसहइ पुणु अट्ठ महा-भय ॥७॥
जिण-तवचरणु आइ कहों छेयहों । मज्झेवउ कालेण वि एयहों ॥८॥

घत्ता

तो वरि एवहिं जें ण लग्गु हासउ दिणें हिं पर ।
सञ्जम-मच्छणें पइसेवि भग्ग अणेय णर ॥९॥

[५]

महु कारणें पइँ आसि चडन्तहुँ । धावहुँ सायर-वज्जावत्तहुँ ॥१॥
महु कारणें साहसगइ मारिउ । किक्किन्धेसरु णिरु उवयारिउ ॥२॥
महु कारणें मारुइ पट्ठवियउ । तें वज्जाउहु रणें णिट्ठवियउ ॥३॥
महु कारणें कोडि-सिलुच्चाइय । अण्णु वि आसाली विणिवाइय ॥४॥
महु कारणें भग्गउ णन्दण-वणु । घाइउ अक्ख-कुमारु स-साहणु ॥५॥
महु कारणें रयणायरु लङ्घिउ । जिउ हंसरहु सेउ आसङ्घिउ ॥६॥
परिपेलिउ अङ्गउ महु कारणें । मारिय हत्थ-पहत्थ महारणें ॥७॥
इन्दइ बन्धेंवि रणें लेवाविउ । णारायणु सत्तिएँ भिन्दाविउ ॥८॥

घत्ता

महु कारणें लङ्का-णाहु विणिवाइउ समरें ।
तें मइँ सहुँ राहवचन्द अविचलु रज्जु करें ॥९॥

[६]

तउ पेक्खन्तहों उववणु गइय । जइयहुँ सहसा हउँ पव्वइय ॥१॥
तइयहुँ विहरन्ती गुण-भरिया । विज्जाहर-कण्णें हिं अवयरिया ॥२॥
पुणु तेहिं पबोल्लिउ "दय करहि । दरिसावहि अम्हहुँ दासरहि ॥३॥
जें सो भत्तारु तुरिउ वरहुँ । पइँ-पमुहउ गम्पि कील करहुँ" ॥४॥
तो एत्थन्तरें सुरवइ-कियउ णाणालङ्कार-विहूसियउ ॥५॥

परीषह असह्य होते हैं, पाँच इन्द्रियों, सात भय, आठ अहं-कारोंको कौन सहन कर सकता है, जिन-तपस्याका अन्त किसने पाया, समय एक दिन इसे भी नष्ट कर देगा। यदि इस समय नहीं मानते तो कुछ दिन बाद तुम खुद अपने पर हँसोगे। इस संयमके संग्राममें पड़कर कितने ही मनुष्योंका अन्त हो गया ॥१-९॥

[५] मेरे लिए ही आखिर तुमने समुद्रवज्रावर्त धनुषको चढ़ाया था। मेरे लिए ही तुमने सहस्रको मारा था, और किष्किंधा नरेशका उपकार किया था। मेरे लिए ही तुमने हनुमानको दूत बनाकर भेजा था, उसने युद्धमें वज्रायुधका काम तमाम किया था। मेरे लिए कोटिशिला उठायी गयी और आशाली विद्याका पतन किया गया, मेरे लिए नन्दनवन उजाड़ा गया और सैनिक सहित अक्षयकुमारका वध किया गया। मेरे कारण तुमने समुद्रको लाँघा और हंसरथ और सेतुका वध किया। मेरे ही कारण अंगदको भेजा गया, और युद्धमें हस्त प्रहस्तका वध किया गया। इन्द्रजीतको रणमें बाँधकर ले जाया गया, और लक्ष्मणको शक्तिसे आहत होना पड़ा। मेरे ही कारण लंकाधिपति रावण युद्धमें मारा गया। मैं वही सीता हूँ। हे राम, तुम मेरे साथ अविचल अनन्त समय तक राज्य करो ॥१-९॥

[६] तुम्हारे देखते-देखते मैं, उपवनमें गयी, जहाँ मैंने तुरन्त दीक्षा ग्रहण की। वहाँ मैं विहार कर रही थी कि एक विद्याधर कन्या मुझे यहाँ ले आयी। उसने कहा, "दया कर मुझे रामके दर्शन करा दो जिससे मैं पतिके रूपमें उनका वरण कर सकूँ, तुम्हारे साथ आकर क्रीड़ा कर सकूँ।" इसी बीचमें उस इन्द्रने नाना अलंकारोंसे विभूषित दस सौ संख्य उत्तम स्त्रियाँ उत्पन्न कर

दस-सय-सङ्खउ वर-मामिणिउ । पत्तउ स-विलासउ कामिणिउ ॥६॥
अण्णाउ मणहरु गायन्तियउ । अण्णाउ वीणउ वायन्तियउ ॥७॥
अण्णाउ चउदिसें हिँ णडन्तियउ । स-कडक्ख दिट्ठि पयडन्तियउ ॥८॥
कुङ्कुम-चच्चिक्क करन्तियउ । अण्णाउ थणहरु दरिसन्तियउ ॥९॥

घत्ता

तोविभन्ति (म्भ) उ णिम्मल-झाणु हय-परिसह-वइरि ।
थिउ णिच्चलु रामु मुणिन्दु णावइ मेरु-गिरि ॥१०॥

[७]

जं केम वि दुरिय-खयङ्करासु । मणु टलिउ ण राहव-मुणिवरासु ॥१॥
तं माह-मासेँ सिय-पक्खेँ पवरेँ । बारसि-दिणेँ णिसिहेँ चउत्थ-पहरेँ ॥२
चउ-घाइ-कम्म-जिणियावसाणु । उप्पण्णु समुज्जलु परम-णाणु ॥३॥
खणेँ केवल-चक्खुहेँ जाउ सयलु । गोपय-समु लोयालोय-जुअलु ॥४॥
सहसा चउ-देव-णिकाउ आउ । अइ-गरुअ-विहूइएँ अमर-राउ ॥५॥
किय भत्तिएँ वन्दण जाऽणवज्ज । वर केवल-णाणुप्पत्ति-पुज्ज ॥६॥
तो ताव सयम्पह-णामु एवि । सोयन्दु केवलक्खण करेवि ॥७॥
णविउत्तमङ्गु सो भणइ एव । 'महँ तुम्हहँ अण्णाणेण देव ॥८॥

घत्ता

'जो अविणय-वन्तेँ दुट्ठु गुरु अवराहु किय ।
ते सयल खमेज्जहि सिग्घु तिहुअण-जण-णमिय' ॥९॥

[८]

अप्पाणउ गरहेँवि सय-वारउ । कह वि खमावेँवि रामु भडारउ ॥१॥
पुणु पुणु वन्दण-हत्ति करेप्पिणु । सोमित्तिहेँ गुण-गण सुमरेप्पिणु ॥२॥
पडिवोहणहिँ पयट्टु सयम्पहु । लङ्घेवि पढम-णरउ रयणप्पहु ॥३॥
पुणु अइकमेँवि पुढवि-सक्करपहु । सम्पाइउ खणेण वालुयपहु ॥४॥

दीं। वे विलासिनी-सुन्दरियाँ वहाँ पहुँची। एक मनोहर गान गा रही थी, दूसरी वीणा बजा रही थी। एक दूसरी चारों दिशाओंमें नाच रही थी और कटाक्षोंके साथ अपनी दृष्टि घुमा रही थी। एक और दूसरी चन्दन और केशरसे रंजित अपना स्तन दिखा रही थी। परन्तु राम विचलित नहीं हुए, परिषह रूपी शत्रुओंको जीतनेवाले निर्मल ध्यानसे युक्त मुनीश राम मेरुपर्वतके समान स्थित थे ॥१-१०॥

[७] पापोंको जड़से उखाड़नेवाले राघव मुनिवरका मन नहीं डिगा। माघ माहके शुक्लपक्षमें बारहवींकी रातके चौथे प्रहरमें उन्होंने चार घातिया कर्मोंका नाश कर परम उज्ज्वल ज्ञान प्राप्त कर लिया। एक ही क्षणमें उन्हें केवल चक्षु ज्ञान उत्पन्न हो गया और उन्हें सचराचर लोक गोपदके समान दिखाई देने लगा। तुरन्त चारों निकायोंके देवता वहाँ आये। इन्द्र भी अपने समस्त वैभवके साथ आया। उन्होंने आकर केवलज्ञानकी उत्पत्तिकी भक्ति भावसे अनिंद्य पूजा की। इतनेमें उस स्वयंप्रभ नामके सीतेन्द्रने केवलज्ञानकी चर्चा की। अपना सिर झुका कर उसने कहा, "हे देव, मैंने अज्ञानसे तुम्हारे साथ बुरा बर्ताव किया।" अविनयके कारण जो भारी अपराध किया है, हे त्रिभुवनसे वन्दित, तुम मेरा अपराध क्षमा कर दो।" ॥१-९॥

[८] उसने सैकड़ों बार अपनी निन्दा की और इस प्रकार रामसे क्षमा-याचना कर बार-बार उनकी वन्दना-भक्ति की। उसने लक्ष्मणके गुणसमूहका स्मरण किया। लक्ष्मणको प्रतिबोधित करनेके लिए वह स्वयंप्रभ देव वहाँसे चला। पहले नरक रत्नप्रभको लाँघकर फिर उसने दूसरे शर्कराप्रभ नरकका अतिक्रमण किया और फिर एक पलमें बालुकाप्रभ नरकमें पहुँचा।

तेत्थु को वि कणु जिह कण्डिज्जइ। को वि पुणु खम्खु जेव खण्डिज्जइ॥५॥
को वि सरसुच्छु जेम पीलिज्जइ। तिलु तिलु करवत्तेंहिं कप्पिज्जइ॥६॥
को वि बलि जिह दस-दिसु घल्लिज्जइ। को वि मयगल-दन्तेंहिं पेल्लिज्जइ॥७
को वि पिट्टिज्जइ वज्झइ मुच्चइ। को वि को ट्टिज्जइ रुज्झइ लुब्भइ॥८॥
को वि पुणु डज्झइ रज्झइ सिज्झइ। को वि णारु छिज्जइ छज्जइ विज्झइ॥९
को वि मारिज्जइ खज्जइ पिज्जइ। को वि चूरिज्जइ पुणु मूरिज्जइ॥१०॥
को वि पउलिज्जइ को बलि दिज्जइ। को वि दलिज्जइ को वि मलिज्जइ॥११
को वि कणइ कन्दइ धाहावइ। को वि पुव्व-रिउ णिएँवि पधावइ॥१२

घत्ता

तहिं सम्बुक्कें हम्मन्तु घोरारुण-णयणु।
गय-पाणि-सवन्त-सरीरु दीसइ दहवयणु॥१३॥

[९]

पुणु सम्बुकुमारहों समउ तेण। बोल्लिज्जइ झत्ति सुराहिवेण॥१॥
'रे रे खल-भावण असुर पाव। आवत्तु काइँ एँउ दुट्ठ-भाव॥२॥
अज्ज वि दुरास उवसमु ण होइ। दुहु पत्तउ अण्णु जि णाइँ कोइ॥३॥
कूरत्तणु मुएँ करें विमल चित्तु'। तं णिसुणेंवि णं अग्गिएण सित्तु॥४॥
उवसम-भावहों सम्बुक्कु चुक्कु। पुणु पुणु वि पबोहइ साय-सक्कु॥५॥
तो णवरि विमाणोवरि णिएवि। लक्खण-रावण पुच्छन्ति वे वि॥६॥
'को तुहुँ कें कज्जें एत्थु आउ'। विहसेप्पिणु अक्खइ अमर-राउ॥७
'हउँ सा चिरु होन्ती जणय-धीय। जा रावण पइँ अवहरेंवि णीय॥८॥
जा मत्तें सार रामा-यणासु। जा जम-दिट्ठि व णिसियर-जणासु॥९
तव-चरण-पहावें जाय इन्दु। अण्णु वि दिक्खङ्किउ रामचन्दु॥१०॥
तहों कोडि-सिलायलें णाणु जाउ। हउँ पुणु तुम्हहँ बोहणहँ आउ॥११॥

वहाँ उसने देखा कि कोई कण-कण काटा जा रहा है, कोई सूखे वृक्षकी तरह टुकड़े-टुकड़े किया जा रहा है, कोई सरसोंके समान पेरा जा रहा है, कोई करपत्रसे तिल-तिल काटा जा रहा है, किसीको बलिके समान दसों दिशाओंमें छिटक दिया गया है, कोई मतवाले हाथियोंसे पीड़ित किया जा रहा था। कोई पीटा, बाँधा और छोड़ा जा रहा था। कोई लोट रहा था, रौंधा और लोंचा जा रहा था। कोई जलता-रँधता और सीझता। कोई छेदा जाता, नष्ट होता और वेधा जाता। कोई मारा जाता, खाया और पिया जाता। कोई चकनाचूर होता। किसीको काट डालते और फिर बलि दे देते। किसीको दलमल दिया जाता। कोई क्रन्दन करता, कोई जोरसे रोता, कोई अपना पूर्व दुश्मन देखकर दौड़ पड़ता। वहाँ उसने देखा कि शम्बूक कुमार रावणको मार रहा है। उसकी आँखें भयंकर और लाल हैं, उसका शरीर बेसिर-पैरका हो रहा था ॥१-१३॥

[९] तब उस सुरश्रेष्ठने शम्बूककुमारसे कहा, "अरे अरे दुष्ट, असुर पाप तूने यह दुष्टभाव किसलिए प्रारम्भ किया है। अरे दुराश, तुझे आज भी शान्ति नहीं मिली। इससे किसी और को कष्ट नहीं होता। दुष्टताको छोड़ और अपना चित्त निर्मल बना।" यह सुनते ही जैसे उसपर किसीने अमृत छिड़क दिया हो। शम्बूककुमारकी परिणति शान्त हो गयी। सीतेन्द्र उसे बार-बार प्रतिबोधित करने लगा। उसे विमानमें बैठा देख-कर लक्ष्मण और रावण दोनोंने पूछा, "तुम कौन हो और यहाँ किसलिए आये हो?" इस पर, उस अमरराजने कहा, "मैं वही पुरानी राजा जनककी लड़की हूँ। जिसका पहले रावणने अपहरण किया था, जो स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ थी और निशाचरोंके लिए समदृष्टि थी। तपस्याके प्रभावसे मैं इन्द्र हुई और रामचन्द्र

घत्ता

महु कारणें जिहि मि जणेहिं जाइँ महन्ताइँ ।
भव-सायरें कोह-वसेण दुक्खइँ पत्ताइँ ॥१२॥

[१०]

कोहु मूलु सव्वहुँ वि अणत्थहुँ । कोहु मूलु संसारावत्थहुँ ॥१॥
कोहु विणास-करणु दय-धम्महों । कोहु जेँ मूलु घोर-दुक्कम्महों ॥२॥
कोहु जेँ मूलु जम्म-जर-मरणहों । कोहु जेँ मूलु णरय-पइसरणहों ॥३॥
कोहु जेँ वइरिउ सव्वहों जीवहों । तें कज्जें अहों हरि-दहगीवहों ॥४॥
कोहु विसज्जहों विसम-सहावहों । अवरोप्परु मित्तत्तणु भावहों' ॥५॥
तण्णिसुणेंवि इय वयणाणन्तरें । तिण्णि वि ते उवसमिय खणन्तरें ॥६
'किं दय-धम्में ण किय दिहि तइयहुँ । आसि कट्ठु मणुअत्तणु जइयहुँ ॥७॥
हा हा काइँ पाउ किउ वड्डउ । जें सम्पाइय दुहु पवड्डउ ॥८॥

घत्ता

तुहुँ पर धण्णउ जिय-कोयएँ जें छण्डिय कु-मइ
जिण-वयणामय परिपीयउ जाउ सुराहिवइ' ॥९॥

[११]

तो परिवड्डिय मणें कारुण्णें । वासवेण दुव्वङ्कुर-वण्णें ॥१॥
सइ-परकमराएँ सम्मीसिय । 'एहु एहु' आकाव पभासिय ॥२॥
'कइ वहइ पुत्थहों उद्धारमि । दुग्गइ-दुत्तर-तडिणिहेँ तारमि ॥३॥
तिण्णि वि जण सहसा सोकहमउ । सग्गु पराणमि अच्चुअ-णामउ' ॥४॥
एवँ भणेवि केइ किर आवहिं । कोणिउ जेम विलें वि गय तावहिं ॥५
अकणें तुप्पु जेम तिह ताविय । अइ-दुग्गेज्झ दुप्पया-काय-व थिय ॥६
सव्वोवायहिँ अग्गाणन्दें । केम वि केवि ण लग्गिय इन्दें ॥७॥

ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। उस कोटिशिलापर उन्हें ज्ञानकी प्राप्ति हुई है और मैं तुम्हें सम्बोधित करने आयी हूँ, मेरे कारण तुम दोनोंको भवसागरमें क्रोधके कारण बड़े-बड़े दुःख उठाने पड़े ॥१-१२॥

[१०] वास्तवमें क्रोध ही सब अनर्थोंका मूल है, संसाराव-स्थाका भी मूल क्रोध है। क्रोध दयाधर्मके विनाशका मूल है, क्रोध घोर पाप कर्मोंका मूल है, तीनों लोकोंमें मृत्युका कारण क्रोध है, नरकमें प्रवेशका कारण भी क्रोध है। क्रोध सभी जीवोंका शत्रु है। इसलिए हे विषमस्वभाव लक्ष्मण और रावण, तुम लोग इस क्रोधको छोड़ दो। आपसमें तुम दोनों मित्रताकी भावना करो।" इस वचनामृतको सुननेके अनन्तर वे तीनों तत्काल शान्त हो गये। वे सोचने लगे कि हमने दयाधर्ममें अपनी दृष्टि क्यों नहीं की, इससे हमें मनुष्य पर्याय तो मिलती, अरे अरे हमने ऐसा कौन-सा बड़ा पाप किया जिसके कारण इतना बड़ा दुःख भोगना पड़ा।" जीवलोकमें तुम धन्य हो जिसने कुमतिका परित्याग कर दिया। तुमने जिन-वचनामृतका पान किया और स्वर्गमें जाकर इन्द्र हुए ॥१-९॥

[११] यह सब सुनकर पीतवर्ण उस इन्द्रके मनमें करुणा उत्पन्न हो आयी। परम्परागत शब्दोंमें उसने उन्हें अभय वचन दिया और कहा—"आओ-आओ, लो मैं हूँ, मैं तुम्हें दुर्गति रूपी नदीके किनारे लगा कर मानूँगा। तुम दोनोंको मैं शीघ्र ही सोलहवें अच्युत स्वर्गमें ले जाऊँगा।" यह कहकर जैसे ही वह इन्द्र उन्हें लेनेके लिए उद्यत हुआ वैसे ही वे नवनीतकी भाँति गायब हो गये। आगमें जैसे घी तप जाता है, अथवा दर्पणकी छाया जैसे अत्यन्त दुर्ग्राह्य हो जाती है। इन्द्रने

अह जहिँ जेण जेव पावेवउ । सुहु व दुहु व तिहुअणेँ भुञ्जेवउ ॥८॥
तं समत्थु को विणिवारेवएँ । कासु सत्ति परिरक्ख करेवएँ ॥९॥
पुणु वहु-दुक्खाणल-सन्तत्ता । वे वि चवन्ति एव वेवन्ता ॥१०॥

घत्ता

'उवएसु दयावर किं पि कहेँ णिव्वाण-वहु ।
जें पुणु वि ण पावहुँ एह भीसण णरय-गइ' ॥११॥

[१२]

तेण वि पवुत्तु 'अइ करहोँ वयणु । तो लेहु तुरिउ सम्मत्त-रयणु ॥१॥
जं परमुत्तमु तिहुअणेँ पसिद्धु । अइ-दुलहु पुण्ण-पवित्तु सुद्धु ॥२॥
जं कम्म-महणु कल्लाण-तणु । दुण्णेउ अभव्वहुँ भव-मयन्तु ॥३॥
जं कहिउ परम-तित्थङ्करेहिँ । परिपुज्जिउ सुर-णर-विसहरेहिँ ॥४॥
जं सुन्दरु कालें वोहि देइ । सासय-सिव-थाणु पहाणु णेइ' ॥५॥
इय-वयणेँ हिँ दूरुज्झिय-मएहिँ । सम्मत्तु विहि मि पडिवण्णु तेहिँ ॥६॥
गउ सीया-हरि वि स-सक्कु तेत्थु । वलएउ स-केवल-णाणु जेत्थु ॥७॥
समसरणब्भन्तरेँ पइसरेवि । भत्तिएँ पुणु पुणु वन्दण करेवि ॥८॥

घत्ता

वोल्लणहुँ लग्गु 'महु होहि परमेसर-सरणु ।
तिह करेँ परिछिन्दमि (?) जेम जरा-मरणु ॥९॥

[१३]

तुहुँ पर एक्कु वियड्ढु वियड्ढहुँ सूरहुँ सूरु गुणड्ढु गुणड्ढहुँ ॥१॥
झाण-मेसवाहणेँण भयावणु । जेण दड्ढु भव-चउगइ-काणणु ॥२॥

सब उपाय कर लिये पर वह उन्हें ले नहीं जा सका। उसका सब आनन्द किरकिरा हो गया। अथवा संसारमें जो मनुष्य जहाँ जो सुख-दुःख पाता है, वे उसे स्वयं भोगने पड़ते हैं, उसका प्रतिकार कर सकना किसके लिए सम्भव है। किसकी शक्ति है कि उसकी परिरक्षा कर सके। वे दोनों दुःखोंसे अत्यन्त सन्तप्त हो उठे और इस प्रकार बातें करते हुए काँप उठे। उन्होंने कहा, "हे दयावर इन्द्र, तुम मुझे कुछ ऐसा उपदेश दो, जिससे मुझे बार-बार नरक गतिका दुःख न उठाना पड़े" ॥१-११॥

[१२] तब उसने कहा, "यदि तुम मेरी बात मानते हो तो सम्यक्दर्शन स्वीकार कर लो, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध और परम पवित्र है, जो अत्यन्त दुर्लभ पुण्य पवित्र और शुद्ध है, जो कल्याण तत्त्व और कर्मोंका नाशक है, संसार नाशक जिसे अभव्य जीव अंगीकार नहीं कर सकते, जिसका व्याख्यान परम तीर्थंकरोंने किया और सुर-नर और नागोंने जिसकी उपासना की। जो सुन्दर है और समय आनेपर जीव-को बोध देता है और शाश्वत शिव स्थानमें ले जाता है।" यह सुनकर उनका डर दूर हो गया और उन्होंने सम्यक् दर्शन स्वीकार कर लिया। तब सीतेन्द्र सशंक उस स्थानपर गया जहाँ पर केवलज्ञानी राम विद्यमान थे। उसने समवसरणके भीतर प्रवेश कर भक्तिसे बार-बार रामकी वन्दना की। उसने कहा, "मुझे परमेश्वरकी शरण मिले, ऐसा कीजिए जिससे मैं जरा और मरण का छेदन कर सकूँ ॥१-९॥

[१३] पण्डितोंमें तुम्हीं एक पण्डित हो, शूरोंमें एक शूर और गुणियोंमें एक गुणी। ज्ञानरूपी अग्निसे जिन्होंने संसारकी चार गतियोंके भयावने जंगलको जला दिया। जिन्होंने उत्तम

उवसम-खेस-तिसूलें दुद्धरु । जें किउ मोह-वइरि सय-सक्करु ॥३॥
दिढ-महन्त-वइरग्गहों पासिउ । जेण णेह-णासु वि णिण्णासिउ ॥४॥
अण्णु वि एउ काइँ तउ जुत्तउ । सिव-पउ एक्कें जइ वि विढत्तउ ॥५॥
तो वि किं मइँ मुएँ वि जाइज्जइ । आयमि जेम हउ मि तह किज्जइ' ॥६
पभणइ मुणिवरिन्दु 'सुणें सुन्दर । दूरें पमायहि राउ पुरन्दर ॥७॥
जिणेंहिँ पगासिउ मोक्खु वि-रायहों । कम्म-बन्धु दिढु होइ स-रायहों' ८

घत्ता

इय-वयणेंहिँ विमल-मणेण अञ्जलि-उड-जुएँहिँ ।
सीएन्दें राम-मुणिन्दु णमिउ स य म्भु एँ हिँ ॥

इय-पोमचरिय-सेसे सयम्भुएवस्स कह वि उव्वरिए ।
तिहुअण-सयम्भु-रइए केवल-णाणुप्पत्ति-पव्वमिणं ॥
इय एत्थ महाकव्वे वन्दइ-आसिय-सयम्भु-तणय-कए ।
रामायणस्स सेसे एसो सग्गो णवासीमो ॥

लेश्या रूपी त्रिशूलसे दुर्धर मोहरूपी शत्रुके सौ-सौ टुकड़े कर दिये। जिसने दृढ़ और महान् वैराग्यके बन्धनस्वरूप स्नेहके नाम तकको मिटा दिया। तुम्हारे सिवा यह किसी और को कैसे उपयुक्त होता, तुम अकेलेने ही शिवपदको प्राप्त कर लिया। तो भी मुझे छोड़कर तुम क्या जाओगे। कुछ ऐसा करिए जिससे मैं भी आ सकूँ।" तब उन महामुनि रामने कहा, "हे सुन्दर, तुम सुनो, हे इन्द्र, तुम रागको छोड़ो। जिनभगवान्‌ने जिस मोक्षका प्रतिपादन किया है, वह विरक्तको ही होता है, सरागी व्यक्तिका कर्मबन्ध और भी पक्का होता है। रामके इन वचनोंसे सीतेन्द्रका मन पवित्र हो गया। उसने अपने दोनों हाथ जोड़कर स्वयं मुनीन्द्र रामकी वन्दना की ॥१-९॥

महाकवि स्वयंभूसे किसी प्रकार अवशिष्ट त्रिभुवन स्वयंभू द्वारा रचित पद्मचरितके शेषभागमें 'रामज्ञानोत्पत्ति नामक' पर्व समाप्त हुआ।

वन्दइके आश्रित स्वयंभूके पुत्र द्वारा कृत, रामायणके शेष भागमें यह नवासीवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

●

[९०. णवइमो संधि]

तिहुअण-सयम्भु-धवलस्स   को गुणे वण्णिउं जए तरइ ।
बालेण वि जेण सयम्भु-कव्व-भारो समुव्वूढो ॥

पुणरवि सुरवइ आहासइ   'जो तव-सञ्जम-णियम-जुउ ।
परमेसर कहेँ सङ्क्वेँण   दसरह-राणउ केत्थु हुउ ॥ध्रुवकं॥

[१]

अण्णु वि पइँ लक्खिय सुद्ध-मइ ।   कहेँ लवणङ्कुसह मि कवण गइ ॥१॥
का जणयहोँ कणयहोँ केक्कयहेँ ।   का अवराइयहेँ सु-सुप्पहहेँ ॥२॥
का लक्खण-मायहेँ केक्कयहेँ ।   का भामण्डलहोँ चारु-मइहेँ' ॥३॥
अक्खइ केवलि सुर-णमिय-पउ ।   दसरहु तेरहमउ सग्गु गउ ॥४॥
परमाउ बीस सायरइँ जहिँ ।   जणउ वि कणउ वि उप्पण्णु तहिँ ॥५॥
परिमाणु जेत्थु आहुट्ठ कर ।   अवर वि अणेय तहिँ जाय णर ॥६॥
अवराइय-केक्कय-सुप्पहउ ।   कइकइ-सहियउ परिसह-सहउ ॥७॥
अण्णउ वि घोर-तव-तत्तियउ ।   सव्वउ देवत्तणु पत्तियउ ॥८॥

घत्ता

जे पुव्व-जम्मेँ तउ णन्दण   किण्णि वि तिहुयणेक्क-विजइ ।
लवणङ्कुस-णामालङ्किय   तहुँ होसइ पञ्चमिय गइ ॥९॥

[२]

णन्दण-वण-भूसिय-कन्दरहोँ ।   दाहिण-दिसाएँ गिरि-मन्दरहोँ ॥१॥
कुरु-भूमिहेँ भामण्डलु वि हुउ ।   पल्ल-त्तय-आउ-पमाण-जुउ ॥२॥
पुच्छिउ सुरवइण 'केण फलेँण'   आयण्णहि तं पि वुत्तु बलेँण ॥३॥

नब्बेवाँ सर्ग

त्रिभुवन स्वयंभू धवलके गुणोंका वर्णन दुनियामें कौन कर सकता है? बालक होनेपर भी जिसने स्वयंभू कविके काव्यभार का निर्वाह किया। फिर भी उस इन्द्रने जो तप और संयमके नियमोंसे युक्त था, पूछा, "हे परमेश्वर, संक्षेपमें बताइए कि राजा दशरथ कहाँपर हैं?"

[१] "इसके अतिरिक्त शुद्धमति आपने देखा होगा कि लवण और अंकुशकी क्या गति हुई, जनक कनक और कैकेयी-की क्या गति हुई, अपराजिता और सुप्रभाकी क्या गति हुई, लक्ष्मणकी माँ कैकेयी और सुन्दरमति भामण्डलकी क्या गति हुई।" यह सुनकर देवताओंसे नमित-पद केवलीभगवान्ने कहा, "दशरथ तेरहवें स्वर्गमें गये हैं, जहाँपर उनकी पूरी आयु बीस सागर प्रमाण है, जनक और कनक भी वहींपर उत्पन्न हुए हैं, वहाँ साढ़े तीन हाथके लगभग शरीर होता है, और भी दूसरे लोग वहींपर उत्पन्न हुए हैं। अपराजिता कैकयी सुप्रभा आदि भी जिन्होंने कैकयीके साथ परिसह सहन किये, और भी घोर तप साधनेवाले दूसरोंने देवत्व प्राप्त किया है। जो पूर्वजन्ममें, तुम्हारे पुत्र थे और जिन्होंने तीनों लोकोंमें विजय प्राप्त की थी, उन लवण और अंकुशको पाँचवीं गति प्राप्त होगी ॥१-९॥

[२] दक्षिण दिशामें मन्दराचल है, जिसकी गुफाएँ नन्दन-वनसे भूषित हैं। वहाँ कुरु भूमिमें भामण्डल उत्पन्न हुआ है, उसकी आयु तीन पल्य प्रमाण है।" तब उस इन्द्रने पूछा, "किस

उज्झहेँ चिरु कुलवइ पवर-भुउ । मयरिएँ मणिट्ठ-मेहलिय-भुउ ॥४॥
वजय-णामङ्किउ तहु तणउ । णिय-घण-सम्पत्तिएँ जिय-धणउ ॥५॥
णिव्वालिय सोय मुणेवि खणें । सो चिन्तावियउ स-सोउ मणें ॥६॥
सा दिव्वेंहि गुणेंहि अलङ्करिय । सोमाल-देह अइ-सुन्दरिय ॥७॥
वर-रूवें सिरि-देवयहेँ णिह । काऽवत्थ पेक्खु वणें पत्त किह ॥८॥

घत्ता

वइराउ तं जेँ तें भावेंवि पुत्त-कलत्तइँ परिहरेंवि ।
दुइ-मुणिहेँ पासेँ तवु लइयउ मुणि-सुव्वय-जिणु मणें धरेंवि ॥९॥

[१]

तासु असोय-तिलय दुइ णन्दण । जणण-णेह-किय-गुरु-अक्कन्दण ॥१॥
सहुँ कन्तेंहिँ वइराएं लइया । तेँ वि दुइ-मुणिहेँ पासेँ पव्वइया ॥२
बहु-दिवसहिँ तउ घोरु करन्ता । परमागम-जुत्तिएँ विहरन्ता ॥३॥
तम्बचूड-पुरवरु गय अत्तिएँ । तिण्णि वि गय जिण-वन्दण-हत्तिएँ ॥४
तावऽग्गएँ वालुय-रयणायरु । दीसइ णरउ व दुग्गम-दुत्तरु ॥५॥
तवण-तत्त-वालुअ-णिवहाकउ । मणु सप्पुरिसहों णाइँ विसालउ ॥६॥
सो कह कह वि दुक्खु आसङ्घिउ । सिद्धेंहिँ भव-संसारु व लङ्घिउ ॥७॥

घत्ता

ते तिण्णि वि जण मुणि-पुङ्गव णिण्णासिय-दुट्ठट्ठ-मय ।
वजय-असोय-तिलयप्पवर जोयणाइँ पञ्चास गय ॥८॥

फलसे उसे यह सब प्राप्त हुआ ?" इसपर रामने कहा, "सुनो बताता हूँ। अयोध्यामें विशालबाहु कुलपति था। उसकी मनचाही पत्नी मगरी थी। उसके वज्र नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अपनी धन-सम्पत्तिसे उसने कुबेरको भी मात दे दी। एक दिन जब उसने सीतादेवीके निर्वासनकी बात सुनी तो शोकसे व्याकुल होकर वह अपने मनमें सोचने लगा, "वह दिव्य गुणोंसे अलंकृत है, उसकी देह सुकुमार है, वह अत्यन्त सुन्दर है, उत्तम रूपमें वह श्रीदेवीके समान है, देखो उस बेचारीकी वनमें क्या अवस्था हुई"। जब उसने इस बातका विचार किया तो उसे वैराग्य हो गया। उसने पुत्र-कलत्रका परित्याग कर दिया और मुनिसुव्रत भगवान्‌का नाम अपने मनमें रखकर द्रुतमुनिके पास जाकर तप स्वीकार कर लिया।" ॥१-२॥

[३] उसके अशोक और तिलक नामके दो बेटे थे। पिताके स्नेहके कारण वे दोनों फूट-फूट कर रोने लगे। अपनी पत्नियोंके साथ उन दोनोंने भी द्रुत महामुनिके पास जाकर दीक्षा ले ली। बहुत दिनों तक उन्होंने घोर तपश्चरण किया और शास्त्रों में बतायी हुई युक्तियोंके अनुसार वे विहार करते रहे। वहाँसे वे ताम्रचूर्ण नगर गये। तीनोंने जिन-भगवान्‌की वन्दना-भक्ति की। इतनेमें उन्हें रेतका समुद्र दिखाई दिया, जो नरकके समान अत्यन्त दुर्गम दिखाई देता था। सूर्यसे तपे हुए रेतके स्थान ऐसे दिखाई देते थे, मानो सज्जन पुरुषोंके विशाल मन हों। उन्होंने किसी प्रकार बड़ी कठिनाईसे उसे पार किया मानो सिद्धोंने संसार-समुद्र पार किया हो। वे तीनों ही मुनि श्रेष्ठ (वज्र, अशोक एवं तिलक) जिन्होंने आठ मदोंका नाश कर लिया था, पचास योजन तक चले गये ॥१-८॥

[४]

सो घण-घण-घोरोरालि दिन्तु । सुरधणु-पईह-अङ्कुसवन्तु ॥१॥
अहु-धवल-बलाया-पन्ति-दाढु । जलधारा-धोरणि-केसराढु ॥२॥
ओसारिय-सूरायव-कुरङ्गु । णिद्दारिय-गिम्भ-महा-मयङ्कु ॥३॥
हरिवर-वरहिण-रव-रुअमाणु । फुल्लन्त-णीम-णहरें हिं समाणु ॥४॥
जल-पूरिय-तडिणि-पवाह-चलणु । वावी-तलाय-सर-णियर-सवणु ॥५॥
पयलन्त-महद्दह-छन्द-वयणु । दुत्तार-खग्ग-विच्छिड्ड-णयणु ॥६॥
चल-विज्जु-ललाविय-दीह-जीहु । सम्पाइयउ वासारत्त-सीहु ॥७॥

घत्ता

तं पेक्खेंवि णिरु आसण्णउ वियणें महा-वणें भय-रहिय ।
वड-पायव-मूलें सु-विरथएँ तिण्णि वि जोगु लएवि थिय ॥८॥

[५]

तहिं अवसरें गिरिमालिणि-कन्तें । उज्झाउरि गयणङ्गणें जन्तें ॥१॥
जणयहों णन्दणेण विक्खाएं । पेक्खेंवि चिन्तिउ विणय-सहाएं ॥२॥
'एउ महन्तु अच्चरिउ मणोहर । कहिं वालुय-समुद्दु कहिं मुणिवर ॥३
कहिं भव-पहु कहिँ सिद्ध-भडारा । कहिँ अ-णिउणु कहिँ गुण-गरुआरा ॥४
कहिं देसिउ कहि वर-णिहि-रयणइँ । कहिं दुज्जणु कहि सुन्दर-वयणइँ ॥५॥
कहिं दुग्गन्ध-रण्णु कहिं महुयर । कहिं मह-णरय-भूमि कहिं सुरवर ॥६
दूर-भव्वु कहि कहिँ सु-पहाणइँ । तव-चारित्त-वय-दंसण-णाणइँ ॥७॥
अह जाणिय-कज्जाकासण्णा । अहु पुण्णोदएण सम्पण्णा' ॥८॥

घत्ता

एँव भामण्डलेंण वियप्पेंवि अब्भासण्णउ पय-भउरु ।
वर-विज्जा-बलेंण स-देसउ किउ माया-मउ परम-पुरु ॥९॥

[४] इतनेमें वर्षाऋतु रूपी सिंह आ पहुँचा जो घन-घन शब्दसे घोर गर्जन कर रहा था। इन्द्रधनुषरूपी उसकी लम्बी पूँछ थी। उड़ते हुए बगुलोंकी कतार उसकी दाढ़ीके समान लगती थी, निरन्तर हो रही जलधारा उसकी अयाल थी। उसने सूर्यातपके मृगको दूरसे ही भगा दिया था। ग्रीष्मरूपी महागज को उसने कभीका परास्त कर दिया था। मेढक और मयूरोंकी ध्वनियोंसे वह गूँज रहा था, खिले हुए नीमके पेड़ उसके नखों-के समान थे, जलसे भरी हुई नदियोंके प्रवाह उसके पैर थे। वापी, तालाब और सरोवर समूह उसके घाव थे। विस्तृत सरो-वर, उसका चौड़ा मुख था। और पार करनेमें अत्यन्त कठिन खड्ड उसके विशाल नेत्र थे। इस प्रकार वर्षा ऋतुको अत्यन्त समीप देख कर, वे तीनों उस विकट महावनमें एक लम्बे-चौड़े वट पेड़के नीचे, योग साध कर बैठ गये ॥१-८॥

[५] उसी अवसर पर श्रीमालिनीका पति आकाशमार्गसे अयोध्या जा रहा था। जनकके विख्यात और विनीत स्वभाव-वाले पुत्रने जब यह देखा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि कहाँ तो ये सुन्दर महामुनि और कहाँ यह बालुका समुद्र! कहाँ संसारपथ और कहाँ आदरणीय सिद्ध! कहाँ अकुशल जन और कहाँ गुणश्रेष्ठ जन! कहाँ देश और कहाँ उत्तमनिधियाँ और रत्न! कहाँ दुर्जन और कहाँ सुन्दर वचन! कहाँ दुर्गंधसे भरा वन और कहाँ मधुकर! कहाँ नरककी धरती और देव-श्रेष्ठ! कहाँ दूरभव्य जीव और कहाँ तप चरित व्रत और दर्शनसे सम्पन्न ये प्रधान महामुनि! अथवा लगता है, यह वर्षाकाल मुझे पुण्योदयसे ही प्राप्त हुआ है। अपने मनमें यह सोचकर भामण्डलने बिलकुल ही पासमें विद्याके बलबूतेपर प्रदेश सहित एक मायामय विशाल नगर बना दिया ॥१-९॥

[६]

णिम्मियाइँ विउलइँ अ-पमाणइँ । थामेँ थामेँ मणहर-उज्जाणइँ ॥१॥
थामेँ थामेँ जण-कण-जुअ-णयरइँ । गोट्ठइँ गोहण-गोरस-पउरइँ ॥२॥
थामेँ थामेँ जिणहर-देवउलइँ । छिम्मइँ णाइँ महच्छुह-बहुलइँ ॥३॥
थामेँ थामेँ बहु-गाम-पुरोवम । थामेँ थामेँ आराम मणोरम ॥४॥
थामेँ थामेँ पोक्खरणिउ सरवर । वावी-कूव-तलाय लयाहर ॥५॥
थामेँ थामेँ णिम्मल णिरु णीरइँ । महिय-ससाह-सिसिर-थिय-खीरइँ ॥६॥
थामेँ थामेँ सालिउ फल-सारउ । इक्खु-महारसु बहु-गुलियारउ ॥७॥
थामेँ थामेँ जण-णयणाणन्दणु । भविय-लोउ-जिणवर-कय-वन्दणु ॥८

घत्ता

तं करेँवि एव णिविसद्धेँण चरिया-गय, खम-दम-दरिसि ।
सद्धाइ-गुणालङ्करिएँण तेँ भुआविय परम रिसि ॥९॥

[७]

जिह ते तिह अवर वि बहु-देसहिँ । दुग्गम-दीव-समुद्दुद्देसहिँ ॥१॥
भरह-पमुह-खेत्तेँहिँ गिरि-विवरेँहिँ । काणणेहिँ जिण-तित्थेँहिँ पवरेँहिँ २
णिव्वाण-णिप्पाणिय-सुपवेसेँहिँ । मुणि पाराविय विसम-पवेसेँहिँ ॥३॥
तेण फलेण मरेवि स-कन्तउ । उत्तम-भोग-भूमि सम्पत्तउ ॥४॥
तहिँ अच्छइ जण-णयण-मणोहरु । तुह केरउ चिर-पउम-सहोयरु ॥५॥
दण्ड-सट्ठि-सय-तणु-परिमाणउँ । तिण्णि-पल्ल-परमाउ-समाणउ ॥६॥
तण्णिसुणेवि वयणु सिय-इन्दें (?) । पुणु वि पपुच्छिउ गुरु-आणन्दें ॥७॥
'णारायणु दस-कन्धरु दुम्मइ । बेण्णि वि जण सम्पाइय-दुग्गइ ॥८॥

घत्ता

तुरियहोँ अवसाणेँ विणिग्गमेँ वि कहेँ किं होसइ महुमहणु ।
को-हउ मि भडारा होसमि को होएसइ दहवयणु' ॥९॥

[६] स्थान-स्थानपर उसने बड़े-बड़े सीमाहीन सुन्दर उद्यान निर्मित कर दिये। स्थान-स्थानपर धनधान्यसे भरपूर नगर थे। गोधन और गोरससे परिपूर्ण गोठ थे। स्थान-स्थान पर जिन-गृह और देवालय थे, मानो चूने से पुते शिशु हों, स्थान-स्थानपर नगरतुल्य बड़े-बड़े गाँव थे। स्थान-स्थानपर सुन्दर उद्यान थे। स्थान-स्थानपर पोखर और सरोवर थे। बावड़ी, कुएँ, तालाब और लतागृह थे। स्थान-स्थानपर सुन्दर जलाशय थे। स्थान-स्थानपर दही, मलाई, घी और दूध था। स्थान-स्थानपर धान्य और अच्छे फल थे और था अत्यन्त मीठा ईखका रस। स्थान-स्थानपर जननयनोंके लिए आनन्ददायक मर्त्यलोक था जो जिनेन्द्र भगवान्‌की वन्दना कर रहा था। इस प्रकार आधे पलमें नगरका निर्माण कर क्षमा और संयमका भाव दिखाकर वह परिचर्यामें लीन हो गया। अन्तमें शुभध्यान और गुणोंसे अलंकृत भामण्डलने महामुनियोंको आहारदान दिया ॥१-९॥

[७] इसी भाँति और दूसरे मुनियोंको उसने पारण करवाया। उसने इसी प्रकार नाना प्रदेशों, दुर्गम द्वीपों, समुद्री देशों, भरत प्रमुख क्षेत्रों, गिरिगुहाओं, काननों, जिनतीर्थों, निर्जन-निष्प्राण प्रदेशों और विषम प्रवेशवाले देशोंमें उसने मुनियोंको पारणा करवाया। इसके फलसे वह मरकर अपनी पत्नीके साथ उत्तम भोगभूमिमें जाकर उत्पन्न हुआ। "तुम्हारा पहला सगा जननेत्र सुन्दरभाई इस समय वहींपर है; उसका शरीर तीन कोश प्रमाण है और आयु तीन पल्य की है।" इन शब्दोंको सुनकर सीतेन्द्रने दुबारा आनन्दके साथ पूछा, "लक्ष्मण और रावण (दुर्बुद्धि) दोनोंने दुर्गति प्राप्त की है। बताइये कि दोनोंके दुर्गतिसे निकलनेपर उनका क्या होगा ? क्या मैं होऊँगी और रावण क्या होगा ? ॥१-९॥

[८]

तं णिसुणेंवि केवल-णाण-धरु पभणइ सीराउहु मुणि-पवरु ॥१॥
'अायण्णहि पुव्वें सुरगिरिहें जग-पायड-विजयावइ-पुरिहें ॥२॥
सम्मत्त-धीर-अवलम्बियहों । होसन्ति सुणन्द-कुडुम्बियहों ॥३॥
रोहिणिहें गब्में दिढ-कढिण-भुअ । तो अरुहदास-रिसिदास सुअ ॥४॥
बहु-कालें वय-गुण-णियम-धर । होसन्ति सुरालएँ पुणु अमर ॥५॥
तेत्थहों चवेवि णिम्मल-विउलें । होसन्ति पडीवा तहिं जें कुलें ॥६॥
दरिसाविय-चउविह-दाण-गुणु । हरि-खेत्तें बे वि होसन्ति पुणु ॥७॥
तेत्थहों वि पीय-जिण-धम्म-रस । होसन्ति सणय-कुमारें तियस ॥८॥

घत्ता

सायरइँ सत्त सुहु भुञ्जेंवि चवणु करेप्पिणु सुरपुरिहें ।
होसन्ति पडीवा बेण्णि वि ताहें जें विजयावइ-पुरिहें ॥९॥

[९]

जस-धणहों कुमार-कित्ति-पहुहें । गब्भब्भन्तरें लच्छी-वहुहें ॥१॥
होसन्ति भणिट्ठ पहाण सुय । जयकन्त-जयप्पह-णाम-भुअ ॥२॥
तहिं धरेंवि घोर-तव-भार-धुर । सत्तमएँ सग्गें होसन्ति सुर ॥३॥
तहिं कालें सयल-णिहि-रयणवइ । तुहुँ मरहें हवेसहि चक्कवइ ॥४॥
कप्पाव-सग्गहों चवेवि विवुह । होसन्ति बे वि तउ अङ्गरुह ॥५॥
णामें इन्दरह-म्भोयरह । तियसहँ वि रणङ्गणें दुव्विसह ॥६॥
रयणत्थलें णयरें रज्जु करेंवि । पच्छएँ पुणु दुद्धरु तउ चरेंवि ॥७॥
पावेंवि समाहि तुहुँ विमल-मणु । होएसहि वेजयन्तें सुमणु ॥८॥
इन्दरहु वि जो चिरु दहवयणु । जें वसिकिउ णीसेसु वि भवणु ॥९॥

घत्ता

सो मणुअत्तें देवत्तणेंहिं कइहि मि भवेंहिं भमेवि णरु ।
अट्ठ-विह-कम्म-विणिवारणु होसइ कालें तित्थयरु ॥१०॥

[८] यह सुनकर केवलज्ञानको धारण करनेवाले महामुनि श्रीरामने बताया, "सुनिए पूर्व मेरुपर्वतपर जगत् प्रसिद्ध नगरी विजयावती है। उसमें गृहस्थ सुन्दरकी पत्नी रोहिणीसे दृढ़बाहुवाले अरहदास और ऋषिदास नामक दो पुत्र हुए। गुण और नियमोंसे युक्त वे दोनों कुछ समय बाद स्वर्गमें देवता हुए। वहाँसे आकर वे दोनों विशद और विपुल कुलमें फिरसे उत्पन्न होंगे। चार प्रकारके दानका प्रदर्शन करनेवाले वे फिर भोगभूमिमें उत्पन्न होंगे। वहाँसे जिनधर्म रसायनका पान कर वे सनत्कुमार स्वर्गमें देवता होंगे। वहाँपर सात सागर प्रमाण सुख भोगकर देवभूमिसे वापस आकर फिरसे विजयावती नगरीमें उत्पन्न होंगे ॥१-९॥

[९] यशोधन राजा कुमारकीर्तिसे लक्ष्मीरानीके गर्भसे मनचाहे दो पुत्र उत्पन्न होंगे। उनके नाम होंगे-जयकान्त और जयप्रभ। फिर वहाँ वे घोर तपश्चरण कर सातवें स्वर्गमें उत्पन्न होंगे। उस समय समस्त रत्नों और निधियोंकी अधिपति तू चक्रवर्ती होगी। लांतव स्वर्गसे आकर वे दोनों देव भी तुम्हारे बेटे बनेंगे। उनके नाम होंगे इन्द्ररथ और अंभोजरथ। जो युद्ध में देवताओंके लिए भी असह्य होंगे। फिर रत्नस्थल नगरमें राज्यकर बादमें तपस्याके द्वारा विमल मन तुम समाधि प्राप्त कर वैजयन्त स्वर्गमें देव बनोगे। इन्द्ररथ वही पुराना रावण है जिसने निःशेष विश्वको अपने वशमें कर लिया था। इस प्रकार मनुष्यत्वसे देवत्व और देवत्वसे मनुष्यत्वमें घूम-फिर कर वह आठ कर्मोंका विनाशकर शीघ्र ही तीर्थंकर होगा ॥१-१०॥

[१०]

अहमिन्द-महासुहु अणुहवें वि । वर-वइजयन्त-सग्गहों चवें वि ॥१॥
पुणु गणहरु होसहि तासु तुहुँ । तहिँ कालें लहेसहि मोक्ख-सुहु ॥२॥
अम्भोयरहो वि जो आसि हरि । णामेण जि जसु कम्पन्ति अरि ॥३॥
सो भमें वि थाइ अब्भन्तरहुँ । भाविय-जिणधम्म-णिरन्तरहुँ ॥४॥
पुव्वविदेहें पुक्खर-दीवें वरें । होसइ सयवसउज्जय-णयरें ॥५॥
भरहेसर-सण्णिहु चक्कहरु । पुणु होसइ तित्थहों तित्थयरु ॥६॥
णाण-महब्भाविय-कम्म-रउ । आएसइ वर-णिव्वाण-पउ ॥७॥

घत्ता

वोलीणें हिँ सत्तें हिँ वरिसें हिँ गमणु करेसमि हउ मि तहिँ ।
भरहेस-पमुह बहु-मुणिवर अविचल-सुहु णिवसन्ति जहिँ ॥८॥

[११]

सु-णें वि भविस्स-काल-भव-वइयरु । पुणु पुणु पणवें वि हलहरु मुणिवरु ॥१॥
अप्पउ सो सीएन्दु पणिन्दइ । गरहइ मणु जिण-भवणइँ वन्दइ ॥२॥
तित्थङ्कर-सव-चरणुद्देसइँ । केवल-णाणुग्गमण-पएसइँ ॥३॥
दिव्व-उत्तुणि-णिव्वाण-णिवेसइँ । अण्णें वि पुज्जें वि णवें वि असेसइँ ॥४॥
सुट्ठु विसाल तुङ्ग सकन्दर । खणें परिअञ्चें वि पञ्च वि मन्दर ॥५॥
पुणु गम्पिणु णन्दीसर-दीवहों । थुइ करेवि तइलोक्क-पईवहों ॥६॥
कुरु-भूमिहें थिउ भाइ गवेसें वि । भामण्डलु स-कन्तु संभासें वि ॥७॥
गउ राहव-गुण-गण-अणुराइउ । सरहसु अच्चुअ-सग्गु पराइउ ॥८॥

घत्ता

तहिँ सुह-सायण-संजुत्तउ अमर-सहासें हिँ परियरिउ ।
णिय-लीलएँ सीया-सुरवइ सहुँ अच्छरहिँ रमन्तु थिउ ॥९॥

[१०] अहमिन्द्र महासुखका अनुभवकर उत्तम वैजयन्त स्वर्गसे आकर तुम उसके गणधर बनोगे और इस प्रकार मोक्ष प्राप्त करोगे। अम्भोजरथ जो कि पुराना लक्ष्मण है, जिसके नाम मात्रसे शत्रु काँपते हैं वह भी सुन्दर जन्मान्तरोंमें घूमता-फिरता निरन्तर जिनधर्मका ध्यान मनमें रखेगा और पूर्व विदेहके पुष्कर द्वीपमें शतपत्रध्वज नगरमें जन्म लेगा। वह भरतेश्वरके समान चक्रवर्ती होगा, फिर तीर्थका तीर्थंकर होगा। ज्ञानसे वह कर्मकी धूलिको नष्ट करेगा और महान् निर्वाणपदको प्राप्त करेगा। सात बरस बीतनेपर मैं भी वहीं गमन करूँगा जहाँ भरत प्रमुख बड़े-बड़े मुनि सुखसे निवास करते हैं ॥१-८॥

[११] भविष्यकालके जन्मोंका हाल सुनकर और मुनिवर रामको प्रणामकर सीतेन्द्रने अपनी खूब निन्दा की, मनको बुरा-भला कहा। उसने जिनमन्दिरोंकी वन्दना की। तीर्थंकरोंके तपस्याके स्थान केवलज्ञानकी उत्पत्तिके प्रदेश और दिव्यध्वनि और निर्वाणके स्थानोंकी अर्चा-पूजा और वन्दना की। उसके अनन्तर उसने अत्यन्त विशाल और ऊँचे पाँचों मन्दराचलोंकी प्रदक्षिणा की। फिर वह नन्दीश्वर द्वीप गया और वहाँ त्रिलोक-प्रदीप जिन भगवान्की स्तुति की। तदनन्तर कुरुक्षेत्रमें उसने अपने भाईकी खोज की और पत्नी सहित भामण्डलसे बातचीत की। रामके गुण-गणमें अनुरक्त वह फौरन अच्युत स्वर्गमें वापस पहुँच गया। वहाँ वह शुभ-भावनाओंसे युक्त हजारों देवताओंसे घिरा हुआ था। वहाँ बहुत समय तक अप्सराओंके साथ लीलापूर्वक रमण करता रहा ॥१-९॥

[१२]

लवणङ्कुस वि बे वि बहु-दिवसेँ हिँ । णाणुप्पण्ण णमिय वर-तियसेँ हिँ ॥१॥
कय-कम्म-क्खय णाणा-तरुवरेँ । गय णिव्वाणहोँ पावा-महिहरेँ ॥२॥
बहु-कालेँ पुणु इन्दइ-मुणिवरु । णिय-तणु तेओहामिय-दिणयरु ॥३॥
देउल-वोडिआएँ वर-सत्तउ । णाणुप्पाएँ वि णिव्वुइ पत्तउ ॥४॥
जिह सो तिह अणन्त-सुह-थाणहोँ । गउ घणवाहणो वि णिव्वाणहोँ ॥५॥
जसु केरउ अज्ज वि अहिणन्दइ । कोउ मेहरहु तित्थु पवन्दइ ॥६॥
कुम्भयण्णु पुणु सासय-सोक्खहोँ । सो वि वहहेँ खेड्डहेँ गउ मोक्खहोँ ॥७

घत्ता

गउ रहुवइ कइहि मि दिवसेँ हिँ तिहुअण-मङ्गलगाराहोँ ।
अजरामर-पुर-परिपालहोँ पासु सयम्भु-भडाराहोँ ॥८॥

इय पोमचरिय-सेसे सयम्भुएवस्स कह वि उव्वरिए ।
तिहुअण-सयम्भु-रइए राहव-णिव्वाण-पव्वमिणं ॥

वन्दइ-आसिय-तिहुअण-सयम्भु-परिविरइयम्मि मह-कव्वे ।
पोमचरियस्स सेसे संपुण्णो णवइमो सग्गो ॥

॥ पोमचरियं समत्तं ॥

●

[१२] लवण और अंकुश दोनोंको बहुत दिनोंमें ज्ञानकी उत्पत्ति हो गयी। देवताओंने उनकी वन्दना की। अन्तमें उन्होंने कर्मोंका नाश कर वृक्षोंसे शोभित पावागिरि पहाड़से निर्वाण प्राप्त किया। इन्द्रजीत मुनिवरने भी जिन्होंने अपने तेजसे दिनकरको परास्त कर दिया था, देवकुल पीठिकापर ज्ञान प्राप्तकर उत्तम मुक्ति प्राप्त की। मेघवाहनने भी अनन्त सुखके स्थान निर्वाणको प्राप्त किया, जिसके मेघरथतीर्थकी लोग प्रशंसा और वन्दना करते हैं। कुम्भकर्ण भी बड़गाँव से शाश्वतसुख मोक्षको गया। कितने ही दिनोंके बाद राम भी त्रिभुवन-कल्याणकारी अजर-अमरपुरोंका पालन करनेवाले आदरणीय आदिनाथ भगवान्‌के निकट चले गये।।।१-९।।

महाकवि स्वयंभूसे किसी तरह अवशिष्ट और त्रिभुवन स्वयंभू द्वारा रचित पद्मचरितके शेष भागमें रामका निर्वाण नामक पर्व समाप्त हुआ।

वंदइके आश्रित त्रिभुवन स्वयंभू द्वारा रचित महाकाव्यमें पद्मचरितके शेषभागका नब्बेवाँ सर्ग पूरा हुआ।

पद्मचरित पूरा हुआ

[प्रशस्तिगाथाः]

सिरि-विज्जाहर-कण्डे संधीओ होन्ति वीस परिमाणा ।
उज्झा-कण्डम्मि तहा बावीस मुणेह गणणाए ॥१॥
चउदह सुन्दर-कण्डे एक्काहिय-वीस जुज्झ-कण्डे य ।
उत्तर-कण्डे तेरह सन्धीओ णवइ सव्वाउ ॥२॥

तिहुअण-सयम्भु णवरं एक्को कइराय-चक्किणुप्पण्णो ।
पउमचरियस्स चूडामणि व्व सेसं कयं जेण ॥३॥
कइरायस्स विजय-सेसियस्स वित्थारिओ जसो भुवणे ।
तिहुअण-सयम्भुणा पोमचरिय-सेसेण णिस्सेसो ॥४॥
तिहुअण-सयम्भु-धवलस्स को गुणे वण्णिउं जए तरइ ।
बालेण वि जेण सयम्भु-कव्व-भारो समुव्वूढो ॥५॥
वायरण-दढ-क्खन्धो आगम-अङ्गो पमाण-वियड-पओ ।
तिहुअण-सयम्भु-धवलो जिण-तित्थे वहउ कव्व-भरं ॥६॥

चउमुह-सयम्भुएवाण वाणियत्थं अचक्खमाणेण ।
तिहुअण-सयम्भु-रइयं पञ्चमिचरियं महच्छरियं ॥७॥
सव्वे वि सुआ पञ्जर-सुअ व्व पढियक्खराइँ सिक्खन्ति ।
कइरायस्स सुओ पुण सुय व्व सुइ-गब्भ-संभूओ ॥८॥
तिहुअण-सयम्भु जइ ण होन्तु (?) णन्दणो सिरि-सयम्भुदेवस्स ।
कव्वं कुलं कवित्तं तो पच्छा को समुद्धरइ ॥९॥
जइ ण हुउ छन्दचूडामणिस्स तिहुअण-सयम्भु लहु-तणओ ।
तो पद्धडिया-कव्वं सिरि-पञ्चमि को समारेउ ॥१०॥

प्रशस्ति गाथा

श्री विद्याधर काण्डमें बीसके लगभग सन्धियाँ हैं। अयोध्याकाण्डमें गिनतीकी बाईस सन्धियाँ हैं ॥१॥ सुन्दर काण्डमें चौदह और युद्ध काण्डमें इक्कीस। उत्तरकाण्डमें तेरह सन्धियाँ हैं, इस प्रकार कुल नब्बे ॥२॥ दूसरा नहीं, त्रिभुवन स्वयंभू ही अकेला कविराज चक्रवर्तीसे ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने पद्मचरितके चूड़ामणिके समान उसके शेषभागको पूरा किया ॥३॥ विजयशेष कविराजका संसारमें अशेष यश फैलाया त्रिभुवन स्वयंभूने, पद्मचरितका शेष भाग लिखकर ॥४॥ त्रिभुवन स्वयंभू धवलके गुणका वर्णन कौन जगमें कर सकता है, बालक होते हुए भी जिसने स्वयंभू कविके काव्यभारको उठा लिया ॥५॥ त्रिभुवन स्वयंभूधवल जिन तीर्थ में काव्यभारको वहन करता रहे। इसकी सन्धियाँ व्याकरणसे दृढ़ हैं, यह आगमका अंगभूत है इसके पद प्रमाणोंसे पुष्ट हैं। ॥६॥ चतुर्मुख और स्वयंभूदेवकी वाणीका अर्थ जाननेवाले त्रिभुवन स्वयंभू द्वारा रचित पंचमी चरित एक महान् आश्चर्य है ॥७॥ सभी पण्डित पिंजरबद्ध सुएकी भाँति पढ़े हुए अक्षरोंको सीखते हैं परन्तु कविराजका पुत्र श्रुतके समान श्रुतिके गर्भसे उत्पन्न हुआ ॥८॥ श्रीस्वयंभूदेवका पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू यदि न होता तो काव्य कुल और कविताका उनके बाद कौन उद्धार करता ॥९॥ यदि न हुआ होता — छन्दचूड़ामणि त्रिभुवन स्वयंभू का छोटा बेटा तो पद्धडिया काव्य श्रीपंचमीकी

सव्वो वि जणो गेण्हइ णिय-ताय-विढत्त-दव्व-सन्ताणं ।
तिहुअण-सयम्भुणा पुणु गहियं सुकइत्त-सन्ताणं ॥११॥
तिहुअण-सयम्भुमेक्कं मोत्तूण सयम्भु-कव्व-मयरहरो ।
को तरइ गन्तुमन्तं मज्झे निस्सेस-सीसाणं ॥१२॥

इय चारु पोमचरियं सयम्भुएवेण रइयं (सम ?) समत्तं ।
तिहुअण-सयम्भुणा तं समाणियं परिसमत्तमिणं ॥१३॥
'चेष्टितमयनं चरितं करणं चारित्रमित्यमी पर्यायाः ।
पर्याया रामायणमित्युक्तं तेन चेष्टितं रामस्य ॥१४॥
वाचयति शृणोति जनस्तस्यायुर्वृद्धिमीयते पुण्यं च ।
आकृष्ट-खड्ग-हस्तो रिपुरपि न करोति वैरमुपशममेति' ॥१५॥

माउर-सुअ-सिरिकइराय-तणय-कय-पोमचरिय-अवसेसं ।
संपुण्णं संपुण्णं वन्दइओ कहइ संपुण्णं ॥१६॥
गोइन्द-मयण-सुयणन्त-विरइयं वन्दइ-पढम-तणयस्स ।
वच्छलदाएँ तिहुअण-सयम्भुणा रइयं (?) महप्पयं ॥१७॥
वन्दइय-णाग-सिरिपाल-पहुइ-भव्वयण-गण-समूहस्स ।
आरोग्गत्त-समिद्धी-सन्ति-सुहं होउ सव्वस्स ॥१८॥
सत्त-महासग्गङ्गी ति-रयण-भूसा सु-रामकह-कण्णा ।
तिहुअण-सयम्भु-जणिया परिणउ वन्दइय-मण-तणयं ॥१९॥

रचना कौन करता ॥१०॥ सभी लोग स्वीकार करते हैं अपने पिताकी कमाई धन और सन्तान परम्परा। परन्तु त्रिभुवन स्वयंभूने पिताकी काव्य परम्पराको ग्रहण किया ॥११॥ अकेले त्रिभुवन स्वयंभूको छोड़कर शेष शिष्योंमें कौन है जो स्वयंभूके काव्य समुद्रका पार पा सकता है ॥१२॥ स्वयंभूदेव द्वारा रचित यह सुन्दर पद्मचरित समाप्त हुआ। त्रिभुवनस्वयंभूने उसे भी (शेषभाग लिखकर) परिसमाप्ति तक पहुँचाया ॥१३॥ चेष्टित अयन चरित करण और चारित्र ये जो शब्द हैं—इनका एक पर्याय 'रामायण' यह कहा गया है, इसीलिए यह रामकी चेष्टा है ॥१४॥ जो इसे पढ़ता है, सुनता है उसकी आयु और पुण्य बढ़ता है। तलवार खींचे हुए भी शत्रु कुछ नहीं कर सकता, उसका वैर शान्त हो जाता है ॥१५॥ 'माउर'के पुत्र श्रीकविराज के पुत्र द्वारा रचित पद्मचरितका अवशेष सम्पूर्ण पूरा हुआ वंदइने इसे पूरा करवाया ॥१६॥ विंदइके प्रथमपुत्रके वात्सल्य-भावके लिए तथा गोविन्द मदन आदि सज्जनोंके लिए त्रिभुवन स्वयंभू ने इसकी व्याख्या की ॥१७॥ त्रिभुवन स्वयंभू कामना करता है कि वंदइ, नाग, श्रीपाल आदि भव्यजनोंको आरोग्य समृद्धि और शान्ति और सुख प्राप्त हो ॥१८॥ यह रामकथा रूपी कन्या जिसके सात सर्ग रूपी अंग हैं जो तीन रत्नोंसे भूषित हैं, जिसे त्रिभुवन स्वयंभूने जन्म दिया, जो वंदइके मनरूपी पुत्रसे परिणीत हो ॥१९॥

●